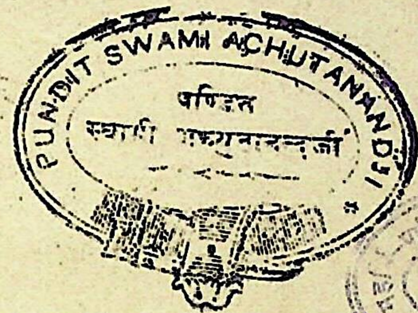
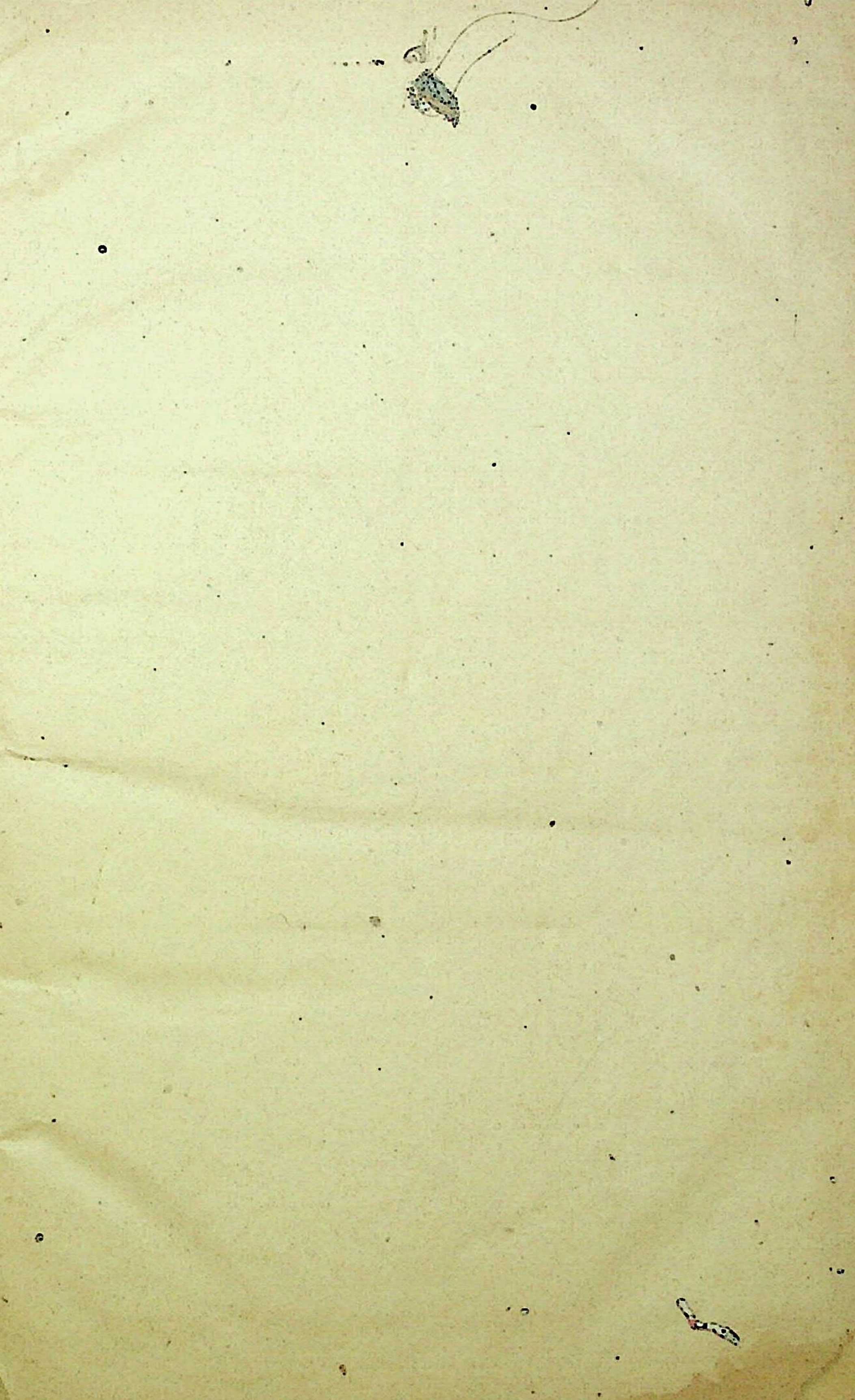


अच्युतानन्दस्वामिन इदम्









ओ३म्



संस्कृतवाक्यप्रबोधः

श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती निर्मितः

अजमेरनगरे

वैदिक यन्त्रालये

यज्ञदत्तशर्मशास्त्रिणः प्रबन्धेन मुद्रितः

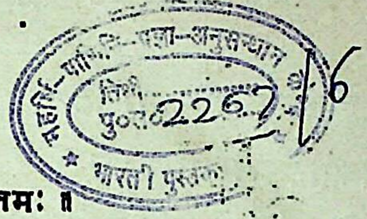
पठनपाठनव्यवस्थायां द्वितीयं पुस्तकम् ॥

संवत् १९४८

कार्तिक शुक्ल

चतुर्थवार छपा | मूल्य ≋)॥

२००० | डाकव्ययसहित



ओ३म्

परमगुरवे परमात्मने नमः ॥

अथ संस्कृतवाक्यप्रबोधः ॥

भोः शिष्य उत्तिष्ठ प्रातःकालो जातः ।	हे शिष्य उठ सुबेरा हुआ ।
उत्तिष्ठामि ।	उठता हूं ।
अन्ये सर्वे विद्यार्थिन उत्थिता न वा ?	और सब विद्यार्थी उठे वा नहीं ?
अधुना तु नोत्थिताः खलु ।	अभी तो नहीं उठे हैं ।
तानपि सर्वानुत्थापय ।	उन सब को भी उठा दे ।
सर्वं उत्थापिताः ।	सब उठा दिये ।
सम्प्रत्यस्माभिः किं कर्त्तव्यम् ?	इस समय हमको क्या करना चाहिये ?
आवश्यकं शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यावन्दनम् ।	आवश्यकशरीरशुद्धि करके संध्योपासन।
आवश्यकं कृत्वा सन्ध्योपासिताऽतःपरमस्माभिः किं करणीयम् ?	आवश्यक कर्म्म करके सन्ध्योपासन कर लिया इस के आगे हम को क्या करना चाहिये ?
अग्निहोत्रं विधाय पठत ।	अग्निहोत्र करके पढ़ो ।
पूर्वं किं पठनीयम् ?	पहिले क्या पढ़ना चाहिये ?

वर्णोच्चारणशिक्षामधीध्वम् ।	वर्णोच्चारणशिक्षा को पढ़ो ।
पश्चात्किमध्येतव्यम् ?	पीछे क्या पढ़ना चाहिये ?
किञ्चित्संस्कृतोक्तिबोधःक्रियताम्।	कुछ संस्कृत बोलने का ज्ञान किया जाय ।
पुनः किमभ्यसनीयम् ?	फिर किसका अभ्यास करना चाहिये?
यथायोग्यव्यवहारानुष्ठानाय प्रयतध्वम् ।	यथोचित व्यवहार करने के लिये प्रयत्न करो ।
कुतोऽनुचितव्यवहारकर्त्तुर्विद्यैव न जायते ।	क्योंकि उलटे व्यवहार करने हारे को विद्या ही नहीं होती ।
को विद्वान् भवितुमर्हति ?	कौन मनुष्य विद्वान् होने के योग्य होता है ?
यः सदाचारी प्राज्ञः पुरुषार्थी भवेत् ।	जो सत्याचरणशील बुद्धिमान् पुरुषार्थी हो ।
कीदृशादाचार्यादधीत्य पण्डितो भवितुं शक्नोति ?	कैसे आचार्य्य से पढ़के पण्डित हो सक्ता है ?
अनूचानतः ।	पूर्णविद्यावान् वक्ता से ।
अथ किमध्यापयिष्यते भवताहम् ?	अब इस के अनन्तर हम को क्या पढ़ाइये गा ?
अष्टाऽध्यायी महाभाष्यम् ।	अष्टाध्यायी और महाभाष्य ।
किमनेन पठितेन भविष्यति ?	इस के पढ़ने से क्या होगा ?
शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानम् ।	शब्द अर्थ और सम्बधों का यथार्थ बोध ।
पुनः क्रमेण किं किमध्येतव्यम्?	फिर क्रम से क्या २ पढ़ना चाहिये?

शिक्षाकल्पनिघण्टुनिरुक्तछन्दोज्योतिषाणि वेदानामङ्गानि मीमांसावैशेषिकन्याययोगसांख्यवेदान्तान्युपाङ्गान्यायुर्धनुर्गान्धर्वार्थानुपवेदानैतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणान्यधीत्य ऋग्यजुस्सामाऽथर्ववेदान् पठन्तु।	शिक्षा, कल्प, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष्, वेदों के अङ्ग। मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त उपांग। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद, उपवेद। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़के ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को पढ़ो।
एतत्सर्वं विदित्वा किं कार्य्यम्?	इन सब को जान के फिर क्या करना चाहिये ?
धर्म्मजिज्ञासाऽनुष्ठाने एतेषामेवाऽध्यापनं च।	धर्म्म के जानने की इच्छा तथा उस का अनुष्ठान और इन्हीं को सर्वदा पढ़ना।

नामनिवासस्थानप्रकरणम्।

तव किन्नामास्ति?	तेरा क्या नाम है ?
देवदत्तः।	देवदत्त।
कोऽभिजनो युवयोर्वर्त्तते?	तुम दोनों का जन्मदेश कौन है?
कुरुक्षेत्रम्।	कुरुक्षेत्र देश।
युष्माकं जन्मदेशः को विद्यते?	तुम्हारा जन्मदेश कौन है?
पञ्चालाः।	पञ्जाब।
भवन्तः कुत्रत्याः?	आप कहां के हो ?

वयं दाक्षिणात्याः स्म ।	हम दक्षिणी हैं ।
तत्र का पूर्वः ?	वहां आप के निवास की कौन नगरी है ?
मुम्बापुरी ।	मुम्बई ।
इमे क निवसन्ति ?	ये लोग कहां रहते हैं ?
नयपाले ।	नयपाल में ।
अयं किमधीते ?	यह क्या पढ़ता है ?
व्याकरणम् ।	व्याकरण को ।
त्वया किमधीतम् ?	तूने क्या पढ़ा है ?
न्यायशास्त्रम् ।	न्याय शास्त्र ।
अयं भवदीयश्छात्रः किं प्रचर्चयति ?	यह आप का विद्यार्थी क्या पढ़ता है ?
ऋग्वेदम् ।	ऋग्वेद को ।
त्वं किं कर्त्तुं गच्छसि ?	तू क्या करने को जाता है ?
पाठाय व्रजामि ।	पढ़ने के लिये जाता हूं ।
कस्मादधीषे ?	किस से पढ़ता है ?
यज्ञदत्तात् ।	यज्ञदत्त से ।
इमे कुतोऽधीयते ?	ये किस से पढ़ते हैं ?
विष्णुमित्रात् ।	विष्णुमित्र से ।
त्वयि पठति कियन्तः संवत्सरा व्यतीताः ?	तुझ को पढ़ते हुए कितने वर्ष बीते?
पञ्च ।	पांच ।
भवान् कति वार्षिकः ?.	आप कितने वर्ष के हुए ?

त्रयोदशवार्षिकः ।	तेरह वर्ष के ।
त्वया पठनारम्भः कदा कृतः ?	तूने पढ़ने का आरंभ कब किया था?
यदाहमष्टवार्षिकोऽभूवम् ।	जब मैं आठ वर्ष का हुआ था ।
तव मातापितरौ जीवतो न वा ?	तेरे माता पिता जीते हैं वा नहीं ?
जीवतः ।	जीते हैं ।
तव कति भ्रातरो भगिन्यश्च ?	तेरे कितने भाई और बहिन हैं ?
त्रयो भ्रातरश्चैका भगिन्यस्ति।	तीन भाई और एक बहिन है ।
तेषु त्वं ज्येष्ठस्ते, सा, वा ?	उन में तू ज्येष्ठ वा तेरे भाई अथवा बहिन ?
अहमेवाऽग्रजोस्मि ।	मैंही सब से पहिले जन्मा हूं ।
तव पितरौ विद्वांसौ न वा ?	तेरे माता पिता विद्या पढ़े हैं वा नहीं?
महाविद्वांसौ स्तः ।	बड़े विद्वान् हैं ।
तर्हि त्वया पित्रोः सकाशात्कुतो न विद्या गृहीता ?	तो तूने माता पिता से विद्या ग्रहण क्यों न की ?
अष्टमवर्षपर्य्यन्तं कृता ।	आठवें वर्ष पर्य्यन्त की थी ।
अत ऊर्ध्वं कुतो न कृता ?	इस से आगे क्यों न की ?
मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेदेति शास्त्रविधेः ।	माता पिता से आठवें वर्ष पर्य्यन्त इस के आगे आचार्य से पढ़ने का शास्त्र में विधान है इस से ।
अन्यच्च गृहे कार्यबाहुल्येन निरन्तरमध्ययनमेव न जायते ।	और भी घर में बहुत काम होने से निरन्तर पढ़ना ही नहीं होता ।
अतः परं कियद्वर्षपर्यन्तमध्येष्यसे?	इस के आगे कितने वर्ष पर्यन्त पढ़ेगा?
पञ्चत्रिंशद्वर्षाणि ।	पेंतीस वर्ष तक ।

गृहाश्रमप्रकरणम् ॥

पुनस्ते का चिकीर्षास्ति ?	फिर तुझको क्या करने की इच्छा है ?
गृहाऽऽश्रमस्य ।	गृहाश्रम की ।
किंच भोः पूर्णविद्यस्य जितेन्द्रियस्य परोपकारकरणाय सन्न्यासाश्रमग्रहणं शास्त्रोक्तमस्ति तन्न करिष्यसि ?	क्योंजी ? जिस को पूर्ण विद्या और जो जितेन्द्रिय है उस को परोपकार करने के लिये सन्न्यासाश्रम का ग्रहण करना शास्त्रोक्त है इस को न करो गे ?
किं गृहाश्रमे परोपकारो न भवति ?	क्या गृहाश्रम में परोपकार नहीं होता ?
यादृशः सन्न्यासाश्रमिणा कर्तुं शक्यते न तादृशो गृहाश्रमिणाऽनेककार्यैः प्रतिबन्धकत्वेनाऽस्य सर्वत्र भ्रमणाशक्यत्वात् ।	जैसा सन्न्यासाश्रमी से मनुष्यों का उपकार हो सकता है वैसा गृहाश्रमी से नहीं हो सकता क्योंकि अनेक कामों की रुकावट से इस का सर्वत्र भ्रमण ही नहीं हो सकता ।

भोजनप्रकरणम् ॥

नित्यः स्वाध्यायो जातो भोजनसमय आगतो गन्तव्यम् ।	नित्य का पढ़ना पढ़ाना हो गया भोजन समय आया चलना चाहिये ।
तव पाकशालायां प्रत्यहं भोजनाय किं २ पच्यते ?	तुम्हारी पाकशाला में प्रतिदिन भोजन के लिये क्या २ पकाया जाता है ?
शाकसूपौदश्वित्कौदनापूपादयः ।	शाक, दाल, कढी, भात, पुआ और रोटी आदि ।

किं वः पायसादिमधुरेषु रुचिर्नास्ति ?	क्या आप लोगों की खीर आदि मीठे भोजनों में रुचि नहीं है ?
अस्ति खलु परन्त्वेतानि कदाचिद् २ भवन्ति ।	है सही परन्तु ये भोजन कभी २ होते हैं ।
कदाचिच्छष्कुलीश्रीखण्डादयोऽपि भवन्ति नवा ?	कभी पूरी कचौरी शिखरन आदि भी होते हैं वा नहीं ?
भवन्ति परन्तु यथर्त्तुयोगम् ।	होते हैं परन्तु जैसा ऋतु का योग हो ।
सत्यमस्माकमपि भोजनादिकमेवमेव निष्पद्यते ।	ठीक है हमारे भी भोजन आदि ऐसे ही बनते हैं ।
त्वं भोजनं करिष्यसि नवा ?	तू भोजन करेगा वा नहीं ?
अद्य न करोम्यजीर्णतास्ति ।	आज नहीं करूंगा अजीर्णता है ।
अधिकभोजनस्येदमेव फलम् ।	अधिक भोजन का यही फल है ।
बुद्धिमता तु यावज्जीर्यते तावदेव भुज्यते ।	बुद्धिमान् पुरुष तो जितना पचे उतना ही खाता है ।
अतिस्वल्पे भुक्ते शरीरबलं ह्रसत्यधिके चातः सर्वदा मिताहारी भवेत् ।	बहुत कम और अत्यधिक भोजन करने में शरीर का बल घटता है इस से सब दिन मिताऽऽहारी होवे ।
योऽन्यथाऽऽहारव्यवहारौ करोति स कथं न दुःखी जायेत ?	जो उलट पलट आहार और व्यवहार करता है वह क्यों न दुःखी होवे ?
येन शरीराच्छ्रमो न क्रियते स नैव शरीरसुखमाप्नोति ।	जो शरीर को प्राप्त होकर परिश्रम नहीं करता वह शरीर के सुख को प्राप्त नहीं होता ।

येनात्मना पुरुषार्थो न विधीयते तस्यात्मनो बलमपि न जायते ।	जो आत्मा से पुरुषार्थ नहीं करता उस को आत्मा का बल भी नहीं होता ।
तस्मात्सर्वैर्मनुष्यैर्यथाशक्ति सत्क्रिया नित्यं साधनीया ।	इस से सब मनुष्यों को यथाशक्ति उत्तम कर्मों की साधना नित्य करनी चाहिये ।
भो देवदत्त त्वामहं निमन्त्रये ।	हेदेवदत्तमैंतुम्हारानिमंत्रणकरताहूं ।
मन्येऽहं कदा खल्वागच्छेयम् ?	मैंमानताहूं परन्तु किस समय आऊं?
श्वो द्वितीयप्रहरमध्ये आगन्तव्यम् ।	कल दो पहर दिन चढ़े आना चाहिये ।
आगच्छ भो आसनमध्यास्स्व ।	हे सुजन आइये आसन पर बैठिये ।
भवता ममोपरिमहतीकृपाकृता ।	आप ने मुझ पर बड़ी कृपा की ।

देशदेशान्तरप्रकरणम् ॥

भवानेतान् जानतीमे महाविद्वांसः सन्ति ।	आप इन को जानते हैं ये बड़े विद्वान् हैं ।
किन्नामान एते कुत्रत्याः खलु?	इन के क्या नाम और ये कहां २ के रहने वाले हैं ?
अयं यज्ञदत्तः काशीनिवासी ।	यह यज्ञदत्त काशी में निवास करता है ।
विष्णुमित्रोऽयंकुरुक्षेत्रवास्तव्यः ।	यह विष्णुमित्र कुरुक्षेत्र में बसता है ।
सोमदत्तोयं माथुरः ।	यह सोमदत्त मथुरा में रहता है ।
अयं सुशर्मा पर्वतीयः ।	यह सुशर्म्मा पर्वत में रहता है ।
अयमाश्वलायनो दाक्षिणात्योऽस्ति ।	यह आश्वलायन दक्षिणी है ।

अयं जयदेवः पाश्चात्यो वर्तते।	यह जयदेव पश्चिम देश वासी है।
अयं कुमारभट्टो वाङ्गो विद्यते।	यह कुमारभट्ट बंगाली है।
अयं *कापिलेयः पाताले निवसति।	यह कापिलेय पाताल अर्थात् अमेरिका में रहता है।
अयं चित्रभानुर्हरिवर्षस्थः।	यह चित्रभानु हिमालय से उत्तर हरिवर्ष अर्थात् यूरोप में रहता है।
इमौ सुकामसुभद्रौ चीननिकायौ।	येसुकाम और सुभद्र चीनके बासी हैं।
अयं सुमित्रो गन्धारस्थायी।	यह सुमित्र गन्धार अर्थात् काबिल कन्धार का रहने वाला है।
अयं सुभटो लङ्काजः।	यह सुभट लंका में जन्मा है।
इमे पंच सुवीरातिबलसुकर्मसुधर्मशतधन्वानो मारवाः।	सुवीर अतिबल सुकर्मा सुधर्मा और शतधन्वा ये पांच मारवाड़ के रहने वाले हैं।
एते मया आमन्त्रिताः स्वस्वस्थानादागताः।	ये सब मेरे बुलाये हुए अपने २ घर से आये हैं।
इमे शिवकृष्णगोपालमाधवसुचन्द्रप्रक्रमभूदेवचित्रसेनमहारथा अत्रत्याः।	शिव, कृष्ण, गोपाल, माधव, सुचन्द्र, प्रक्रम, भूदेव, चित्रसेन और महारथ ये दश इस मध्यदेश के रहने वाले हैं।
अहो भाग्यं मे यद् भवत्कृपयैतेषामपि समागमो जातः।	मेरा बड़ाभाग्य है कि जो आप की कृपासेइनसत्पुरुषोंका भी मिलापहुआ।
अहमपि सभवतः सर्वानेतान्निमन्त्रयितुमिच्छामि।	मैं भी आप के समेत इन सब का निमन्त्रण करना चाहता हूं।

अस्माभिर्भवन्निमन्त्रणमूरीकृतम्।	हमने आप का निमन्त्रण स्वीकार किया।
प्रीतोस्मि परन्तु भवद्भोजनार्थं किं किं पक्तव्यम् ?	आप के निमन्त्रण मानने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु आप के भोजन के लिये क्या २ पकाया जाय ?
यद्यद्भोक्तुमिच्छास्ति तत्तदाज्ञापयन्तु।	जिस २ पदार्थ के भोजन की इच्छा हो उस २ की आज्ञा कीजिये।
भवान् देशकालज्ञः कथनेन किं यथायोग्यमेव पक्तव्यम्।	आप देशकाल को जानते हैं कहने से क्या यथायोग्य ही पकाना चाहिये।
सत्यमेवमेव करिष्यामि।	ठीक है ऐसा ही करूंगा।
उत्तिष्ठत भोजनसमय आगतः पाकः सिद्धो वर्त्तते।	उठिये भोजनसमय आया पाक तयार है।
भो भृत्य पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं जलं देहि।	हे नौकर इन को पग हाथ मुख धोने के लिये जल दे।
इदमानीतं गृह्यताम्।	यह लाया लीजिये।
भोः पाचकाः सर्वान् पदार्थान् क्रमेण परिवेविष्ट।	हे पाचकलोगो सब पदार्थों को क्रम से परोसो।
भुञ्जीध्वम्।	भोजन कीजिये।
भोजनस्य सर्वे पदार्थाः श्रेष्ठा जाता न वा ?	भोजन के सब पदार्थ अच्छे हुये हैं वा नहीं ?
अत्युत्तमाःसम्पन्नाःकिंकथनीयम्।	क्या कहना है बड़े उत्तम हुए हैं।
भवता किंचित् पायसं ग्राह्यं वा यस्येच्छाऽस्ति।	आप थोड़ी सी खीर लीजिये वा जिस की इच्छा हो।

प्रभूतं भुक्तं तृप्ताः स्मः ।	बहुत रुचि से भोजन किया तृप्त हो गये हैं ।
तर्ह्युत्तिष्ठत ।	तो उठिये ।
जलं देहि ।	जल दे ।
गृह्यताम् ।	लीजिये ।
ताम्बूलादीन्यानीयताम् ।	पान बीड़े इलायची आदि लाओ ।
इमानि सन्ति गृह्णन्तु ।	ये हैं लीजिये ।

सभाप्रकरणम् ॥

इदानीं सभायां काचिच्चर्चा विधेया ।	अब सभा में कुछ वार्त्तालाप करना चाहिये ।
धर्म्मः किं लक्षणोऽस्तीति पृच्छामि ?	मैं पूछता हूं कि धर्म्म का क्या लक्षण है ?
वेदप्रतिपाद्यो न्याय्यः पक्षपातरहितो यश्च परोपकारसत्याऽऽचरणलक्षणः ।	वेदोक्तन्यायानुकूल पक्षपातरहित और जो पराया उपकार तथा सत्याचरण युक्त है उसी को धर्म्म जानना चाहिये ।
ईश्वरः कोऽस्तीति ब्रूहि ?	ईश्वर किस को कहते हैं आपकहिये?
यः सच्चिदानन्दस्वरूपः सत्यगुणकर्म्मस्वभावः ।	जो सच्चिदानन्दस्वरूप और जिस के गुण कर्म स्वभाव सत्य ही हैं वह ईश्वर कहाता है ।
मनुष्यैः परस्परं कथं वर्त्तितव्यम् ?	मनुष्यों को एक दूसरे के साथ कैसे २ वर्तना चाहिये ?

धर्म्मसुशीलतापरोपकारैः सह यथायोग्यम् ।	धर्म श्रेष्ठ स्वभाव और परोपकार के साथ जिन से जैसा व्यवहार करना योग्य हो वैसा ही उन से वर्त्तना चाहिये ।

आर्यावर्त्तचक्रवर्त्तिराजप्रकरणम् ॥

अस्मिन्नार्य्यावर्त्ते पुरा के के चक्रवर्त्तिराजा अभूवन् ?	इस आर्य्यावर्त्त देश में पहिले कौन २ चक्रवर्ती राजा हुए हैं ?
स्वयंभुवाद्या युधिष्ठिरपर्य्यन्ताः।	स्वयंभू से लेके युधिष्ठिर पर्य्यन्त ।
चक्रवर्त्तिशब्दस्य कः पदार्थः ?	चक्रवर्त्ति शब्द का क्या अर्थ है ?
य एकस्मिन् भूगोले स्वकीयामाज्ञां प्रवर्त्तयितुं समर्थाः ।	जो एक भूगोल भर में अपनी राजनीतिरूप आज्ञा को चलाने में समर्थ हों ।
ते कीदृशीमाज्ञां प्राचीचरन् ?	वे कैसी आज्ञा का प्रचार करते थे ?
यया धार्मिकाणांपालनं दुष्टानां ताड़नं च भवेत् ।	जिस से धर्मियों का पालन और दुष्टों का ताड़न होवे ।

राजप्रजालक्षणराजनीत्यनीतिप्रकरणम् ॥

राजा को भवितुं शक्नोति ?	राजा कौन हो सकता है ?
यो धार्मिकाणां सभाया अधिपतित्वे योग्यो भवेत् ।	जो धर्मात्माओं की सभा का सभापति होने योग्य होवे ।
यः प्रजां पीड़यित्वा स्वार्थं साधयेत् स राजा भवितुमर्होऽस्ति न वा ?	जो प्रजा को दुःख दे कर अपना प्रयोजन साधे वह राजा हो सकता है वा नहीं ?

नहि नहि नहि स तु दस्युःखलु। नहीं नहीं नहीं वह तो डाकू ही है।

या राजद्रोहिणी सा तु न प्रजा किन्तु स्तेनेन तुल्या मन्तव्या। जो राजव्यवहार में विरोध करे वह प्रजा तो नहीं किन्तु उस को चोर के समान जानना चाहिये।

कथंभूता जनाः प्रजा भवितुमर्हाः ? कैसे मनुष्य प्रजा होने को योग्य हैं?

ये धार्मिकाः सततं राजप्रियकारिणः। जो धर्मात्मा और निरन्तर राजा के प्रियकारी हों।

राजपुरुषैरप्येवमेव प्रजाप्रियकारिभिः सदा भवितव्यम्। राजसम्बन्धी पुरुषों को भी वैसेही प्रजा के प्रिय करने में सदा रहना चाहिये।

शत्रुवशकरणप्रकरणम् ॥

एते शत्रुभिः सह कथं वर्तेरन्? ये लोग शत्रुओं के साथ कैसे वर्त्तें?

राजप्रजोत्तमपुरुषैररयः सामदामदण्डभेदैर्वशमानेयाः। राजा और प्रजा के श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य है कि अरियों को (साम) मिलाप (दाम) गुप्तदण्ड और (दण्ड) उन को दण्ड (भेद) आपस में उन को फोड़ देना उन से बश में करना चाहिये।

सदा स्वराज्यप्रजासेनाकोशधर्मविद्यासुशिक्षा वर्द्धनीयाः। सब दिन अपना राज्य, प्रजा, सेना, कोष, धर्म्म, विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा बढ़ाते रहना चाहिये।

यथाऽधर्माविद्यादुष्टशिक्षादस्युचोरादयो न वर्द्धेरंस्तथा सततमनुष्ठेयम् ।	जिस प्रकार से अधर्म अविद्या बुरी शिक्षा डांकू और चोर आदि न बढ़ें वैसा निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिये ।
धार्मिकैः सह कदापि न योद्धव्यम् ।	धर्मात्माओं के साथ कभी लड़ाई न करनी चाहिये ।
निर्जिता अपि दुष्टा विनयेन सत्कर्तव्याः ।	पराजित किये शत्रुओं का भी विनय के साथ मान्य करना चाहिये ।
राजप्रजाजनाः प्राणवत् परस्परं संपोष्य सुखिनो भवन्तु ।	राजा और प्रजा प्राण के तुल्य एक दूसरे की पुष्टि करके सदा सुखी रहैं ।
परस्परं निर्बलितकरणेन क्षयरोगिवत् सर्वे विनश्यन्ति ।	एक दूसरे को निर्बल करने से क्षयीरोग वाले के समान सब नष्ट हो जाते हैं ।
सदा ब्रह्मचर्येण विद्यया च शरीरात्मबलमेधनीयम् ।	सब काल में ब्रह्मचर्य्य और विद्या से शरीर और आत्मा का बल बढ़ाते रहना चाहिये ।
यथादेशकालं पुरुषार्थेन यथावत् कर्माणि कृत्वा सर्वथा सुखयितव्यम् ।	देश काल के अनुसार उद्यम से ठीक २ कर्म करके सब प्रकार सुखी रहना चाहिये ।

वैश्यव्यवहारप्रकरणम् ॥

वैश्याः कथं वर्त्तेरन् ?	बनिये लोग कैसे वर्त्तें ?

सर्वा देशभाषा लेखाव्यवहारं च विज्ञाय पशुपालनक्रयविक्रयादिव्यापारकुसीदवृद्धिकृषिकर्माणि धर्मेण कुर्वन्तः ।	सब देशभाषा और हिसाब को ठीक२ जान कर पशुओं की रक्षा लेन देन आदि व्यवहार व्याज वृद्धि और खेतीकर्म धर्म के साथ करते हुए ।

कुसीदग्रहणप्रकरणम् ॥

यद्येकवारन्दद्यात् गृह्णीयाच्च तर्हि कुसीदवृद्ध्या द्वैगुण्ये धर्मोऽधिकेऽधर्म इति वेदितव्यम् ।	जो एक वार दें लें तो व्याज वृद्धि सहित मूल धन द्विगुण तक लेने में धर्म और अधिक लेने में अधर्म होता है ऐसा जानना चाहिये ।
प्रतिमासं प्रतिवर्षं वा यदि कुसीदं गृह्णीयाद्यदा समूलं द्विगुणं धनमागच्छेत्तदा मूलमपि त्याज्यम् ।	जो महीने २ अथवा वर्ष २ में व्याज लेता जाय तो जब दूना धन आ जाय फिर आगे कुछ भी न लेना चाहिये ।

नौकाविमानादिचालनप्रकरणम् ॥

त्वं नौकाश्चालयसि न वा ?	तू नाव चलाता है वा नहीं ?
चालयामि ।	चलाता हूं ।
नदीषु वा समुद्रेषु ?	नदियों अथवा समुद्रों में ?
उभयत्र चालयामि ।	दोनों में चलाता हूं ।
कस्यान्दिशि कस्मिन्देशे गच्छन्ति ?	किस दिशा और किस देश में में जाती हैं ?

सर्वासु दिक्षु पातालदेशपर्य्यन्तम् ।	सब दिशाओं में पाताल देश अर्थात् अमरीका देश पर्य्यन्त ।
ताः कीदृश्यः सन्ति केन चलन्ति?	वे नौका कैसी और किससे चलती हैं ?
कैवर्त्तवाय्वग्निजलकलावाष्पादिभिः ।	मल्लाह वायु अग्नि जल कलायन्त्र और भाफ आदि से ।
याः पुरुषाश्चालयन्ति ता ह्रस्वा या महत्यस्ता वाय्वादिभिश्चाल्यन्ते ताश्चाश्वतरीश्यामकर्णाश्वाख्याः सन्ति ।	जिन को मनुष्य चलाते हैं वे छोटी २ नौका और जो बड़ी होती हैं वे वायु आदि से चलाई जाती हैं उन के अश्वतरी और श्यामकर्णाश्व आदि नाम हैं ।
विमानादिभिरपि सर्वत्र गच्छामश्च ।	और विमान आदि से सर्वत्र आया जाया करते हैं ।

क्रयविक्रयप्रकरणम् ॥

अस्य किम्मूल्यम् ?	इस का क्या मूल्य है ?
पञ्चरूप्याणि ।	पांच रुपये ।
गृहाणेदं वस्त्रं देहि ।	लीजिये पांच रुपये यह वस्त्र दीजिये ।
अद्यश्वो घृतस्य कोऽर्घः ?	आजकल घी का क्या भाव है ?
मुद्रिकया सपादप्रस्थं विक्रीणते ।	एक रुपया का सवासेर बेचते हैं ।
गुडस्य को भावः ?	गुड का क्या भाव है ?
अष्टभिः पणैरेकसेटकमात्रं ददति ।	दो आने का एक सेरभर देते हैं ।
त्वमापणं गच्छ एलामानय ।	तू दूकान को जा इलायची ले आ ।
आनीता गृहाण ।	ले आया लीजिये ।

कस्य हट्टे दधिदुग्धे अच्छे प्राप्नुतः ?	किस की दूकान पर दूध और दही अच्छे मिलते हैं ?
धनपालस्य ।	धनपाल की ।
स सत्येनैव क्रयविक्रयौ करोति ।	वह सत्य ही से लेन देन करता है ।
श्रीपतिर्वणिक् कीदृशोऽस्ति ?	श्रीपति बनिया कैसा है ?
स मिथ्याकारी ।	वह झूठा है ।
अस्मिन्संवत्सरे कियाँल्लाभो व्ययश्च जातः ?	इस वर्ष में कितना लाभ और खर्च हुआ ?
पंचलक्षाणि लाभो लक्षद्वयस्य व्ययश्च ।	पांच लाख रुपये लाभ और दो लाख खर्च हुए ।
मम खल्वस्मिन् वर्षे लक्षत्रयस्य हानिर्जाता ।	मेरी तो इस वर्ष में तीन लाख की हानि होगई ।
कस्तूरी कस्मादानीयते ?	कस्तूरी कहां से लाई जाती है ?
नयपालात् ।	नयपाल से ।
बहुमूल्यमाविकं कुत आनयन्ति?	दुशाले आदि कहां से लाते हैं ?
कश्मीरात् ।	कश्मीर से ।

गमनागमन-प्रकरणम् ॥

कुत्र गच्छसि ?	कहां जाते हो ?
पाटलिपुत्रकम् ।	पटने को ।
कदाऽऽगमिष्यसि ?	कब आओगे ?
एकमासे ।	एक महीने में ।
स क्व गतः ?	वह कहां गया ?
शाकमानेतुम् ।	शाक लेने को ।

क्षेत्रवपन-प्रकरणम् ॥

क्षेत्राणि कर्षन्तु ।	खेत जोतो ।
वीजान्युप्तानि न वा ?	बीज बोये वा न हीं ?
उप्तानि ।	बोदिये ।
अस्मिन् क्षेत्रे किमुप्तम् ?	इस खेत में क्या बोया है ?
व्रीहयः ।	धान ।
एतस्मिन् ?	इस में ?
गोधूमाः ।	गेहूं ।
अस्मिन् किं वपन्ति ?	इस खेत में क्या बोते हैं ?
तिलमुद्गमाषाढकीः ।	तिल मूंग उड़द और अरहर ।
एतस्मिन् किमुप्यते ?	इस में क्या बोया जाता है ?
यवाः ।	जव ।

शस्यच्छेदन-प्रकरणम् ।

संप्रति केदाराः पक्वाः ।	इस समय खेत पक्क गये हैं ।
यदि पक्वाः स्युस्तर्हि लुनन्तु ।	जो पक्क गये हों तो काटो ।
इदानीं कृषीबला अन्योन्यं केदारान् व्यतिलुनन्ति ।	इस समय खेती करनेवाले आपस में एकदूसरे का पारापारी खेत काटते हैं ।
ऐषमोधान्यानिप्रभूतानिजातानि अत एवैकस्या मुद्राया गोधूमाः खारीप्रमिता अन्यानि तण्डुलादीन्यपि किंचिदधिकन्यूनानि मिलन्ति ।	इस साल में धान्य बहुत हुये हैं इसी से एक रुपये के गेहूं एक मन और चावल आदि अन्न भी मन से कुछ अधिक न्यून मिलते हैं ।

गवादिदोहनपरिमाण—प्रकरणम् ।

इयं गौर्दुग्धन्ददाति न वा ?	यह गौ दूध देती है वा नहीं ?
ददाति ।	देती है ।
इयं महिषी कियद् दुग्धं ददाति?	यह भैंस कितना दूध देती है ?
दशप्रस्थाः ।	दश सेर ।
तवाऽजावयः सन्ति न वा ?	तेरे बकरी भेड हैं वा नहीं ?
सन्ति ।	हैं ।
प्रतिदिनं ते कियद् दुग्धं जायते ?	नित्य तेरे कितना दूध होता है ?
पञ्च खार्यः ।	पांच मन ।
नित्यं किं परिमाणे घृतनवनीते भवतः ?	प्रतिदिन कितना घी और मक्खन होता है ?
सार्द्धद्वादशप्रस्थे ।	साढे बारह सेर ।
प्रत्यहं कियद् भुज्यते कियच्च विक्रीयते ?	प्रतिदिन कितना खाया जाता और कितना बिकता है ?
सार्द्धद्विप्रस्थं भुज्यते दशप्रस्थं च विक्रीयते ।	अढाईसेर खाया जाता और दश सेर बिकता है ।

क्रयविक्रयार्घ—प्रकरणम् ।

एतद्रूप्यैकेन कियन् मिलति ?	ये घी और मक्खन एक रुपया का कितना मिलता है ?
त्रित्रि प्रस्थम् ।	तीन तीन सेर ।
तैलस्य कियन् मूल्यम् ?	तेल का क्या मूल्य है ?
मुद्रापादेन सेटकद्वयं प्राप्यते ।	चार आने का दो सेर मिलता है ।

अस्मिन्नगरे कति हट्टास्सन्ति ?	इस नगर में कितनी दुकानें हैं ?
पञ्च सहस्राणि ।	पांच हजार ।

कुसीद-प्रकरणम् ॥

शतं मुद्रा देहि ।	सौ रुपये दीजिये ।
ददामि परन्तु कियत् कुसीदं दास्यसि ?	दूंगा परन्तु कितना ब्याज देगा ?
प्रतिमासं मुद्रार्द्धम् ।	प्रति महीने में आठ आना ।

उत्तमर्णाधमर्ण-प्रकरणम् ॥

भो अधमर्ण यावद्धनं त्वया पूर्वं गृहीतं तदिदानीं देहि ।	हे ऋणिया जो धन तूने पहिले लिया था वह अब दे ।
मम सांप्रतं तु दातुं सामर्थ्यं नास्ति ।	मेरा इस समय तो देने का सामर्थ्य नहीं है ।
कदा दास्यसि ?	कब देगा ?
मासद्वयाऽनन्तरम् ।	दो महीने के पीछे ।
यद्येतावति समये न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमान्निग्रहीष्यामि ।	जो तू इतने समय में न देगा तो राजप्रबन्ध से पकड़ा के लूंगा ।
यद्येवं कुर्य्यां तर्हि तथैव ग्रहीतव्यम् ।	जो ऐसा करूं तो वैसे ही लेना ।

राजप्रजासंबन्ध-प्रकरणम् ॥

भो राजन् ममायमृणं न ददाति ।	हे राजन् मेरा यह ऋण नहीं देता ।
यदा तेन गृहीतं तदानीन्तनः कश्चित्साक्षी वर्त्तते नवा ?	जब उसने लिया था उस समय का कोई साक्षी वर्त्तमान है वा नहीं ?

अस्ति ।	है ।
तर्ह्यानय ।	तो लाओ ।
आनीतोऽयमस्ति ।	लाया यह है ।

साक्षि-प्रकरणम् ॥

भोः साक्षिस्त्वमत्र किञ्चिज्जानासि नवा ?	हे साक्षी तू इस विषय में कुछ जानता है वा नहीं ?
जानामि ।	जानता हूं ।
यादृशंजानासितादृशं सत्यं ब्रूहि।	जैसा जानता है वैसा सच कह ।
सत्यं वदामि।	सत्य कहता हूं ।
अस्मादनेन मत्समक्षे सहस्रं मुद्रा गृहीताः ।	इस से इसने मेरे सामने सहस्र रुपये लिये थे ।
भो भृत्य तं शीघ्रमानय ।	ओ नोकर उसको जलदी लेआ ।
आनयामि ।	लाता हूं।
गच्छ राजसभायां राज्ञा त्वमाहूतोऽसि ।	चल राजसभा में राजा ने तुझ को बुलाया है ।
चलामि ।	चलता हूं ।
भो राजन्नुपस्थितस्सः ।	हे राजन् वह आया है।
त्वयाऽस्यर्णं कुतो नादायि ?	तूने इस का ऋण क्यों नहीं दिया ?
अस्मिन् समये तु मम सामर्थ्यन्नास्ति षण्मासानन्तरं दास्यामि ।	इस समय तो मेरा सामर्थ्य नहीं है परन्तु छः महीने के पीछे दूंगा ।
पुनर्विलम्बस्तु न करिष्यसि ?	फिर देर तो न करेगा ?

महाराजकदापि न करिष्यामि ।	महाराज कभी न करूंगा ।
अच्छ गच्छ धनपाल यदि सप्तमे मास्ययं न दास्यति तर्ह्येनं निगृह्य दापयिष्यामि ।	अच्छा जाओ धनपाल जो यह सातवें महीने में न देगा तो इस को पकड़ के दिलादूंगा ।
अयं मम शतं मुद्रा गृहीत्वाऽधुना न ददाति ।	यह मेरे सौ रुपये ले के अब नहीं देता ।
किं च भो यदयं वदति तत् सत्यं न वा ?	क्यों जी जो ये कहता है वह सच है वा नहीं ?
मिथ्यैवाऽस्ति ।	झूठ ही है ।
अहन्तु जानाम्यपि नाऽस्य-मुद्रा मया कदा स्वीकृताः ।	मैं तो जानता भी नहीं कि इस के रुपये मैंने कब लिये थे ।
उभयोस्साक्षिणः सन्ति न वा ?	दोनों के साक्षी लोग हैं वा नहीं?
सन्ति ।	हैं ।
कुत्र वर्तन्ते ।	कहां वर्तमान हैं ।
इम उपतिष्ठन्ते ।	ये खड़े हैं ।
अनेन युष्माकं समक्षे शतं मुद्रा दत्ता न वा ?	इस ने तुह्मारे सामने सौ रुपये दिये वा नहीं ?
दत्तास्तु खलु ।	निश्चित दिये तो हैं ।
अनेन शतं मुद्रा गृहीता न वा?	इस ने सौ रुपये लिये वा नहीं ?
वयं न जानीमः ।	हम नहीं जानते ।
प्राड्विवाकेनोक्तम् ।	वकील ने कहा ।
अयमस्य साक्षिणश्च सर्वे मिथ्यावादिनः सन्ति ।	यह और इस के साक्षी लोग सब झूठ बोलने वाले हैं ।

कुत इदमेतेषां परस्परं विरुद्धं वचोऽस्ति ।

क्योंकि यह इन लोगों का वचन परस्पर विरुद्ध है ।

यतस्त्वया मिथ्यालपितमत एव तवैकसंवत्सरपर्य्यन्तं कारागृहे बन्धः क्रियते ।

जिस से तूंने झूंठ बोला इसी कारण तेरा एक वर्ष तक बन्दीघर में बन्धन किया जाता है ।

अयमुत्तमर्णस्त्वदीयान् पदार्थान् गृहीत्वा विक्रीय वा स्वर्णं ग्रहीष्यति ।

यह सेठ तेरे पदार्थों को लेकर अथवा बेंच के अपने ऋण को ले लेगा ।

अयं मदीयानि पञ्चशतानि रूप्याणि स्वीकृत्य न ददाति ।

यह मेरे पांचसौ रुपये लेकर नहीं देता ।

कुतो न ददासि ?

तू क्यों नहीं देता ?

मया नैव गृहीताः कथं दद्याम् ।

मैंने लियेही नहीं कैसे दूं ।

अयम्मम लेखोऽस्ति पश्य तम् ।

यह मेरा लेख है देखिये इस को ।

आनय ।

लाओ ।

गृह्यताम् ।

लीजिये ।

अयं लेखो मिथ्या प्रतिभाति ।

यह लेख झूंठ मालूम पड़ता है ।

तस्मात् त्वं षण्मासान् कारागृहे वस तवेमे साक्षिणश्च द्वौ-द्वौ मासौ तत्रैव वसेयुः ।

इस से तू छः महीने बन्दीगृह में रह और तेरे साची भी, दो दो महीने वहीं रहें ।

सेव्यसेवक-प्रकरणम् ॥

भो मङ्गलदास सेवार्थं कैङ्कर्यं करिष्यसि ?

हे मङ्गलदास सेवा के लिये नौकरी करेगा ?

करिष्यामि ।	करूंगा ।
किं प्रतिमासं मासिकं ग्रहीतुमिच्छसि ?	प्रतिमहीने कितना वेतन लिया चाहता है ?
पञ्चरूप्याणि ।	पांच रुपये ।
मयैतावद्दास्यते चेद् यथायोग्या परिचर्य्या विधेया।	मैं इतना दूंगा जो तुझ से ठीक२ सेवा हो सकेगी ।
यदाहं भवन्तं सेविष्ये तदा भवानपि प्रसन्न एव भविष्यति ।	जब मैं आपको सेवा करूं गा तब आप भी प्रसन्न ही होंगे ।
दन्तधावनमानय ।	दातून ले आ ।
स्नानार्थं जलमानय ।	नहाने के लिये जल ला ।
उत्तरीयं वस्त्रं देहि ।	अंगोछा दे ।
आसनं स्थापय।	आसन रख ।
पाकं कुरु ।	रसोई कर ।
हे सूद त्वयाऽन्नं व्यञ्जनं च सुष्ठु सम्पादनीयम् ।	हे रसोइये तू अन्न और शाक आदि उत्तम बना ।
अद्य किं किं कुर्याम् ।	आज क्या २ करूं ।
पायसमोदकौदनसूपरोटिकाशाकान्युपव्यञ्जनादीनि च ।	खीर, लड्डू, चावल, रोटी, दाल, शाक, और चटनी आदि भी ।

मिश्रित–प्रकरणम् ॥

नित्यप्रति किं वेतनं दास्यसि?	नित्यप्रति क्या नौकरी दोगे ?
प्रत्यहं द्वादश पणाः ।	प्रतिदिन बारह पैसे ।
वस्त्राणि श्लक्ष्णे पट्टे प्रक्षालनीयानि ।	कपड़े चिकने साफ पत्थर की पटिया पर धोने चाहियें ।

गा वने चारय ।	गौयें बन में चरा ।
पुष्पबाटिकायां गन्तव्यमस्ति ।	फूलों की बगीची में जाना है ।
आम्रफलानि पक्कानि न वा ?	आम पके वा नहीं ?
पक्कानि सन्ति ।	पके हैं ।
उपानहावानय ।	जूते लाओ ।

गमनागमनप्रकरणम् ॥

अयं रक्तोष्णीषः क्व गच्छति ?	यह लालपगड़ीवाला कहांजाता है ?
स्वगृहम् ।	अपने घर को ।
अस्य कदा जन्माभूत् ?	इस का कब जनम हुआ था ?
पञ्च संवत्सरा अतीताः ।	पांच वर्ष बीते ।
परेद्युर्ग्रामो गन्तव्यः ।	कल गांव जाना चाहिये ।
गमिष्यामि ।	जाऊं गा ।
भवान् परेद्युः क्व गन्ता ?	आप कल कहां जाओ गे ?
अयोध्याम् ।	अयोध्या को ।
तत्र किं कार्यमस्ति ?	वहां क्या काम है ?
मित्रैःसह मेलनं कर्त्तव्यमस्ति ।	मित्रों के साथ मेल कर्त्तव्य है ।
कदागतोऽसि ?	कब आया है ?
इदानीमेवाऽऽगच्छामि ।	अभी आता हूं ।

अथ रोगप्रकरणम् ॥

अस्य कीदृशो रोगो वर्त्तते ?	इस को किस प्रकार का रोग है ?
जीर्णज्वरोऽस्ति ।	जीर्णज्वर है ।

औषधं देहि ।	ओषधी दे ।
ददामि ।	देता हूं ।
परन्तु पथ्यं सदा कर्त्तव्यं कुतो नहि पथ्येन विना रोगो निवर्त्तते ।	परन्तु पथ्य सदा करना चाहिये क्योंकि पथ्य के बिना रोग निवृत्त नहीं होता ।
अयं कुपथ्यकारित्वात् सदा रुग्णो वर्त्तते ।	यह कुपथ्यकारी होने से सदा रोगी रहता है ।
अस्य पित्तकोपो वर्त्तते ।	इस को पित्तकोप है ।
मम कफो वर्द्धत औषधं देहि ।	मेरे कफ बढ़ता जाता है ओषधि दीजिये ।
निदानं कृत्वा दास्यामि ।	रोग की परीक्षा करके दूंगा ।
अस्य महान् कासश्वासोऽस्ति ।	इस को बड़ा कासश्वास अर्थात् दमा है।
मम शरीरे तु वातव्याधिर्वर्त्तते ।	मेरे शरीर में तो बातव्याधि है ।
संग्रहणी निवृत्ता न वा ?	संग्रहणी छुटी वा नहीं ?
अद्य पर्य्यन्तन्तु न निवृत्ता ।	आज तक तो नहीं छुटी ।
औषधं संसेव्य पथ्यं करोषि न वा ?	ओषधि का सेवन करके पथ्य करते हो वा नहीं ?
क्रियते परन्तु सुवैद्यो न मिलति कश्चिद्यः सम्यक् परीक्ष्यौषधं दद्यात् ।	करता तो हूं परन्तु अच्छा वैद्य कोई नहीं मिलता कि जो अच्छे प्रकार परीक्षा करके ओषधि देवे ।
तृषाऽस्ति चेज्जलं पिब ।	प्यास हो तो जल पी ।

मिश्रितप्रकरणम् ॥

इदानीं शीतं निवृत्तमुष्णसमय आगतः ।	अब तो शीत निवृत्त हुआ गरमी का समय आया ।
हेमन्ते क्व स्थितः ?	जाड़े में कहां रहा था ?
वंगेषु ।	बंगाल में ।
पश्य मेघोन्नतिं कथं गर्जति विद्युद्द्योतते च ।	देखो मेघ की बढ़ती कैसा गर्जता और बिजुली चमकती है ।
अद्य महती वृष्टिर्जाता यया तड़ागा नद्यश्च पूरिताः ।	आज बड़ी वर्षा हुई जिस से तालाब और नदियां भर गईं ।
शृणु मयूराः सुशब्दयन्ति ।	सुनो मोर अच्छा शब्द करते हैं ।
कस्मात् स्थानादागतः ?	किस स्थान से आया ?
जंगलात् ।	जंगल से ।
तत्र त्वया कदापि सिंहो दृष्टो न वा ?	वहां तू ने कभी सिंह भी देखा था वा नहीं ?
बहुवारं दृष्टः ।	कई बेर देखा ।
नदी पूर्णा वर्त्तते कथमागतः ?	नदी भरी है कैसे आया ?
नौकया ।	नाव से ।
आरोहत हस्तिनं गच्छेम ।	चढो हाथी पर चलें ।
अहन्तु रथेनागच्छामि ।	मैं तो रथ से आता हूं ।
अहमश्वोपरि स्थित्वा गच्छेयं शिविकायां वा ।	मैं घोड़े पर अथवा पालकीपर चढ़के जाऊं ।
पश्य शारदं नभः कथं निर्म्मलं वर्त्तते ।	देखो शरद् ऋतु का आकाश कैसा निर्म्मल है ।

चन्द्र उदितो न वा ?	चन्द्रमा उगा वा नहीं ?
इदानीन्तु नोदितः खलु ।	इस समय तो नहीं उगा है ।
कीदृश्यस्तारकाः प्रकाशन्ते ?	किस प्रकार तारे प्रकाशमान हो रहे हैं ?
सूर्य्योदयाच्चलन्नागच्छामि ।	सूर्योदय से चलता हुआ आता हूं ।
क्वापि भोजनं कृतन्न वा ?	कहीं भोजन किया वा नहीं ?
कृतम्मध्याह्नात्प्राक् ।	किया था दोपहर से पहिले ।
अधुनाऽत्र कर्त्तव्यम् ।	अब यहां कीजिये ।
करिष्यामि ।	करूंगा ।

विवाहस्त्रीपुरुषालापप्रकरणम् ॥

त्वया कीदृशो विवाहः कृतः?	तूंने किसप्रकार का विवाह कियाथा?
स्वयंवरः ।	स्वयंवर ।
स्त्र्यनुकूलास्ति न वा ?	स्त्री अनुकूल है वा नहीं ?
सर्वथाऽनुकूलाऽस्ति ।	सब प्रकार से अनुकूल है।
कत्यपत्यानि जातानि सन्ति ?	कितने लड़के हुए हैं ?
चत्वारः पुत्रा द्वे कन्ये च ।	चार पुत्र और दो कन्या ।
स्वामिन्नमस्ते ।	स्वामीजी, नमस्ते अर्थात् मैं आप का सत्कार करती हूं ।
नमस्ते प्रिये ।	नमस्ते प्रिया ।
कांचित्सेवामनुज्ञापय ।	किसी सेवा की आज्ञा करिये।
सर्वथैव सेवसे पुनराज्ञापनस्य कावश्यकताऽस्ति ।	सब प्रकार की सेवा करती ही हो फिर आज्ञा कराने की क्या आवश्यकता है।

अद्य भवाञ्छ्रमं कृतवानत उष्णेन जलेन स्नातव्यम् ।	आज आपने श्रम किया है इस कारण गरम जल से स्नान करना चाहिये।
गृहाणेदं जलमासनं च ।	लीजिये यह जल और आसन ।
इदानीं भ्रमणाय गन्तव्यम् ।	इस समय घूमनेके लिये जाना चाहिये।
क्व गच्छेव ?	कहां चलें ?
उद्यानेषु ।	बगीचों में ।

स्त्रीश्वश्रूश्वशुरादिप्रकरणम् ॥

हे ! श्वश्रु सेवामाज्ञापय किं कुर्याम ?	हे ! सास सेवा की आज्ञा कीजिये क्या करूं ?
सुभगे जलं देहि ।	सुभगे जल दे ।
गृहाणेदमस्ति ।	लीजिये यह है ।
हे ! श्वशुर भवान् किमिच्छत्याज्ञापयतु ।	हे ! श्वशुर आप की क्या इच्छा है आज्ञा कीजिये ।
हे ! वशंवदे नित्यं सदाचारमाचर ।	हे ! वशंवदे नित्य सती स्त्रियों का आचरण कर ।

अथ ननन्दभ्रातृजायावादप्रकरणम् ॥

हे ! ननन्दरिहागच्छ वार्तालापं कुर्याव ।	हे ! ननन्द यहां आओ बात चीत करें ।
वद भ्रातृजाये ! किमिच्छसि?	कहो भौजाई क्या इच्छा है ?
तव पतिः कीदृशोऽस्ति ?	तेरा पति कैसा है ?
अतीव सुखप्रदो यथा तव ।	अत्यन्त सुख देने वाला है जैसा तेरा।

मया त्वीदृशः पतिः सुभाग्येन लब्धोऽस्ति ।	मैंने तो इस प्रकार का पति अच्छे भाग्य से पाया है ।
कदाचिदप्रियं तु न करोति ?	कभी कोई बुराई तो नहीं करता ?
कदापि नहि किन्तु सर्वदा प्रीतिं वर्द्धयति ।	कभी नहीं किन्तु सबदिन प्रीति बढ़ाता है ।
पश्याभ्यां बाल्याऽवस्थायां विवाहः कृतोऽतः सदा दुःखिनौ वर्त्तेते ।	देखो इन दोनों ने बाल्याऽवस्था में विवाह किया है इस से सदा दुःखी रहते हैं ।
यान्यपत्यानि जातानि तान्यपि रुग्णान्यग्रेऽपत्यस्याऽऽशैव नास्ति निर्बलत्वात् ।	जो लड़के हुए वे भी रोगी हैं आगे लड़का होने की आशा ही नहीं है निर्बलता से ।
पश्य तव मम च कीदृशानि पुष्टान्यपत्यानि द्विवर्षानन्तरं जायन्ते ।	देखो तेरे और मेरे कैसे पुष्ट लड़के दो वर्ष के पीछे होते जाते हैं ।
सर्वदा प्रसन्नानि सन्ति वर्द्धन्ते च सुशीलत्वात् ।	सब काल में प्रसन्न और बढ़ते जाते हैं सुशीलता से ।
नह्यस्मिन्संसारेऽनुकूलस्त्रीपतिजन्यसदृशं सुखं किमपि विद्यते ।	इस संसार में अनुकूल स्त्री और पुरुष से होने वाले सुख के सदृश दूसरा सुख कोई नहीं है ।
इदानीं वृद्धाऽवस्था प्राप्ता यौवनं गतं केशाः श्वेता जाताः प्रतिदिनं बलं ह्रसति च ।	इस समय वृद्धावस्था आई जवानी गई बाल सफेद हुए और नित्य बल घटता है ।

स इदानीं गमनागमनमपिकर्त्तु-मशक्तो जातः ।

वह इस समय आने जाने को भी असमर्थ हो गया है ।

बुद्धिविपर्य्यासाद्विपरीतं भाषते ।

बुद्धि के विपरीत होने से उलटा बोलता है ।

अद्याऽस्य मरणसमय आगत ऊर्ध्वश्वासत्वात् ।

आज इस के मरने का समय आया ऊपर को श्वास के चलने से ।

सोऽद्य मृतः ॥

वह आज मर गया ॥

नीयतां श्मशानं वेदमन्त्रैर्घृतादिभिर्दह्यताम् ।

लेचलो श्मशान को वेद मन्त्रों करके घी आदि सुगन्ध से जलादो ।

शरीरं भस्मीभूतं जातमतस्तृतीयेह्न्यस्थिसंचयनं कृत्वा पुनस्तन्निमित्तं शोकादिकं किंचिदपि नैव कार्यम् ।

शरीर भस्म हो गया इस से तीसरे दिन हाड़ों को वेदी से इकट्ठे कर उठा के फिर उसके निमित्त शोकादि कुछ भी न करना चाहिये ।

त्वं मातापित्रोः सेवां न करोष्यतः कृतघ्नो वर्त्तसेऽतो मातापितृसेवा केनापि नैव त्याज्या ।

तू माता पिता को सेवा नहीं करता इस से कृतघ्नी है इस लिये माता पिता की सेवा का त्याग किसी को कभी न करना चाहिये ।

अथ सायंकालकृत्यप्रकरणम् ॥

इदानीन्तु संध्यासमय आगतः सायंसन्ध्यामुपास्य भोजनं कृत्वा भ्रमणं कुरुत ।

अब तो संध्यासमय आया संध्योपासन और भोजन करके घूमना घामना करो ।

अद्य त्वया कियत्कार्यं कृतम्?	आज तूने कितना काम किया?
एतावत्कृतमेतावदवशिष्टमस्ति।	इतना किया और इतना शेष है।
अद्य कियांल्लाभो व्ययश्च जातः।	आज कितना लाभ और खर्च हुआ।
पञ्चशतानि मुद्रा लाभः सार्द्धे द्वे शते व्ययश्च।	पांच सौ रुपये लाभ और अढ़ाई सौ खर्च हुए।
इदानीं सामगानं क्रियताम्।	इस समय सामवेद का गान कीजिये।
वीणादीनि वादित्राण्यानीयताम्।	वीणादिक बाजे लाइये।
आनीतानि।	लाये।
वाद्यताम्।	बजाइये।
गीयताम्।	गाइये।
कस्य रागस्य समयो वर्त्तते।	किस राग की वेला है।
षड्जस्य।	षड्ज की।
इदानीं तु दशघटिकाप्रमिता रात्र्यागता शयीध्वम्।	इस समय तो दश घड़ी रात आई सोइये।
गम्यतां स्वस्वस्थानम्।	जाइये अपने २ घर को।
स्वस्वशय्यायां शयनं कर्तव्यम्।	अपने २ पलंग पर सोना चाहिये।
सत्यमेवमेवेश्वरकृपया सुखेन रात्रिर्गच्छेत्प्रभातं भवेत्।	सत्य है ऐसे ही ईश्वर की कृपा से सुखपूर्वक रात बीते और सुवेरा होवे।

शरीराऽवयवप्रकरणम् ॥

अस्य शिरः स्थूलं वर्त्तते।	इस का शिर बड़ा है।
देवदत्तस्य मूर्द्धकेशाःकृष्णा वर्त्तन्ते।	देवदत्त के शिर के बाल काले हैं।

मम तु खलु श्वेता जाताः ।	मेरे तो सुपेद हो गये ।
तवापि केशा अर्द्धश्वेताः सन्ति।	तेरे भी बाल आधे सुपेद हैं ।
अस्य ललाटं सुन्दरमस्ति ।	इस का माथा सुन्दर है ।
अयं शिरसा खल्वाटः ।	इस के शिर में बाल नहीं हैं ।
तस्योत्तमभ्रुवौ स्तः ।	उस की अच्छी भौंह हैं ।
श्रोत्रेण शृणोषि न वा ?	कान से सुनता है वा नहीं ?
शृणोमि ।	सुनता हूं ।
अनया स्त्रिया कर्णयोः प्रशस्तान्याभूषणानि धृतानि ।	इस स्त्री ने कानों में अच्छे सुन्दर गहने पहिने हैं ।
किमयं कर्णाभ्यां बधिरोऽस्ति ?	क्या यह कानों से बहिरा है ?
बधिरस्तु न परन्तु श्रवणे ध्यानं न ददाति ।	बहिरा तो नहीं परन्तु सुनने में ध्यान नहीं देता ।
अयं विशालाक्षः ।	यह अच्छे नेत्र वाला है ।
त्वं चक्षुषा पश्यसि न वा ?	तू आंख से देखता है वा नहीं ?
पश्यामि परन्त्विदानीं मन्ददृष्टिर्जातोऽहमस्मि ।	देखता हूं परन्तु इस समय मन्ददृष्टि अर्थात् थोड़ी दृष्टिवाला होगया हूं ।
इदानीन्ते रक्ते अक्षिणी कथं वर्तेते ?	इस समय तेरी आंखें लाल क्यों हैं ?
यतोऽहं शयनादुत्थितः ।	जिस से मैं सोने से उठा हूं ।
स काणो धूर्त्तोऽस्ति ।	वह काना धूर्त्त है ।
द्रष्टव्यमयमन्धः सचक्षुष्कवत् कथं गच्छति ।	देखना चाहिये यह अन्धा आंख वाले के समान कैसे जाता है ।

तवाऽक्षिणी कदा नष्टे ?	तेरी आंखें कब नष्ट हुईं ?
यदाऽहं पञ्चवर्षोऽभूवम् ।	जब मैं पांच वर्ष का हुआ था ।
इदानीम्मन्नेत्रे रोगोऽस्ति स कथं निवर्त्स्यति ?	इस समय मेरे नेत्र में रोग है वह कैसे निवृत्त होगा ?
अञ्जनाद्यौषधसेवनेन निवर्त्तिष्यते ।	अञ्जन आदि औषध के सेवन से निवृत्त होगा ।
तस्य नासिकोत्तमास्ति ।	उस की नाक अतिसुन्दर है ।
भवानपि शुकनासिकः ।	आप भी सुग्गे के सी नाक वाले हैं ।
घ्राणेन गन्धं जिघ्रसि न वा ?	नाक से गन्ध सूंघते हो वा नहीं ?
श्लेष्मकफत्वान्मया नासिकया गन्धो न प्रतीयते ।	सरदी कफ होने से मुझ को नासिका से गन्ध की प्रतीति नहीं होती ।
अयं पुरुषः सुकपोलोऽस्ति ।	यह पुरुष अच्छे गाल वाला है ।
अतिस्थूलत्वादस्य नाभिर्गभीरा ।	बहुत मोटा होने से इस की नाभी गहरी है ।
त्वमद्य प्रसन्नमुखो दृश्यसे किमत्र कारणम् ?	तू आज प्रसन्नमुख दिखाई देता है इस में क्या कारण है ?
अयं सदाह्लादितवदनो विद्यते ।	यह सर्वदिन प्रसन्नमुख बना रहता है ।
अस्यौष्ठौ श्रेष्ठौ वर्त्तेते ।	इस के ओष्ठ बहुत अच्छे हैं ।
अयँल्लम्बोष्ठत्वाद्भयङ्करोऽस्ति ।	यह लम्बे ओष्ठ वाला है इस से भयङ्कर है ।
सर्वैर्जिह्वया स्वादो गृह्यते ।	सबलोग जीभ से स्वाद लिया करते हैं ।
वाचा सत्यं प्रियं मधुरं सदैव वाच्यम् ।	वाणी से सत्य प्रिय और मधुर सब दिन बोलना चाहिये ।

नैव केनचित्स्वल्पवनृतादिकं वक्तव्यम् ।	कभी किसी को झूठ बोलना नहीं चाहिये ।
अयं सुदन् वर्त्तते ।	यह अच्छे दांतों वाला है ।
तव दन्ता दृढाःसन्ति वा चलिताः?	तेरे दांत दृढ़ हैं वा चल गये हैं ?
मम दृढा अस्य तु त्रुटिताः सन्ति ।	मेरे दृढ़ हैं अर्थात् निश्चल हैं और इस के तो टूट गये हैं ।
मन्मुख एकोपि दन्तो नास्त्यतः कष्टेन भोजनादिकं करोमि ।	मेरे मुख में एक भी दांत नहीं है इस से क्लेश से भोजन करता हूं।
अस्य श्मश्रूणि लम्बीभूतानि सन्ति ।	इस की मोंछें लम्बी हैं ।
तव चिबुकस्योपरि केशा न्यूनाः सन्ति ।	तेरे डाढ़ी के ऊपर बाल थोड़े हैं।
त्वया कण्ठ इदं किमर्थं बद्धम्?	तूने गले में यह किसलिये बांधा हैं ?
अस्योरू विस्तीर्णौ स्तः ।	इस की जंघा अच्छी तैयार हैं ।
त्वया हृदये किं लिप्तम् ?	तू ने छाती में क्या लगाया है ?
इदानीं हेमन्तोऽस्त्यतः कुङ्कुमकस्तूर्यौ लिप्ते ।	इस समय हेमन्त ऋतु है इस से केसर और कस्तूरी लेपन किये हैं।
तथा हृच्छूलनिवारणायौषधम् ।	वैसे ही हृदयशूल निवारण के लिये औषध ।
माणवकः स्तनाद्दुग्धं पिबति ।	लड़का स्तन से दूध पीता है ।
पश्य देवदत्तोऽयं लम्बोदरो वर्त्तते ।	देख देवदत्त यह बड़े पेट वाला अर्थात् तुन्दीला है ।

अयन्तु खलु क्षामोदरः ।	यह तो छोटे पेट वाला है ।
तव पृष्ठे किं लग्नमस्ति ?	तेरी पीठ में क्या लगा है ?
किं स्कन्धाभ्यां भारं वहसि ?	क्या तू कन्धों से भार उठाता है ?
पश्याऽस्य क्षत्रियस्य बाह्वोर्बलं येन स्वभुजबलप्रतापेन राज्यं वर्द्धितम् ।	देख इस क्षत्रिय का बाहुबल जिसने अपने बाहुबल से राज्य बढ़ाया है।
मनुष्येण हस्ताभ्यामुत्तमानि धर्मकार्याणि सेव्यानि नैव कदाचिदधर्म्याणि ।	मनुष्य को चाहिये कि हाथों से उत्तम धर्मयुक्त कर्म करे न कभी अधर्मयुक्त कर्मों को ।
अस्य करपृष्ठे करतले च घृतं लग्नमस्ति ।	इस के हांथ की पीठ और तले में घी लगा है ।
मुष्टिबन्धने सत्येकत्राऽङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति ।	मूंठी बांधने में एक ओर अंगूठा और एक ओर पांच अंगुली होती हैं।
शरीरस्य मध्यभागे नाभिः पुरतः पश्चिमतः कटिः कथ्यते ।	शरीर के आगे बीचभाग को नाभी और पीछे के भाग को पीठ कहते हैं।
अयं मल्लः स्थूलोरुः ।	यह पहलवान मोटी जंघा वाला है।
माणवको जानुभ्यां गच्छति ।	लड़का घोंटू के बल से चलता है।
अद्यातिगमनेन जङ्घे पीडितेऽस्तः ।	आज बहुत चलने से जांघें दुखती हैं।
अहं पद्भ्यां ह्यो ग्राममगमम् ।	मैं पैदल कल गांव को गया था ।
अस्य शरीरे दीर्घाणि लोमानि सन्ति ।	इस के शरीर में बड़े २ रोम हैं ।

तव शरीरे न्यूनानि सन्ति ।	और तेरे शरीर में थोड़े रोम हैं ।
अस्य शरीरचर्म श्लक्ष्णं वर्त्तते।	इसके शरीर का चमड़ा चिकना है।
पश्यास्य नखा आरक्ताः सन्ति।	देख इसके नख कुछ २ लाल हैं।
अयं दक्षिणेन हस्तेन भोजनं वामेन जलं पिबति ।	यह दहिने हाथ से भोजन और बांये से जल पीता है ।
इदानीं त्वया श्रमः कृतोऽस्त्यतो धमनी शीघ्रं चलति ।	इस समय तूने श्रम किया है इस से नाड़ी शीघ्र चलती है ।
अधुना तु ममान्तस्त्वग् दह्यते ऽस्थिषु पीडाऽपि वर्त्तते ।	इस समय मेरे भीतर की त्वचा जलती और हाड़ों में पीड़ा भी है।

अथ राजसभा प्रकरणम् ॥

तिष्ठ भो देवदत्त त्वया सह गच्छामि राजसभाम् ।	खड़ा रह देवदत्त तेरे साथ मैं भी चलता हूं राजा की सभा को ।
सभा शब्दस्य कः पदार्थः ?	सभा शब्द का क्या अर्थ है ?
या सत्यासत्यनिर्णयाय प्रकाशयुक्ता वर्त्तेत ।	जो सच झूठ का निर्णय करने के लिये प्रकाश से सहित हो ।
तत्र कति सभासदः सन्ति ?	वहां कितने सभासद् हैं ?
सहस्रम् ।	हजार ।
या मम ग्रामे सभास्ति तत्र खलु पञ्चशतानि सभासदः सन्ति ।	जो मेरे ग्राम में सभा है उस में तो पांचसौ सभासद् हैं ।
इदानीं सभायां कस्य विषयस्योपरि विचारः कर्त्तव्यः ?	इस समय सभा में किस विषय पर विचार करना चाहिये ?
युद्धस्य ।	युद्ध अर्थात् लड़ाई का ।

तेन सह युद्धं कर्त्तव्यं न वा?	उस के साथ युद्ध करना चाहिये वा नहीं ?
यदि कर्त्तव्यं तर्हि कथम् ?	यदि करना चाहिये तो कैसे ?
यदि स धर्म्मात्मा तदा तु न कर्त्तव्यं ।	यदि वह धर्मात्मा हो तब तो युद्ध करना योग्य नहीं ।
पापिष्ठश्चेत्तर्हि तेन सह योद्धव्यमेव ।	और जो पापी हो तो उस के साथ युद्ध करना ही चाहिये ।
सोऽन्यायेन प्रजां भृशं पीडयत्यतो महापापिष्ठः ।	वह अन्याय से प्रजा को निरन्तर पीड़ा देता है इस कारण से बड़ा पापी है ।
एवं चेत्तर्हि शस्त्रास्त्रप्रक्षेपयुद्धकुशला बलिष्ठा कोशधान्यादिसामग्रीसहिता सेना युद्धाय प्रेषणीया ।	यदि ऐसा है तो शस्त्र अस्त्र चलाने में और युद्ध में कुशल बड़ी लड़ने वाली खजाना और अन्नादि सामग्री सहित सेना युद्ध के लिये भेजना चाहिये ।
सत्यमेवात्र वयं सर्वे सम्मतिं दद्मः ।	सच ही है इस में हम सब लोग सम्मति देते हैं ।
इदानीं कस्यां दिशि कैः सह युद्धं प्रवर्त्तते ?	इस समय किस दिशा में कौन २ के साथ युद्ध होता है ?
पश्चिमायां दिशि यवनैः सह हरिवर्षस्थानाम् ।	पश्चिम दिशा में मुसलमानों का और [हरिवर्ष] अर्थात् यूरोपियन् अंग्रेज लोगों का ।
पराजिता अपि यवना अद्याप्युपद्रवं न त्यजन्ति ।	हारे हुए भी मुसलमान लोग अब भी उपद्रव अर्थात् धूम धाम नहीं छोड़ते ।

अयं खलु पशुपक्षिणामपि स्वभावोस्ति यदा कश्चित्तद्गृहादिकं ग्रहीतुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युध्यन्त एव ।

यह तो पशुपक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उन के घर आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब यथाशक्ति युद्ध करते अर्थात् लड़ते ही हैं ।

अथ ग्राम्यपशु-प्रकरणम् ॥

भो गोपाल गा वने चारय ।

हे अहिर गौओं को बन में चरा ।

तत्र या धेनवस्ताभ्योऽर्द्धं दुग्धं त्वया दुग्ध्वा स्वामिभ्यो देयमर्द्धंच वत्सेभ्यः पाययितव्यम् ।

वहां जो नई व्यानी गौएं उन से आधा दूध तूने दुह कर मालिक को देना और आधा बछड़ों को पिलाना चाहिये ।

एतौ वृषभौ रथे योक्तुं योग्यौ स्त इमौ हले खलु ।

ये दोनों बैल गाड़ी में वा रथ में जोतने के योग्य हैं ये दोनों हलों में ।

पश्येमाः स्थूला महिष्यो वने चरन्ति ।

देखिये ये मोटी भैंसें वन में चरती हैं ।

आगच्छ भो द्रष्टव्यम्माहिषाणां युद्धं परस्परं कीदृशं भवति ।

आओ जी देखने योग्य भैंसों का युद्ध किस प्रकार आपस में हो रहा है ।

अस्य राज्ञो बहव उत्तमा अश्वाः सन्ति ।

इस राजा के बहुत उत्तम घोड़े हैं ।

किमियं राज्ञः सतुरङ्गा सेना गच्छति ?

क्या यह राजा की घोड़ों सहित सेना जा रही है ?

श्रोतव्यं हरयः कीदृशं ह्रेषन्ते ?

सुनिये घोड़े किस प्रकार हिनहिनाते हैं ?

यथा हस्तिनो स्थूलाः सन्ति तथा हस्तिन्योऽपि ।	जैसे हाथी मोटे होते हैं वैसी हथिनी भी ।
नागास्समं गच्छन्ति ?	हाथी बराबर चाल से चलते हैं ?
शृणु करिणः कीदृशं बृंहन्ति ।	सुन हाथी कैसे चिंघारते हैं ।
पश्येमे गजोपरि स्थित्वा गच्छन्ति ।	देख ये हाथी पर बैठ के जाते हैं ।
अस्य राज्ञः कतीभास्सन्ति ?	इस राजा के कितने हाथी हैं ?
पञ्च सहस्राणि ।	पांच हजार ।
रात्रौ श्वानो बुक्कन्ति ?	रात में कुत्ते भूंसते हैं ।
प्रातः कुक्कुटाः संप्रवदन्ति ।	सुवेरे मुरगे बोलते हैं ।
मार्जारो मूषकानत्ति ।	बिल्ला मूसों को खाता है ।
कुलालस्य गर्दभा अतिस्थूलाः सन्ति ।	कुम्हार के गदहे अत्यन्त मोटे हैं ।
शृणु लम्बकर्णाः रासभा रासन्ते ।	सुन लम्बे कानों वाले गदहे बोलते हैं ।
ग्राम्यसूकराः पुरीषं भक्षयित्वा भूमिं शुन्धन्ति ।	गांव के सुवर मैला खाके भूमि को शुद्ध करते हैं ।
उष्ट्रा भारं वहन्ति ।	ऊंट बोझा ढोते हैं ।
अजाविपालोऽजा अवीर्दोग्धि ।	गड़रिया बकरी और भेड़ों को दुहता है ।
पशवोऽपुर्नद्यां जलम् ।	पशु नदी में जल पीते हुए ।
रक्तमुखो वानरोऽतिदुष्टो भवति कृष्णमुखस्तु श्रेष्ठः खलु ।	लालमुख का बन्दर बड़ा दुष्ट और काले मुह का लंगूर तो अच्छा होता है ।

वानरी मृतकमपि बालकं न त्यजति ।	बंदरी मरेहुए भी बच्चे को नहीं छोड़ती ।
गोपालेनगावोदुग्धाःपयोनवा?	ग्वाले ने गौओं से दूध दुहा वा नहीं?
कपिलाया गोर्मधुरं पयोभवति ।	पीली कपिला गौ का दूध मीठा होता है ।
अयं वृषभः कियतामूल्येनक्रीतः?	यह बैल कितनेमोल से खरीदा है?
शतेन रूप्यैः ।	सौ रुपयों से ।
कतिभिः पणैः प्रस्थंपयोमिलति?	कितने पैसे सेर दूध मिलता है ?
द्वाभ्यां पणाभ्याम् ।	दो पैसों से ।
पश्य देवदत्त वानराः कथमुत्प्लवन्ते ।	देख देवदत्त बंदर कैसे कूदते हैं ।
अयं महाहनुत्वाद्धनुमान्वर्त्तते ।	यह बन्दर बड़ी थुन्डीवाला होने से हनुमान् है ।

अथ ग्रामस्थपक्षि–प्रकरणम् ॥

एताभ्यां चटकाभ्यां प्रासादे नीडं रचितम् ।	इन चिड़ियों ने अटारी पर घोंसला बनाया है ।
अत्राण्डानि धृतानि ।	यहां अंडे धरे हैं ।
इदानींतु चाटकैराअपिजाताः ।	अब तो इन के बच्चे भी होगये हैं ।
पश्य विष्णुमित्रकुक्कुटयोर्युद्धम् ।	देख बिष्णुमित्त मुरगों की लड़ाई ।
कुक्कुटी स्वान्यण्डानि सेवते ।	मुरगा अपने अंडों को सेवती है ।
पश्य शुकानां समूहं योविरुवन्नुड्डीयते ।	देख सुग्गों के झुन्ड को जो चचोंता हुआ उड़ा जाता है ।

रात्रौ काका न वाश्यन्ते ।	रात में कौवे नहीं बोलते हैं ।
अरे भृत्योड्डायय ध्वांक्षमनेन पातव्यजलपात्रे चञ्चुं निक्षिप्य जलं विनाशितम् ।	अरे नौकर कौवे को उड़ादे उस ने पीने के जल के बरतन में चोंच डाल कर जल नष्ट कर दिया ।
वायसेन बालकहस्ताद्रोटिका हृता ।	कौए ने लड़के के हाथ से रोटी लेली ।
पश्य कीदृशं काकोलूकिका युद्धं प्रवर्त्तते ।	देख किस प्रकारकी कौवे और उल्लुओं की लड़ाई होरही है ।
अनेन शुकहंसतित्तिरिकपोताः पालिताः ।	इसने सुग्गा हंस तीतर और कबूतर पाले हैं ।

अथ वन्यपशु-प्रकरणम् ॥

वने रात्रौ सिंहा गर्ज्जन्ति ।	वन में रात के समय सिंह गर्जते हैं।
शार्दूलं दृष्ट्वा सिंहा निलीयन्ते ।	शार्दूल को देख कर सिंह छिप जाते हैं ।
ह्यः सिंहो गामहन् ।	कल सिंह ने गौ को मारडाला ।
परश्वो विक्रमवर्म्मणा सिंहो हतः ।	परसों विक्रम वर्मा क्षत्रिय ने सिंह मारा ।
द्रष्टव्यं हस्तिसिंहरणम् ।	देख हाथी और सिंह की लड़ाई ।
जङ्गले हस्तियूथाः परिभ्रमन्ति ।	जंगल में हाथी के झुंड घूमते हैं ।
इदानीमेव वृकेण मृगो गृहीतः ।	अभी भेडिया ने हरिन पकड़लिया ।
अयं कुक्कुरो वलवाननेन सिंहेन सहाप्याजिः कृता ।	यह कुत्ता बड़ा बलवान् है इस ने सिंह के साथ भी लड़ाई की ।

संस्कृत	भाषा
पश्य सिंहवराहसंग्रामम् ।	देख सिंह और शूकर का युद्ध ।
शूकरा इक्षुक्षेत्राणि भक्षयित्वा विनाशयन्ति ।	शूकर ऊख के खेतों को खाकर नष्ट कर देते हैं ।
पश्य वेगेन धावतो मृगान् ।	देख वेग से दौड़ते हुए हिरनों को ।
अयं रुरुर्वृषभवत्स्थूलोऽस्ति ।	यह काला रोज बैल के समान मोटा है ।
यो निलयादुत्प्लुत्य धावति स शशस्त्वया दृष्टो न वा ?	जो भांटी से लपटझपट के दौड़ता है उस खरहा को तूने देखा है वा नहीं?
बहून्दृष्टवान् ।	बहुतों को देखा है ।
कदाचिद्भालवोऽपिदृष्टा न वा ?	कभी रीछ भी देखे हैं वा नहीं ?
एकदा ऋच्छेन साकं मम युद्धं जातम् ।	एक समय रीछ के साथ मेरी लड़ाई भी हुई थी ।
रात्रौ शृगालाः क्रोशन्ति ।	रात्रि में सियाल रोते हैं ।
कदाचित्खड्गोऽपि दृष्टो न वा ?	कभी गैंडा भी देखा वा नहीं ?
य आरण्या महिषा बलवन्तो भवन्तितान्कदाचिद्दृष्टवान्नवा ?	जो अरणा भैंसा बलवान् होते हैं उन को कभी देखा वा नहीं ॥

अथ वनस्थपक्षि-प्रकरणम् ॥

संस्कृत	भाषा
कदाचित्सारसावप्युड्डीयमानौ क्रीडन्तौ महाशब्दं कुरुतः ।	कभी सारस पक्षी भी उड़ते और क्रीडा करते हुए बड़े शब्द करते हैं ।
श्येनेनातिवेगेन वर्त्तिका हता ।	बाज ने बड़े वेग से बटेर मारी ।
शृणु तित्तिरयः कीदृशं मधुरं नदन्ति ।	सुन तितिर किस प्रकार मधुर बोलते हैं ।

वसन्ते पिकाः प्रियं कूजन्ति ।	वसन्त ऋतु में कोयल प्रिय शब्द करते हैं ।
काककोकिलवद्दुर्वचाः सुवाक् च मनुष्यो भवति ।	कौवे और कोयल के सदृश दुष्ट और अच्छा बोलने वाला मनुष्य होता है ।
अयं देवदत्तो हंसगतिं गच्छति ।	यह देवदत्त हंस के समान चलता है ।
पश्येमे मयूरा नृत्यन्ति ।	देखिये ये मोर नाचते हैं ।
उलूका रात्रौ विचरन्ति ।	उल्लू रात को विचरते हैं ।
पश्य बकः सरस्सु पाखण्डि जनवन् मत्स्यान् हन्तुं कथं ध्यायति ?	देख बकुला तलाओं में पाखण्डी मनुष्य के तुल्य मछली मारने को किस प्रकार ध्यान करता है ?
बलाका अप्येवमेव जल जन्तून् घ्नन्ति ।	बलाका भी इसी प्रकार जलजन्तुओं को मारती हैं ।
पश्य कथञ्चकोरा धावन्ति ?	देख किस प्रकार चकोर दौड़ते हैं?
येऽत्यूर्ध्वमाकाशे गत्वा मांसाय निपतन्ति ते गृध्रास्त्वया दृष्टा न वा ?	जो बहुत ऊपर आकाश में जाकर मांस के लिये गिरते हैं वे गीध तूने देखे हैं वा नहीं ?
मैनका मनुष्यवद्वदन्ति ।	मैना मनुष्य के समान बोलती हैं ।
चिल्लिका माणवकहस्ताद्रोटिकां छित्वोड्डीयते ।	चील्ह लड़के के हाथ से रोटी छीन कर उड़ जाती है ।

अथ तिर्यक्जन्तु-प्रकरणम् ॥

सर्प्पाः शीघ्रं सर्प्पन्ति ।	सर्प्प जल्दी सकिलते हैं ।
अयं कृष्णः फणी महाविषधारी ।	यह काला सांप बड़ा विषवाला है ।

भवता कदाचिदजगरोऽपिदृष्टो नवा ?	आप ने कभी अजगर भी देखा है वा नहीं ?
पश्याहिनकुलस्यसंग्रामोवर्त्तते।	देख सांप और नेउरे का युद्ध होताहै।
स वृश्चिकेन दष्टो रोदिति ।	वह बिच्छू से काटा गाया रोता है।
इयं गोधा स्थूलास्ति ।	यह गोह मोटी है ।
मूषका बिले शेरते ।	मूसे बिल में सोते हैं ।
मक्षिकां भक्षयित्वा वमनं प्रजायते ।	मक्खी खा कर वमन हो जाता है।
अत्र वासः कर्तव्यो निर्मक्षिकं वर्तते ।	यहां बास करना चाहिये मक्खी एक भी नहीं है ।
मधुमक्षिकादशनेन शोथः प्रजायते ।	मधु मक्खियों के काटने से सूजन हो जाती है ।
भ्रमरा गुञ्जन्तः पुष्पेभ्यो गंधं गृह्णन्ति ।	भौंरे गुंजते हुए फूलों से सुगंधि ग्रहण करते हैं ।

अथजलजन्तु-प्रकरणम् ॥

तिमिङ्गिला मत्स्याः समुद्रे भवन्ति ।	तिमिङ्गिलमच्छी समुद्र मेंहोती हैं।
रोहित् सिंहतुण्डराजीवाश्च पुष्करिणी नदीतडागसमुद्रेषु निवसन्ति ।	रोहू सिंहतुण्ड और राजीव इन नामों की मछलियां पुखरिया नदी तलाव और समुद्र में वास करती हैं।
मकरः पशूनपिगृहीत्वानिगलति	मगर पशुओं को भी पकड़ कर निकल जाता है।

नक्राग्राहाअपिमहान्तोभवंति ।	नाके तथा घरियार भी बड़े २ होते हैं
कूर्म्माः स्वाङ्गानि संकोच्य प्रसारयन्ति ।	कछुए अपने अङ्गों को समेट कर फैलाते हैं ।
वर्षासुमण्डूकाः शब्दयन्ति ।	वर्षा में मेंडके बोलते हैं ।
जलमनुष्या अप्सु निमज्य तट आसते ।	जल के मनुष्य पानी में डूब कर तीर पर बैठते हैं ।

अथवृक्षवनस्पति-प्रकरणम् ॥

पिप्पलाः फलिता नवा ?	पीपल फले हैं वा नहीं ?
इमे बटाः सुच्छायास्संति ।	ये वड़ अच्छीछायावाले हैं ।
पश्यमउदुम्बराः सफलावर्त्तंते ।	देख ये गूलर फलयुक्त होरहे हैं।
इमे बिल्वाःस्थूलफलास्सन्ति ।	ये बेल बड़े फलवाले हैं ।
ममोद्यान आम्राः पुष्पिताः फलिताः सन्ति ।	मेरे बगीचे में आम फूले फले हैं।
इदानींपक्वफलाअपिवर्त्तंते ।	इस काल में पक्के फलवाले भी हैं।
अस्याऽऽम्रस्य मधुराणि रसवंति फलानि भवंति ।	इस आम के मीठे और रसीले फल होते हैं ।
तस्य त्वम्लानि भवन्ति ।	उसके तो खट्टे होते हैं।
पनसस्यमहान्तिफलानिभवंति।	कटहर के बड़े २ फल होते हैं ।
शिंशपायाः काष्ठानि दृढानि संति शालस्य दीर्घाणि च ।	सीसों की दृढ़ कठिन होती और साखू की लकड़ी लंबी होती हैं ।
अस्य बब्बूरस्य कण्टकास्तीक्ष्णा भवन्ति	इस बबुल के कांटे तीखी अणी वाले होते हैं ।

वदरीणां तु मधुराम्लानि फलानि कण्टकाश्च कुटिला भवन्ति ।	बेरियों के तो मीठे खट्टे फल और इन के कांटे टेढे होते हैं ।
कटुको निम्बो ज्वरं निहन्ति ।	कडुआ नीब ज्वर का नाश करदेता है।
मातुलुङ्गफलरसं सूपे निक्षिप्य भोक्तव्यम् ।	नीबू का रस दाल में डाल कर खाने योग्य है ।
मम वाटिकायां दाडिमफलान्यत्युत्तमानि जायन्ते ।	मेरे बगीचे में अनार बहुत अच्छे होते हैं ।
नागरङ्गफलान्यानय ।	नारंगी के फलों को ला ।
वसन्ते पलाशाः पुष्प्यन्ति ।	बसंत ऋतु मे ढांक फूलते हैं ।
उष्ट्राः शमीवृक्षपत्रफलानि भुञ्जते ।	ऊंट शमी अर्थात् खींजड़ (छ्योंकर) वृक्ष के पत्ते और फलों को खाते हैं ।

अथौषध-प्रकरणम् ॥

कदलीफलानि पक्वानि न वा ?	केला के फल पके वा नहीं ?
तण्डुलादयस्तु वैश्यप्रकरणे लिखितास्तत्र द्रष्टव्याः ।	चावल आदि तो बनियों के प्रकरण में लिखे हैं वहां देखलेना ।
विषनिवारणायाऽपामार्गमानय ।	विष निवारने के लिये चिंचिडा ला ।
निर्गुण्ड्याः पत्राण्यानेयानि ।	निर्गुण्डी के पत्ते लाने चाहिये ।
लज्जावत्याः किं जायते ?	लज्जावन्ती का क्या होता है ?
गुडूची ज्वरं निवारयति ।	गुडुच ज्वर को शान्त करती है ।
शंखावलीं दुग्धं पाचयित्त्वा पिबेत् ।	शखावली को दूध में पकाके पिये ।
यथर्त्तुयोगं हरीतकी सेविता सर्वान्रोगान्निवारयति ।	जिस प्रकार से ऋतु २ में हरड़का सेवन करना योग्य है वैसे सेवीहुई हरड़ सब रोगों को छुड़ा देती है ।

शुण्ठीमरीचपिप्पलीभिः कफवातरोगौ निहन्तव्यौ ।	सोंठ मिर्च और पीपर से कफ और बात रोगों का नाश करना चाहिये ।
योऽश्वगन्धं दुग्धे पाचयित्वा पिबति स पुष्टो जायते ।	जो असगन्ध को दूध में पका के पीता है वह पुष्ट होता है ।
इमानि कन्दानि भोक्तुमर्हाणि वर्त्तन्ते ।	ये कन्द खाने के योग्य हैं ।
एतेषान्तुशाकमपिश्रेष्ठंजायते ।	इन कन्दों का तो शाक भी अच्छा होता है ।
अस्यां वाटिकायां गुल्मलताः प्रशंसनीयाः सन्ति ।	इस बगीचे में गुच्छा और लताप्रतान प्रशंसा के योग्य अर्थात् अच्छे हैं ।

अथात्मीय-प्रकरणम् ॥

तवज्येष्ठोबन्धुर्भगिनीचकास्ति ?	तेरे बड़ा भाई और बहिन कौन हैं?
देवदत्तस्सुशीला च ।	देवदत्त और सुशीला ।
भोबन्धोऽहं पाठाय व्रजामि ।	हे भाई मैं पढ़ने को जाताहूं ।
गच्छ प्रिय पूर्णां विद्यां कृत्वाऽऽगन्तव्यम् ।	जा प्यारे पूरी विद्या करके आना ।
भवतःकन्याअद्यश्वः किंपठन्ति?	आप की बेटियां आज कल क्या पढ़ती हैं ?
वर्णोच्चारणशिक्षादिकं दर्शनशास्त्राणि चाधीत्येदानीं धर्म पाक शिल्प गणित विद्या अधीयते ।	वर्णोच्चारण शिक्षादिक तथा न्याय आदि शास्त्र पढ़ कर अब धर्म,पाक, शिल्प और गणितविद्या पढ़ती हैं।

भवज्जेष्ठया किं किमधीत्येदानीं किं क्रियते ?	आप की बड़ी बहिन क्या २ पढ़ अब क्या करती है ?
वर्णज्ञानमारभ्य वेदपर्य्यन्ताः सर्वा विद्या विदित्वेदानीं बालिकाः पाठयति ।	अक्षराभ्यास से लेके वेद तक सब पूरी विद्या पढ़ के अब कन्याओं को पढ़ाया करती है ।
तया विवाहः कृतो न वा ?	उस ने विवाह किया वा नहीं ?
इदानीन्तु न कृतः परन्तु वरं परीक्ष्य स्वयंवरं कर्त्तुमिच्छति ।	अभी तो नहीं किया परंतु वर की परीक्षा करके स्वयंवर करने की इच्छा करती है ।
यदा कश्चित्स्वतुल्यः पुरुषो मेलिष्यतितदाविवाहंकरिष्यति ।	जब कोई अपने सदृश पति मिले गा तब विवाह करेगी ।
तव मित्रैरधीतं न वा ?	तेरे मित्रलोगों ने पढ़ा है वा नहीं ?
सर्व एव विद्वांसो वर्त्तन्ते यथाऽहं तथैव तेऽपिसमानस्वभावेषु मैत्र्यास्सम्भवात् ।	सब ही विद्वान् हैं जैसा मैं हूं वैसे वे भी हैं क्योंकि तुल्यस्वभाव वालों में मित्रता का सम्भव है ।
तव पितृव्यः किं करोति ?	तेरा चाचा क्या करता है ?
राज्यव्यवस्थाम् ।	राजा का कारबार ।
इमे किं तव मातुलादयः ?	ये क्या तेरे मामा आदि हैं ?
बाढमयं मम मातुल इयं पितृष्वसेयं मातृष्वसेयं गुरुपत्न्ययं च गुरुः ।	है ही यह मेरा मामा यह बाप की बहिन बुआ यह माता की बहिन मासी यह गुरु की स्त्री और यह गुरु है ।
इदानीमेते कस्मै प्रयोजनायैकत्र मिलिताः ?	इस समय ये सब किस लिये मिल कर इकट्ठे हुए हैं ?

मया सत्कारायाऽऽहूताः सन्त आगताः ।	मुझ से सत्कार के अर्थ बुलाये हुए आये हैं ।
इमे मे मातामहीश्वशुरश्यालादयः सन्ति ।	ये मेरे नानी ससुर और साले आदि हैं ।
इमे मम मित्रस्य स्त्रीभगिनीदुहितृजामातरः सन्ति ।	ये मेरे मित्र की स्त्री बहिन लड़की और जमाई हैं ।
इमौ मम पितृव्यस्य श्याल दौहित्रौ स्तः ।	ये मेरे मामा और भानेज हैं ।

अथसामन्त-प्रकरणम् ॥

त्वद्गृहनिकटे के के निवसन्ति ।	तेरे घर के पास कौन २ रहते हैं ।
ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ।	ब्राह्मण क्षत्रिय बनिये और शूद्र ।
इमे राजसमीपनिवासिनः ।	ये राजा के समीप रहने वाले हैं ।

अथ कारु-प्रकरणम् ॥

भोस्तक्षंस्त्वया नौविमानरथशकटहलादीनि निर्माय तत्र प्रशस्तानि कलाकीलकशलाकादीनि संयोज्य दातव्यानि ।	हे बढ़ई तुझको नावें, बिमान, रथ, गाड़ी, और हल आदि रच के उन में अत्युत्तम कलायन्त्र कील कांटे आदि संयुक्त कर के देने चाहिये ।
इदं काष्ठं छित्त्वा पर्य्यङ्कं रचय ।	इस लकड़ी को काट के पलंग बना ।
अस्मात्कपाटाः सम्पादनीयाः ।	इस से किवाडों को बना ।
इमं वृक्षं किमर्थं छिनत्सि ?	इस वृक्ष को किस लिये काटता है ?
मुषलोलूखलयोर्निर्माणाय ।	मूसल और उखरी बनाने के लिये ।

अथायस्कार–प्रकरणम् ॥

भो अयस्कार त्वयाऽस्यायसो बाणासिशक्तितोमरमुद्गरशतघ्नीभुशुण्ड्यो निर्मातव्याः ।	हे लोहकार तुझ को इस लोहे के बाण, तलवार, बरछी तोमर, मुद्गर, बंदूक और तोप बना देने चाहिये ।
एतस्य क्षुरादीनि च ।	इस के छुरे आदि ।
इमौ कलशकटाहौ त्वया विक्रीयेते न वा ?	ये घड़ा और कड़ाही तुम बेचते हो वा नहीं ?
विक्रीणामि ।	बेंचता हूं ।
एतान् कीलकण्टकान् किमर्थान् रचयसि ?	इन कील कांटों को किस लिये बनाता है ?
विक्रयणाय ।	बेचने के लिये ।

सुवर्णकार–प्रकरणम् ॥

त्वया सुवर्णादिकं नैव चोर्यम् ।	तूं सोना आदि मत चोराना ।
आभूषणान्युत्तमानि निर्मिमीष्व ।	गहने अच्छे सुन्दर बना ।
अस्य हारस्य कियन्मूल्यमस्ति ?	इस हार का कितना मोल है ?
पञ्च सहस्राणि राजत्यो मुद्राः ।	पांच हजाररुपये ।
इमौ कुण्डलौ त्वया श्रेष्ठौ रचितौ वलयौ तु न प्रशस्तौ ।	ये कुण्डल तो तूने अच्छे बनाए परन्तु कड़े तो बिगाड़ दिये ।
एतान्यंगुलीयकानिमुक्ताप्रवालहीरकनीलमणिजटितानि सम्पादय ।	ये अंगूठियां मोती, मूंगा, हीरा और नीलमणि सेजड़ी हुई बना ।

एतेनालङ्कारा अत्युत्तमा रच्यन्ते ।	इससे गहने बहुत अच्छे बनाये जाते हैं ।
नासिकाभूषणं सद्यो निष्पादय ।	नथुनी शीघ्र बना दे ।
इदं मुकुटं केन रचितम् ।	यह मुकुट किस ने बनाया ।
शिवप्रतापेन ।	शिवप्रताप ने ।
अस्य सुवर्णस्य कटककङ्कण-नूपुरान् निर्माय सद्यो देहि ।	इस सोने के कड़ा ककणी वा कंगना और बिछिया बना के शीघ्र दे ।

अथ कुलाल-प्रकरणम् ॥

भो कुलाल कुम्भशरावमृद्गवकान्निर्मिमीष्व घटं देह्यनेन जलमानेष्यामि ।	अरे कुम्हार घड़ा सरवा और मट्टी की गौओं को बना और घड़ा दे जल लाऊंगा ।

अथ तंतुवाय-प्रकरणम् ॥

भोस्तन्तुवाय अस्य सूत्रस्य पटशाट्युष्णीषाणि वय ।	ओ कोरी इस सूत का पटका साड़ी और पगड़ियां बुन ।

अथसूचीकार-प्रकरणम् ॥

भोः सूच्या किं सीव्यसि ?	ओ सूई से क्या सींता है ?
शिरोंगरक्षणाधोवस्त्राणि सीव्यामि ।	टोपी अंगरखा और पाजामा सींता हूं ।

अथ मिश्रित-प्रकरणम् ॥

भोः कारुक कटं वय ।	अरे चटाई वाला चटाई बुन ।
इमे व्याधा मृगादीन्पशून्घ्नन्ति ।	ये बहेलिये हरिन आदि पशुओं को मारते हैं ।

किराता वने निवसन्ति ।	किरात अर्थात् भील लोग वन में रहते हैं ।
सकमलानिसरांसिकुत्रसन्ति ?	कमल वाले तलाव कहां हैं ?
इमे तडागा ग्रीष्मे शुष्यन्ति ।	ये सब तलाव गरमी में सूख जातेहैं।
कूपाज्जलमानय ।	तू कूए से जल ला ।
अद्य वाप्यां स्नातव्यम् ।	आज बावड़ी में नहाना चाहिये ।
रंजकेन शतघ्नीभुशुण्ड्यादयश्चलन्ति ।	बारूद से बंदूक और तोपेंआदि चलती हैं ।
अयं कम्बलस्त्वया कस्माद् गृहीतः कस्मै प्रयोजनाय ?	यह कम्बल तूने किससे लिया और किस प्रयोजन के लिये ?
कश्मीराच्छीतनिवारणाय ।	कश्मीर से जाडा छुडाने के लिये ।
पश्य माणवकाः क्रीडन्ति ।	देख लडके खेलते हैं ।
अस्मिन्गृहे स्रस्तराणि श्रेष्ठानि सन्ति ।	इस घर में बिछौने अच्छे हैं ।
इमे चोराः पलायन्ते ।	ये चोर लोग भागे जातेहैं ।
तत्रदस्युभिरागत्यसर्वन्धनंहृतम् ।	वहां डांकू लोगों ने आकर सबधन हर लिया ।
द्वापरान्ते युधिष्ठिरादयोबभूवुः ।	द्वापर के अन्त में युधिष्ठिरादि हुए थे।
ममपादेकण्टकःप्रविष्टएनमुद्धर ।	मेरे पैर में कांटा घुस गया इस को निकाल ।
केशान् सम्वय ।	बालों को संभाल ।
भोनापितनखाञ्छिन्धि मुण्डय शिरः श्मश्रूणि च ।	भो नाऊ नखों को काट शिर मूंड़ और मूंछ भी मूंड ।

अयं शिल्पी प्रासादमत्युत्तमं रचयति ।	यह राज अटारी बहुत अच्छी बनाता है ।
अयंकोटपालोन्यायकारीवर्त्तते ।	यह कोतवाल न्यायकारी है ।
स तु धर्मात्मानैवास्त्यन्यायकारित्वात् ।	वह कोतवाल तो धर्म्मात्मा नहीं है अन्यायकारी होने से ।
एतेराजमन्त्रिणःकुत्रगच्छन्ति ?	ये राजा के मंत्रीलोग कहां जाते हैं?
राजसभांन्यायकरणाययान्ति ।	राज सभा को न्याय करने केलिये ।
भोस्ताम्बूलानिदेहि ।	ओ पान दे ।
ददामि ।	देता हूं ।
भोस्तैलकार तिलेभ्यस्तैलं निःसार्य्य देहि ।	ओ तेली तिलों से तेल निकाल कर दे ।
दास्यामि ।	दूंगा ।
अरे रजक वस्त्राणि प्रक्षाल्य सद्यो देयानि	अरे धोबी कपड़ों को धोकर शीघ्र देने चाहिये ।
कपाटान् बधान ।	किवाड़ों को बन्द कर ।
इदानीं प्रातःकालो जातः कपाटावुद्घाटय ।	इस समय सुवेरा हुआ किवाड़े खोल ।
सर्वे यद्धाय सज्जा भवन्तु ।	सब सिपाही लोग लड़ाई के लिये तैयार हों ।
अर्थिप्रत्यर्थिनौ राजगृहे युध्येते ।	मुद्दई और मुद्दालेकचहरी में लड़तेहैं ।
किमियं गोधूमान् पिनष्टि?	क्या यह गेहुओं को पीसती है ?
कुतोऽद्य दुर्गे शतघ्न्यश्चलन्ति?	क्यों आज किलेमेंतोपें चलती हैं ?
तेन भुशुण्ड्या सिंहो हतः ।	उसने बन्दूक से बाघ को मारा ।

तेनाऽसिना तस्य शिरश्छिन्नम् ।	उसने तलवार से उस का शिर काट डाला ।
अञ्जनं किमर्थमनक्षि ?	अञ्जन किस लिये आंजता है ?
उपानहौ धृत्वा क्व गच्छसि ?	जूते पहिन के कहां जाता है ?
जङ्गलम् ।	जङ्गल को ।
किंस्थाल्यामोदनंपचसिसूपंवा?	क्यावटुवे में भात पकाता है वादाल?
कटाहे शाकं पच ।	कड़ाही में तरकारी पका ।
विरुद्धं वदिष्यसि चेत्तर्हि दन्तांस्त्रोटयिष्यामि ।	बिरुद्ध बोलेगा तो तेरे दांत तोड़ डालूं गा ।
तव पितुस्तु सामर्थ्यं नाभूत् तव तु का कथा ।	तेरे बाप का तो सामर्थ्य न हुआ तेरी तो क्या ही बात कहनी है।
येन प्रजा पाल्यते स कथन्न स्वर्गं गच्छेत् ?	जिस ने प्रजा का पालन किया वह स्वर्गको क्यों न जाय ?
यो राज्यं पीडयेत्स कथन्न नरके पतेत् ?	जो राज्य को नष्ट करे वह क्यों नरक में न पड़े ?
येनेश्वरउपास्यते तस्यविज्ञानं कुतो न वर्द्धेत ?	जो ईश्वर की उपासना करे उसका विज्ञान क्यों न बढ़े ?
यः परोपकारी स सततं कथं न सुखी भवेत् ?	जो परोपकारी है वह सर्वदा सुखी क्यों न होवे ?
अस्यां मञ्जूषायां किमस्ति ?	इससंदूक में क्या है ?
वस्त्रधने ।	कपड़ा और धन ।
इदानीमपि कुम्भ्यां धान्यं वर्त्तते न वा ?	अब कोठी में अन्न है वा नहीं ?

स्वल्पमस्ति ।	थोड़ासा है ।
त्वमालसीतिष्ठसिकुतोनोद्योगं करोषि ?	तू आलसी रहता है उद्योग क्यों नहीं करता ?
उभयत्र प्रकाशाय देहल्यां दीपं निधेहि ।	दोनों ओर उजियाला होने के लिये दरवाजे पर दिया धर ।
तेनासिचर्म्मभ्यां शतेन सह युद्धं कृतम् ।	उस ने ढाल और तलवार से सौ पुरुषों के साथ युद्धकिया ।
अतिथीन् सेवसे न वा ?	अतिथियों की सेवा करता है वा नहीं?
प्रेक्षासमाजं मागच्छ ।	कभी मेले तमाशे में मत जा ।
द्यूतसमाह्वयौ कदापि नैव सेवनीयौ ।	जो अप्राणी को दाव पर धर के खेलना वह द्यूत और प्राणी को दाव पर धर के खेलना वह समाह्वय कहाता है उन को कभी न सेवना चाहिये ।
यो मद्यपोऽस्ति तस्य बुद्धिः कुतो न ह्रसेत् ।	जो मद्य पीने वाला है उसकीबुद्धि क्यों न न्यून होवे ।
यो व्यभिचरेत्स रुग्णः कथं न जायेत ।	जो व्यभिचार करे वह रोगी क्योंन होवे ।
यो जितेन्द्रियः स सर्वं कर्तुं कुतो न शक्नुयात् ।	जो जितेन्द्रिय है वह सब उत्तम काम क्यों न कर सके ।
योगाभ्यासः कृतो येन ज्ञानदीप्तिर्भवेन्नरः ।	जिस ने योग का अभ्यास किया है वह ज्ञान प्रकाश से युक्त होवे ।

वस्त्रपूतं जलं पेयं मनःपूतं समाचरेत् ।	वस्त्र से पवित्र किया जल पीना चाहिये और मन से शुद्ध जाना हुआ काम करना चाहिये ।
स भ्रान्तौ कदापि न पतेत् ।	वह भ्रमजाल में कभी नहीं गिरे ।
अयं वाचालोऽस्त्यतो बरबरायते ।	यह बोलने में वाचाल है इसी कारण बड़बड़ाता है ।
भूमितले किमस्ति ?	भूमि के नीचे क्या है ?
मनुष्यादयः ।	मनुष्य आदि ।
यः पद्भ्यांभ्रमति सोऽरोगो जायते ।	जो पग से चलता वह रोगरहित होता है ।
व्यजनेन वायुं कुरु ।	पङ्खा से बतास (वायु) कर ।
किं घर्मादागतो यत् स्वेदोजातोऽस्ति ।	क्या घाम से आया है जो पसीना हो रहा है ।
स्वस्थे शरीरे नित्यं स्नात्वा मितं भोक्तव्यम् ।	अच्छे शरीर होते रोज नहा के थोड़ा सा खाना चाहिये ।
जलवायू शुद्धौ सेवनीयौ ।	पवित्र जल और वायु का सेवन करना चाहिये ।
सर्वर्तुकेशुद्धेगृहेनिवसनीयम् ।	जो सब ऋतुओं में सुख देने वाला हो उसी घर में रहना चाहिये ।
नैवकेनचिन्मलीनानिवस्त्राणि धार्याणि ।	किसी को भी मैले कपड़े पहिनने न चाहिये ।
तव का चिकीर्षास्ति ?	तेरी क्या करने की इच्छा है ?
गृहं गत्वा भोक्तुम् ।	घर जाके खाने की ।

त्वं सक्तुं भुङ्क्षे न वा ?	तू सत्तू खाता है वा नहीं ?
घृतदुग्धमिष्टैः सहाऽद्मि ।	घी, दूध और मीठे के साथ खाता हूं।
त्वयाऽऽम्रफलानि चूषितानि न वा?	तूने आम चूसे वा नहीं ?
उर्वारुकफलान्यत्र मधुराणि जायन्ते ।	खरबूजे के फल यहां मीठे होते हैं।
इक्षुभ्यो गुड़ादिकं निष्पद्यते।	ऊख आदि से गुड़ आदि बनाये जाते हैं।
इदानीमाकण्ठं दुग्धं पीतं मया।	इस समय गले तक मैंने दूध पिया।
तक्रं देहि ।	मठा दे ।
अत्र श्वेता शर्करा वर्त्तते ।	यहां सुफ़ेद चीनी है।
अयं रुच्या दध्योदनं भुङ्क्ते ।	यह प्रीति से दही के साथ भात खाता है।
अद्य मोदका भुक्ता न वा ?	आज लड्डू खाये वा नहीं ?
त्वया कदाचित्कृशराऽपि भुक्ता न वा ?	तूने कभी खिचड़ी भी खायी वा नहीं?
मयाऽपूपा भक्षिताः ।	मैंने मालपूये खाये हैं।
सशर्करं दुग्धं पेयम् ।	शक्कर के सहित दूध पीना चाहिये ।
येन धर्मः सेव्यते स एव सुखी जायते ।	जो धर्म्म का सेवन करता है वही सुखी रहता है।

अथ लेख्यलेखक-प्रकरणम् ॥

मनुष्यो लेखाभ्यासं सम्यक् कुर्यात् ।	मनुष्य लिखने का अभ्यास अच्छे प्रकार करे ।

अयमत्युत्तममक्षरविन्यासं करोति ।	यह अत्युत्तम अक्षर लिखता है ।
लेखनीं सम्पादय ।	कलम बनाओ ।
मसीपात्रमानय ।	दवात ला ।
पुस्तकं लिख ।	पोथी लिख ।
तत्र पत्रं लिखित्वा प्रेषितं न वा ?	वहां चिट्ठी लिख कर भेजी वा नहीं ?
प्रेषितं पञ्च दिनानि व्यतीतानि तस्य प्रत्युत्तरमप्यागतम् ।	भेजा पांच दिन बीते उसका जवाब भी आ गया ।
सुवर्णाक्षराणि लिखितुं जानासि न वा ?	सुनहरी अक्षर लिखने जानता है वा नहीं ?
जानामि तु परन्तु सामग्रीसञ्चयने लेखे च विलम्बो भवति ।	जानता तो हूं परन्तु चीज इकट्ठी करने और लिखने में देर होती है ।
यद्यंगुष्ठतर्जनीभ्यां लेखनीं गृहीत्वा मध्यमोपरि संस्थाप्य लिखेत्तर्हि प्रशस्तोलेखोजायेत ।	जो अंगूठा तर्जनी अंगुली से कलम को पकड़ कर बीचली अंगुली पर रख कर लिखे तो बहुत अच्छा लेख हो ।
अयमतीव शीघ्रं लिखति ।	यह अत्यन्त जलदी लिखता है ।
एतस्य लेखनी मन्दा चलति ।	इस की लेखनी धीरे चलती है ।
यदि त्वमेकाहं सततं लिखेस्तर्हि कियतः श्लोकांल्लिखितुं शक्नुयाः ?	यदि तू एक दिन निरन्तर लिखे तो कितने श्लोक लिख सके ?
पञ्च शतानि ।	पांच सौ ।

यदि शिक्षां गृहीत्वा शनैः शनैर्लिखितुमभ्यस्येत्तर्ह्यक्षराणां सुन्दरंस्वरूपंस्पष्टताचजायेत ।	यदि शिक्षा ग्रहण करके धीरे २ लिखने का अभ्यास करे तो अक्षरों का दिव्य स्वरूप और स्पष्टता होवे।
अस्मिंल्लाक्षारसे कज्जलं सम्मेलितं नवा ?	इस लाख के रस में कज्जल अच्छा मिलाया है वा नहीं ?
मेलितं तु न्यूनं खलु वर्त्तते ।	मिलाया तो है परन्तु थोड़ा है ।
मनुष्यैर्यादृशः पठनाभ्यासः क्रियेत तादृश एव लेखनाभ्यासोऽपि कर्त्तव्यः ।	मनुष्य लोग जैसा पढ़ने का अभ्यास करें वैसा ही लिखने का भी करना चाहिये ।
मया वेदपुस्तकं लेखयितव्यमस्त्येकेन रूप्येण कियतः श्लोकान्दास्यसि?	मुझ को वेद का पुस्तक लिखाना है एक रुपये से कितने श्लोक देगा?
अत्युत्तमानि ग्रहीष्यसि चेत्तर्हि शतत्रयं मध्यमानि चेच्छतपञ्चकम् ।	जो बहुत अच्छे लोगे तो तीन सौ और मध्यम लोगे तो पांच सौ ।
साधारणानि चेत्सहस्रं श्लोकान्दास्यामि ।	यदि बहुत साधारण वा घटिया लोगे तो हजार श्लोक दूंगा ।
शतत्रयमेवग्रहीष्यामि परन्त्वत्युत्तमं लिखित्वा दास्यसिचेत्।	तीनही सौ लूंगा परन्तु बहुत अच्छा लेख करेगा तो ।
वरमेवमेव करिष्यामि ।	अच्छा ऐसा ही करूंगा ।

अथ मन्तव्यामन्तव्य-प्रकरणम् ॥

त्वं जगत्स्रष्टारं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमेश्वरं मन्यसे नवा?	तू इस संसार के बनाने वाले सच्चित् और आनन्दस्वरूप परमेश्वर को मानता है वा नहीं ?

अयं नास्तिकत्वात्स्वभावात्सृष्ट्युत्पत्तिं मत्वेश्वरं नस्वीकरोति ।

यह मनुष्य नास्तिक होने से स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति को मान कर ईश्वर को नहीं मानता ।

यद्ययं कर्तृकार्यैश्चकरचना विशेषान् संसारे निश्चिनुयात्तर्ह्यवश्यं परमात्मानं मन्येत।

जो यह नास्तिक कर्त्ता क्रिया बनाने द्वारा और बनावट को इस जगत् में निश्चय करे तो अवश्य ईश्वर को माने ।

योऽत्रसृष्टौ रचितरचनां पश्यति स जीवः कार्य्यवत्स्रष्टारं कुतो न मन्येत ?

जो इस सृष्टि में बने हुए पदार्थों की बनावट को प्रत्यक्ष देखता है वह जैसे कारीगरी को देख के कारीगर को निश्चय करते हैं वैसे जगत् के बनाने वाले परमात्मा को क्यों न माने ?

यत्रोत्तमा धार्मिका आस्तिका विद्वांसोऽध्यापका उपदेष्टारश्च स्युस्तत्र कोपि कदाचिन्नास्तिको भवितुं नैवार्हेत् ।

जहां श्रेष्ठधर्मात्मा आस्तिक विद्वान् लोग पढ़ाने वाले और उपदेशक हों वहां कोई भी मनुष्य नास्तिक कभी नहीं हो सकता ।

कैः कर्मभिर्मुक्तिर्भवति तदा क्व वसन्ति तत्र किं भुज्यतेच ?

किन कर्मों से मुक्ति होती है उस समय कहां वास करते और वहां क्या भोगते हैं ?

धर्म्यैः कर्मोपासनाविज्ञानैर्मुक्तिर्जायते तदानीं ब्रह्मणि निवसन्तिपरमानन्दंचसेवन्ते ।

धर्म युक्त कर्म उपासना और विज्ञान से मोक्ष होता है उस समय ब्रह्म में मुक्तजीव रहते और परम आनन्द का सेवन करते हैं ।

मोक्षम्प्राप्य तत्र सदा वसन्त्या-होस्वित्कदाचित्ततो निवृत्य पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति ?

जीव मुक्ति को प्राप्त हो के वहां सदा रहते हैं अथवा कभी वहां से निवृत्त होकर पुनः जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं ?

प्राप्तमोक्षा जीवास्तत्र सर्वदा न वसन्ति किन्तु महाकल्प-पर्यन्तमर्थाद्ब्राह्ममायुर्यावत्ता-वत्तत्रोषित्वाऽऽनन्दं भुक्त्वा पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्त्येव ।

मुक्ति को प्राप्त हुए जीव वहां सर्वदा नहीं रहते किन्तु जितना ब्राह्मकल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितः संस्कृतवाक्यप्रबोध-
नामको निबन्धः
समाप्तः ॥

सूचीपत्रम्

इति

भ्रान्तिनिवारण ॥



अर्थात्

पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि कृत वेदभाष्य
परत्व प्रश्न पुस्तक का
पण्डित स्वामीदयानन्दसरस्वती जी की ओर से
प्रत्युत्तर

यज्ञदत्त शर्मा शास्त्री के प्रबन्ध से
वैदिकयन्त्रालय
अजमेर में मुद्रित हुआ

संवत् १९४८ मार्गशीर्ष शुक्ला ६

तृतीय वार २००० पुस्तक छपे

मूल्य ≶)।

डाक व्यय)॥

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांयगे (३) डांक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजें जाँय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१४७	४८)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	३८)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका विना जिल्द की	३)	≡)
" जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	)॥
सन्धिविषय	।≡)॥	)॥
नामिक	।≡)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।≡)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१≡)	/)
अव्ययार्थ	=)॥	)॥
सौवर	=)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	≡)॥	)॥
धातुपाठ	=)	)॥
गणपाठ	/)	)॥
उणादिकोष	॥=)	/)
निघण्टु	=)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≡)	)॥
हवनमन्त्र	)॥।	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
व्यवहारभानु	≡)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
मेलाचांदापुर	/)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≡)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्याभिविनय	।)	/)
" जिल्द की	।≡)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≡)॥	)॥
" जिल्द की	।=)॥	/)
आर्यसमाज के नियमोपनियम	)	)॥
सत्यार्थप्रकाश	२।)॥	≡)॥
संस्कारविधि	१॥)	=)

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—अजमेर

भूमिका ॥

विदित हो कि जो मैंने संसार के उपकारार्थ वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ किया है कि जो सब प्राचीन ऋषियों की की हुई व्याख्या और अन्य सत्यग्रन्थों के प्रमाण युक्तबनाया जाता है जिस से इस बात की साक्षी वे सब ग्रन्थ आज पर्यन्त वर्त्तमान हैं । और मेरे बनाये मासिक अङ्कों में भी विद्वानों के समझने के लिये संकेतमात्र जहां तहां लिखदिये हैं कि देखनेवालों को सुगमता हो । और किसी प्रकार की भ्रांति वा शंका मेरे लेख पर हो कर वृथा कुतर्क खड़ी कर के कोई मनुष्य मेरे काल को न खोवे कि जिससे देश भर की हानि हो । और उस को भी कुछ लाभ नहो ।परन्तु बहुधा संसारमें यह उलटी रीति है कि लोग उत्तम कर्म कर चुके और करते हुये को देख कर ऐसे प्रसन्ननहीं होते जैसे कि निषिद्ध कर्म वा हानि को देख कर होते हैं ।जो मैं निरानिरी संसार ही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिस के आधीन मनुष्यके जीवन मृत्यु और सुख दुःख हैं तो मैं भी ऐसे ही अनर्थक वाद विवादों में मन देता परन्तु क्या करूं मैं तो अपना तन मन धन सब सत्य के ही प्रकाशार्थ समर्पण करचुका मुझसे खुशामद करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता । किन्तु संसार को लाभ पहुंचाना ही मुझको चक्रवर्त्ती राज्य के तुल्य है । मैं इस बात को प्रथम ही अच्छे प्रकार जानता था कि न्यारिये के समान बालू से सुवर्ण निकाल ने वाले चतुर कम होंगे किन्तु मलीन मच्छी की नाई निर्मल जल को गदला करने और बिगाड़ने वाले बहुत हैं । परन्तु मैं ने इस धर्म कार्य का सर्वशक्तिमान् सत्यग्राहक और न्याय संबन्धी परमात्मा के शरण में सीस धर के उसी के सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है ॥

मैं यह भी जानता था कि इस ग्रंथ के विषय में जो शंका होंगी तो कम विद्वान् और ईर्ष्या करनेवालों को होंगी । परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई विद्वान् भी इसी अन्धकार में फिसल पड़े और इतना न हुआ कि आंख खोल कर अथवा लालटेन लेकर चलें कि जिस में चाल चूकने पर हांसी और दुःख न हो । यह पूर्व विचार करना बड़े विद्वान् अर्थात् दीर्घदृष्टि वाले का काम है नहीं तो गिरे की लज्जा का फिर क्याही ठीकहै इस वेदभाष्य के विषय में पहिले आर ग्रिफिथ साहब सी०एच टानी और पण्डित गुरुप्रसादआदि पुरुषों ने कहीं २ अपनी सामर्थ्य के अनुसार पकड़ की थी सो उन का उत्तर तो अच्छे प्रकार दे

दिया गया था। परन्तु अब पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न जो आफीशियेटिंग पिरंसीपेल कलकत्ते में के संस्कृत कालेज के हैं। उन्होंने भी पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषों का रंग पकड़ कर सन के छूछे गोले चलाये हैं। इसलिये यद्यपि मेरा बहु अमूल्य समय ऐसे तुच्छ कामों में खर्च होना न चाहिये। परन्तु दो बातों की सिद्धि समझ कर संक्षेप से कुछ लेख करना अवश्य जानता हूं। एकतो यह कि ईश्वरकृत सत्यविद्यापुस्तक वेदोंपर दोष न आवे कि उनमें अनेक परमेश्वर की पूजा पाई जाती है। और दूसरे यह कि आगे को मनुष्यों को प्रकट होजाय कि ऐसी २ व्यर्थ कुतर्क फिर खड़ी करके मेरा काल न खोवें क्योंकि इस से कई कठिन शंका तो मेरे बनाए ग्रंथों ही के ठीक २ मन लगा कर विचारने से ही निवारण हो सकती हैं। फिर निष्प्रयोजन मेरा सर्वहितकारी काल क्यों खोते हैं। यह दोष इस देश में बहुत काल से पड़ाहुआ है। अर्थात् महाभारत के युद्ध में जब अच्छे२ पूर्ण विद्वान् वेद और शास्त्रादिक के जाननेवाले चल बसे। विद्या का प्रचार तथा सत्य उपदेश की व्यवस्था छूट कर तमाम देश में नाना प्रकार के विघ्न और उपद्रव उठने लगे। लोगों ने अपना २ छप्पर अपने २ हाथ से छाने की फिकर की और इस थोड़े से सुख के लोभ में उत्तम २ विद्याओं को ऐसा हाथ से खो बैठे कि जिस से उनका बिचारा हुआ लाभ भी नष्ट होगया और तमाम अपने देश को भी धर कर डुबा दिया बड़े शोक की बात यह है कि आंखों से देख कर भी कूप में ही गिरना अच्छा समझ कर अपनी अज्ञानता पर दुःखी और लज्जामान् होने की जगह भी बराबर हठ ही करते चले जाते हैं। इस का परिणाम न जाने क्या होना है। दूसरा कारण आर्यों के बिगाड़का यहभी है। उन को जैन लोगों ने बहुत कुछ दबाया और सत्यग्रंथों का नाश किया। फिर इन्हीं के समान मुसलमानों ने भी अपने धर्म का पक्ष करके दुःख दिया। और जब से अङ्गरेजों ने इस देश में राज किया तो इन्होंने यह बात बहुत अच्छी की कि सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार कर के प्रजा को समानदृष्टि से सुधारा। परन्तु कुछ २ निज धर्म का पक्ष करते ही रहे। इसी से लोगों का उत्साह भी कमती होता गया। और आज तक वेदों का प्रचार और सत्यउपदेश का प्रबन्ध ठीक २ होता तो किसी को शंका भ्रान्ति और हठ वेद के विरुद्ध नवीन कल्पित मत मतान्तर का न होता। जैसा कि पंडित महेशचन्द्र का गुमान है यह केवल उनका वेदों से विमुखहोने का कारण है इसलिये उन की भ्रांति निवारण विषय में कुछ लिखा जाता है॥ इति

दयानन्दसरस्वती

ओम्

पण्डित महेशचन्द्रन्यायरत्नकृत वेदभाष्यपरत्वप्रश्नपुस्तक का पण्डित स्वामीदयानन्दसरस्वती जी की ओर से उत्तर—

पं० महेशचन्द्रन्याय० जोने विरुद्ध पंडितों के साथ में अपनी राय दी है तो उन्हीं के उत्तर में इन का भी उत्तर मेरी ओर से जान लेना ॥

पं० महेश० पण्डित दयानन्द सरस्वतीजी के परिश्रम विद्या और पण्डिताई निस्संदेह प्रशंसा योग्य है परन्तु उन का कुछ फल मालूम नहीं देता ॥

स्वामीजी०सम्मति देनेवालों की निर्पक्षता और न्याय तो उन के कथन से ही प्रत्यक्ष है कि जिस को छोटे विद्वान् लड़के भी जान लेंगे। क्योंकि पंडितजी लिखते हैं कि स्वा० जी सब तरह विद्या आदि पूर्ण गुण युक्तहोने से प्रशंसायोग्य हैं परन्तु कुछ फलदायक नहीं। तो उन का यह कथन पूर्वापर विरोधी है और इस में उन का हठ वा वेद विद्या से विमुखता साबित होती है ॥

पं० महेश० स्वामीजी का यह गुमान वा अभिप्राय है कि वेद में एक परमेश्वर की पूजा ठीक है।तथा सब संसारीविद्या और वर्तमानकाल की कलाकौशलादि पदार्थविद्या वेदोंसे ही निकली है।इत्यादि बातें उनका काम मट्टी करदेतीहैं॥

स्वा० जी इस बातका उत्तर में गिरीफिथ साहब के उत्तर में दे चुका हूं। जब पण्डितजी के विचार से वेदों में एक परमेश्वर की उपासना नहीं है तो उन को उचित था वा अब भी चाहिये कि कोई मंत्र वेदों में से लिखकर यह बात सिद्ध करदें कि वेदों में अनेक परमेश्वरों का होना सिद्ध है। क्योंकि उन्होंने वेदमंत्रों में से कोई प्रमाण अपने पक्ष की पुष्टि के लिये नहीं लिखा। इस से इनके मन का अभिप्राय खुलगया और उन की विद्या की थाह मिलगई कि उन्हों ने जो अटकलपच्चू कूप शब्द के समान चतुराई दिखलाई है। ये सब किसी ईर्ष्यक स्वार्थी विद्याहीन और पक्षपाती मनुष्य के फुसलाने से वा अपनी ही थोड़ी सामग्री अर्थात् हलदी की गांठ के बल से लिखकर बैठ रहे। कि जिस में वृथा कीर्त्ति देश में होजावे। सो पं० जी यह न समझें कि भारतवर्ष में विद्वान् नहीं रहे। यह व्याघ्र की खाल किसी दिन उघड़ कर सब कलई खुलजावेगी। और मैं तो अपनी थोड़ी सी विद्या और बुद्धि के अनुसार जो कुछ लिखूंगा वह सब को मालूम होता जावेगा और जितना कर चुका वह जान लिया होगा। और कदा-

चित् पण्डित जी ने भी समझ लिया होगा परन्तु मूक के समान संसारी और कल्पित भय से कंद का स्वाद जान कर यथार्थ और निर्पंचता से कह और मान नहीं सकते हैं। परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देख मिला कि वेदभाष्य संपूर्ण हो जावे तो निस्सन्देह इस आर्य्यावर्त्त देश में सूर्य्य का सा प्रकाश हो जावेगा। कि जिस के मेटने और झांपने को किसी का सामर्थ्य न होगा। क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं कि जिस को कोई सुगमता से उखाड़ सके। और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आ जावे तो थोड़े ही काल में फिर उग्रह अर्थात् निर्मल हो जावेगा॥

पं० महेश०—स्वामी जी हिन्दुओं के धर्मप्रचारी ग्रन्थों को नहीं मानते कि जिन में कर्मकाण्ड और होमादिक का विधान है किन्तु केवल वेदों ही की तरफ खिंचते हैं। इस से मेरी समझ से तो उन को यही उचित है कि वेदों को भी एक तरफ डाल कर अपनी युक्ति और बुद्धि ही के अनुसार वर्ताव वर्त्तें॥

स्वा० जी—इस जगह पण्डित जी की और भी बढ़ कर भूल साबित होती है। तथा जाना जाता है कि उन्होंने प्राचीन सत्य ग्रन्थ कभी देखे भी नहीं और कल्पना किया कि देखे हों तो केवल दर्शनमात्र किया हो। नहीं तो खाली तुकें न मिलाते। अब कोई साहब पण्डित जी से पूंछे कि उन्हों ने हिंदु शब्द कौन से ग्रंथ में देखा है कि जिस के अर्थ गुलाम वा काफिर आदि के हैं और जो कि आर्य्यावर्त्तियों को कलंक रूप नाम यवनादिक की ओर से है और आर्य्य शब्द जिस के अर्थ श्रेष्ठ के हैं वह वेदों में अनेक ठिकाने मिलता है। सो पण्डित जी नौका में धूल उड़ाते हैं। सो कब हो सकता है। और भूषण को दूषण कर के मानते हैं तो माना करो परन्तु विद्वानों और पूर्ण पण्डितों की ऐसी उलटी रीति निज धर्मशास्त्र से विरुद्ध कभी नहीं होगी। आगे वे लिखते हैं कि स्वा० जी धर्मप्रचारी ग्रन्थों को ही नहीं मानते हैं कि जिन में कर्मकाण्ड का विधान है तो यह बड़े तमाशे की बात है कि न तो पण्डित जीने कभी मुझ से मिल कर चिरकाल विचार किया और न उन्हों ने मेरे बनाये हुये ग्रन्थ देखे किन्तु प्रथम ही मेरे मानने न मानने के विषय में अपना सिद्धान्त कर बैठे। तो यह वही बात हुई कि सोवें झोंपड़े में और स्वप्न देखें राजमहलों का। क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से ले के पूर्व मीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लग भग मानता हूं। तथा कर्मकाण्ड के विषय में यह उत्तर है कि मेरा मत वेद पर है। इसलिये जो २ कर्मकाण्ड वेदानुकूल है उस सब को मानता हूं। उस से विरुद्ध को नहीं क्योंकि वे ग्रन्थ मनुष्यों ने अपने स्वार्थसाधन के निमित्त रच लिये हैं।

वे वेदयुक्ति वा प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सक्ते। जो २ संस्कार आदि मैं मानता हूं वे सब मेरी बनाई हुई वेदभूमिका अङ्क ३ में तथा संस्कारविधि आदि ग्रन्थ में देखना चाहिये। और वे लिखते हैं कि वेदों को भी एक तरफ धर दें केवल अपनी युक्ति वा बुद्धि ही के आधारी रहें तो उत्तर यह है कि मैं वेदों में कोई बात युक्तिविरुद्ध वा दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है। सो यह सब भेद मेरे वेदभाष्य में खुलता जायगा। और विद्वानों का यह काम नहीं कि किसी हेतु से सत्य को त्याग के असत्य का ग्रहण करें॥

पं॰ महेश–हिंदुओं का विश्वास है कि देववाणी का प्रकाश परमेश्वर की ओर से वेद पुस्तकोंकेरूप से हुआ है वा ऋषियों के द्वारा प्रेरणा की गई है परन्तु मेरी समझ से तो दोनों प्रकार ठीक नहीं हो सक्ता॥

स्वा॰ जी—इस बात का उत्तर वेदभाष्य की भूमिका अङ्क १ प्रथम वेदोत्पत्ति प्रकरणमें देख लेना चाहिये। परन्तु इतना यहां भी मैं कहता हूं कि आर्य्य लोग सनातनसे युक्ति प्रमाण सहित वेदों को परमेश्वरकृत मानते बराबर चले आये हैं। इस का ठीक २ विचार आर्य्य लोग ही कर सकते हैं हिन्दू विचारों का क्याही सामर्थ्य है॥

पं॰ महेश॰—वेद इस विषयमें स्वतः प्रमाण हैं कि उन में बहुधा होम बलिदान आदि का विधान है। तथा इस का प्रमाण अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है कि जिन को स्वामी जी भी मानते हैं। इसलिये वे वेदमत को स्वीकार करके होमादिक से अलग नहीं बच सकते हैं सिवाय ऐसे मनुष्य के कि जो स्वामी जी की तरह अपनी नवीन रीति से मंत्रभाष्य की रचना करे। देखना चाहिये कि यह स्वामी जी का परिश्रम कैसा वृथा समझा जा सकता है कि जब मैं उन के भाष्य की परीक्षा करूंगा॥

स्वा॰ जी—वेदोंमें जो यज्ञादिक करने की आज्ञा है उस सब को प्रमाण और युक्तिसिद्ध होने केकारण मैं मानता हूं और सब को अवश्य मानना चाहिये जैसे कि वेदभूमिका अङ्क २ के यज्ञप्रकरण में लिख दिया है। उस से विरुद्ध जो बलिदान आदि आज कल के लोगों ने समझ रक्खा है यह सब वेदविरुद्ध है। और मेरा भाष्य तो नवीन रीति का नहीं ठहर सकता क्योंकि वह प्राचीन सत्य ग्रन्थों के प्रमाणयुक्त बनता है। परन्तु पंडित जी का जो कथन है सो केवल अप्रमाण है और पंडित जी ने मन के ही गुलगुले खाये हैं। आगे मेरे ग्रन्थ की परीक्षा तो तमाम, देश भर को हो ही जावेगी परन्तु पंडित जी की विद्या तो अभी तुल गई॥

पं॰ महेश॰—स्वामी जीका मंत्रभाष्य ही अद्भुत नहीं है किन्तु उनके लिखने की रीति और व्याकरण भी पण्डितों के आगे हंसी के कराने वाले हैं। तथा

कई अशुद्धियां जो उन के परीचकों ने निकाली हैं वे इस बात को साफ २ सिद्ध करती हैं कि स्वामी जी सत्य का प्रकाश तो नहीं करते किन्तु अपनी कीर्त्ति और नाम की प्रसिद्धि अवश्य चाहते हैं । जैसे कि वे (उपचक्रे) शब्द को पाणिनी के (गन्धनावचे०) सूत्र से सिद्ध करते हैं यह कभी नहीं हो सकता । यह बात मानी जा सकती है कि (उपचक्रे) में आत्मनेपद लाया गया है साफ कहने के अर्थ में। परन्तु, उप, कृञ्, से यह अर्थ नहीं निकल सकता है । और न स्वामी जी का यह अभिप्राय है । क्योंकि वे उस का भाषा में अर्थ करते हैं कि (किया है) ॥

स्वा० जी–इनका उत्तर में पण्डित गुरुप्रसाद आदि के तर्कखण्डन के साथ दे चुकाहूं और पण्डित जीने कुछ उनसे विशेष पकड़ नहीं की है । परन्तु इस बात का भेद सिवाय अन्तर्यामी परमेश्वर के जीव नहीं जान सकता कि मैं लोकहित चाहता हूं वा केवलविजय अर्थात् नाम की प्रसिद्धि, भाषार्थ में जो शब्द (किया है) लाया गया तो इस का कारण यह है कि भाषा में संस्कृत का अभिप्रायमात्र लिखा है केवल शब्दार्थ ही नहीं क्योंकि भाषा करने का तो केवल यही तात्पर्य है कि जिन लोगों को संस्कृत का बोध नहीं है उन को विना भाषार्थ के यथार्थ वेदज्ञान नहीं हो सकेगा इसलिये भला यह कोई बात है कि ऐसी तुच्छ बातों में दोष पैदा करना । जो कि विद्वानों के विचार से दूर हैं । और उप, कृञ्, धातु का अर्थ है (उपकार, और किया) ये दोनों अर्थ भी भूतकाल की क्रिया को बतलाते हैं कि ईश्वर ने जीवों के हित के लिये वेदों का उपदेश किया है और ठीक२ घटसकता है ॥

पं० महेश०—खैर ये तो साधारण बातें थीं परन्तु अब मैं भारी २ दोषों पर आता हूं मंत्रभाष्य के प्रथम संस्कृतखण्ड में (अग्निमीड़े पुरोहितम्) इस के भाष्य में स्वामी जी ने अग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है । जब कि प्रसिद्ध अर्थ अग्नि शब्द के सिवाय आग के दूसरे कोई नहीं ले सकता । तथा सायणाचार्य्य वेद के भाष्यकार को इसी विषय में साची वर्त्तमान है । स्वामी जी अपने पच में शतपथब्राह्मण और निरुक्त आदि को प्रमाण मानते हैं परन्तु क्या ये भाष्य आदि अग्नि शब्द से परमेश्वर के अर्थ की पुष्टि कर सकते हैं अर्थात् कभी नहीं क्यों० कि जो २ शब्द उन में ईश्वरार्थ में लिखे हैं उन में अग्नि शब्द का नाम भी नहीं है । फिर स्वामी जी इसी पच में ऐतरेयब्राह्मण का प्रमाण धरते हैं कि—

अग्निर्वै सर्वा देवताः ॥ ऐ० १ । पं० १ ॥

यहां कुछ संबन्ध नहीं है किन्तु दीचाख्यितियज्ञ में लग सकता है मैं यह आगे का वाक्य डाक्टर एम० हाग साहब के टीकासहित लिखता हूं ॥

स्वामीजी—अब पंडितजी की ऐसी पकड़ से मालूम होगया कि उन को संस्कृत ग्रंथ समझने का बहुत ही बोध है और विद्वानों को चाहिये कि पण्डित जी की खातर से मान भी लें कि वेद विद्या के बड़े प्रवीण हैं। सत्य तो यह है कि उन्हों ने प्राचीन ऋषिमुनियों के ग्रंथ कभी नहीं देखे और उन को ठीक २ अर्थ समझने का बिल कुल ज्ञान नहीं क्योंकि जिन २ ग्रंथों अर्थात् वेद, शत-पथ और निरुक्त आदिग्रों के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में लिखे हैं उन को ठीक २ विचार ने से आयने के समान जान पड़ता है कि अग्नि शब्द से आग और ईश्वर दोनों का ग्रहण है। जैसे देखो कि—

इन्द्रं मित्रं वरुण०। तदेवाग्निस्तदादित्य०। अग्निर्होताकविः०। ब्रह्म ह्यग्निः। आत्मा वा अग्निः॥

देखिये विद्यानेत्र से इन पांच प्रमाणों में अग्निशब्दसे परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।

अयंवा अग्निः प्रजाश्च प्रजापतिश्च॥

और इस प्रमाण में प्रजा शब्द से भौतिक अग्नि और प्रजापति शब्दसे पर-मेश्वर लिया जाता है। इसी प्रकार—

संवत्सरोऽग्निः॥

इत्यादि प्रमाणों में अग्नि शब्द सें ठीक २ परमेश्वर का ग्रहण होता हैं तथा

अग्निर्वै सर्वा देवताः॥

इस बचन में भी परमेश्वर और सांसारिक अग्नि का ग्रहण होता है। क्यों-कि जहां उपास्य उपासक प्रकरण में सर्व देवता शब्द से अग्निसंज्ञक परमेश्वर का ग्रहण होता है इस में मनु का प्रमाण दिया है क्योंकि:—

यत्रोपास्यत्वेन सर्वा देवतेत्युच्यते तत्र ब्रह्मात्मैव ग्राह्यः॥

जो वे इस पंक्ति का अभिप्राय समझते तो उन को अग्नि शब्दसे परमेश्वर के ग्रहण में कभी भ्रम न होता तथा निरुक्त से भी परमेश्वर और भौतिक इन दो-नों का यथावत् ग्रहण होता है। देखो एक तो (अग्रणीः) इस शब्दसे उत्तम परमेश्वर ही माना जाता है इस में कुछ संदेह नहीं और दूसरा हेतु यह है कि (इतात्) इस शब्द से अग्नि नाम ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ही का ग्रहण हो सकता है क्योंकि। इणगतौ। इस धातु से यहां ज्ञानार्थ ही अभिप्रेत है (दग्धात्) इस

पद से केवल भौतिक अग्नि लिया जायगा परमेश्वर नहीं । तथा (अक्तात् और नीतात्) इन दोनों से परमेश्वर और भौतिक दोनों लियेजाते हैं क्योंकि "इण्" धातु से ऋषि को प्राप्ति और गमन अर्थ ही लेने का अभिप्राय होता तो (अक्तात्, दग्धात्, नीतात्) ऐसे शब्दों का ग्रहण नहीं करते तथा जो अग्नि शब्द से धात्वर्थ ग्रहण में यास्कमुनि का अभिप्राय नहीं होतातो पृथक् २ धातुओं को नहीं गिनते और (अग्निर्वैसर्वा देवता: इतिनिर्वचनाय) इस बचन का अर्थ निरुक्तकार करते हैं कि जिस को बुद्धिमान् लोग अनेक नामों से वर्णन करते हैं। जो कि एक अद्वितीय सब से बड़ा सब का आत्मा है उसी को अग्नि कहते हैं ॥

उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते ॥

इस बचन में अग्निशब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों का ग्रहण होता है क्योंकि इस अग्निनामधेय से दोनों उत्तर ज्योति अर्थात् अनन्त ज्ञान प्रकाशयुक्त परमेश्वर जो कि प्रलयके उत्तर सबसेसूक्ष्म तथा आधार है उसका और जो विद्युत् रूप गुणवाला सब से सूक्ष्म स्थूल पदार्थों में प्रकाशित और प्रकाश करने वाला भौतिक अग्निहै इन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है इसी प्रकार:—

अग्नि: पवित्रमुच्यते ॥

इत्यादि में भी अग्निशब्दसे दोनोंही को लेना होता है तथा (प्रशासितारं०) जो सब को शिक्षा करनेवाला, सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधियोग से जानने योग्य पर पुरुष परमात्मा है विद्वान् उसी को परमेश्वर जानें फिर (एतमेके वदन्त्यग्निं०) विद्वान् लोग अग्नि आदि नामों करके एक परमेश्वर कोही कहते हैं। ऊपर सब के प्रमाण अग्नि अर्थात् परमेश्वर में प्राचीन सत्यग्रंथों की साक्षी से ठीक २ घटते हैं परन्तु जो पंडितजी के घरके निराले ग्रंथ हैं उनमें न होगा और कदाचित् वे कहें कि निघण्टु में जो ईश्वरके नाम हैं उनमें अग्निशब्द नहीं आता इससे मालूम हुआ कि अग्नि परमेश्वर का वाची नहीं तो समझना चाहिये कि जैसे निघण्टु के अ० २ खं० २२ में जो "राष्ट्री"। अर्य्य:। नियुत्वान् इन:" ये चार ईश्वर के अप्रसिद्ध नाम हैं और यह नहीं हो सकता कि जो नाम ईश्वर के निघण्टु में हों वेही माने जांय औरों को विद्वान् लोग छोड़ देवें। परमेश्वर के तो असंख्यात नाम हैं और आप क्या चार ही नाम ईश्वर केसमझते और क्या निघण्टु में न लिखने से ब्रह्म, परमात्मा आदि ईश्वर के नाम नहीं हैं। यह पंडितजी की बिलकुल भूल है जैसे ब्रह्म आदि ईश्वर के नाम निघण्टु के विना लिखे भी लिये जाते हैं वैसे अग्निआदि भी परमेश्वरके नाम हैं। इसपूर्वपक्ष में

जो कुछ अवश्य था संक्षेप से लिख दिया। यह बात वेदभाष्य के अङ्कमें विस्तार-पूर्वक सिद्ध करदी है वहां देख लेना। पण्डित जी आर गिरिफिथ साहब और सी० एच० टानी साहबों के पीछे २ चलते हैं सो इस का कारण यह है कि पं० जी ने महीधरादि की अशुद्ध टीका देख ली है और उक्त साहबों ने प्रोफेसर विलसन आदि के उन्हीं अशुद्ध भाष्यों के उलथे अङ्गरेजी में देख लिये होंगे उन से क्या हो सकताहै। जब तक सत्य ग्रंथों और मूलमंत्रों को न देखें समझें तब तक वेद मंत्रों का अभिप्राय ठीक २ जानलेना लड़कों का खिलौना नहीं है। इसी के समान पं०जी काऔर कथन भी है इसलिये अबदूसरीबात का उत्तर लिखते हैं।

अग्निर्वै सर्वा देवताः देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः।

इत्यादि पर जो पण्डितजी ने लिखा है सो भी अयुक्त है क्योंकि वेदमंत्रादि प्रमाणों को छोड़कर (अग्निर्वै सर्वाः०)इस पद पर लिखनेसे मालूम होता है कि पं०जी ने भाष्य की परीक्षा तो न की किन्तु छल अवश्य किया है। सोभी पं०जी ने इस वाक्य को तो लिखा परन्तु उसके अभिप्राय को यथार्थ नहीं जाना क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि सब कर्मकाण्ड के अग्निहोत्रादि अश्वमेध पर्य्यन्तहोम-क्रिया में अग्निमंत्र प्रथम और विष्णुमंत्र का पश्चात् उच्चारण करते हैं जहां कहीं व्यावहारिक ३३ देव गिनाये हैं वहां भी अग्नि प्रथम और विष्णु अन्तमें गिनाया है। तथा।"अग्निर्देवता०" इस मंत्र में भी अग्नि का प्रथम और वरुण का अन्त में ग्रहण किया है सो ऐतरेय ब्राह्म० के पं० १ अ० २ कं० १० में लिखाहै कि—

त्रयस्त्रिंशद्ध वै देवा अष्टौ वसव इत्यादि।

तथा शतपथब्राह्मण में भी इसी बात की व्याख्या वेदभाष्य की भूमिका के अङ्क २ के पृष्ठ ५८ की पंक्ति ३१ में देवता शब्द से किस २ को किस २ गुण से ग्रहण करना लिखा है वहां देख लेना। तथा उसी अङ्क ३ के पृष्ठ ६६ पंक्ति७ में अग्नि से आरम्भ करके प्रजापतियज्ञ अर्थात् विष्णु में गिनती पूर्ण करदी है। इसलिये (अग्निर्वै०) इस वचन में अग्नि को प्रथम और विष्णु को अन्त में गिना है। सो पूर्व लिखित ग्रंथ में देखने से सब शंका निवारण होजायगी। तथा उक्तसाहब लोगों और पंडितजी की यह भी शंका निवृत्त होजावेगी कि वेदों में एक के सिवाय दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं है किन्तु जिस २ हेतु से जिस२पदार्थ का नाम देव धरा है उस २ को वहां अर्थात् अङ्क ३ में देख लेना। और डाक्टर एम साहब की अशुद्ध टीका का जो हवाला देते हैं तो यह पण्डितजी की एक

लज्जा की बात है । कि प्राचीन सत्य संस्कृत ग्रन्थों को छोड़ कर इधर उधर कस्तूरिये हिरन के समान भूलते और भटकते हैं डाक्टर एम साहब वा सी॰एच॰ टानी साहब वा आर गिरिफिथ॰ साहब आदि कुछ ईश्वर नहीं कि जो कुछ वे लिखचुके वह बिना परीक्षा वा विचार के मानलेने योग्य ठहरे। क्या डाक्टर एम॰हाग॰साहब हमारे आर्य्य ऋषि मुनियों से बढ़कर हैं । कि जिन को हम सर्वोपरि मान निश्चय करलें और प्राचीन सत्य ग्रंथों को छोड़ देवें जैसा कि पण्डितजी ने किया है । जो उन्हीं ने ऐसा किया तो किया करो मेरी दृष्टि में तो वे जो कुछ हैं सो ही हैं । तथा इस कण्डिका में भी (यज्ञस्यान्ते) वचन में आदि में अग्निमंत्र और अन्तमें विष्णुमंत्र का प्रयोग किया जाता है फिर इन दोनों के बीच में व्यवहार के सब मंत्र देवते गिने हैं । अग्नि को प्रथम जिन २ द्रव्यों का वायु और वृष्टि जल की शुद्धि के लिये अग्निमें होम कियाजाता है वे सब परमाणु रूप होकर विष्णु अर्थात् सूर्य्य के आकर्षण से वायुद्वारा आकाश में चढ़जाते हैं फिर मेघमण्डल में जलवृष्टिके साथ उतर कर बाकी जो बीच में ३० देव गिनादिये हैं उन सभी को लाभ पहुंचाते हैं । इस अभिप्राय को पण्डित जी नहीं समझते हैं ॥

पं॰ महेश॰—अब ऊपर के वचन से साफ जाना जा सकता है कि वेद में एक परमेश्वर की पूजा नहीं किन्तु निस्सन्देह देवता विधान पाया जाता है । और उन देवताओं को बलिदान आदि पदार्थों का भेट करवा लिखा हुआ है । इस वाक्य में यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि अग्नि शब्दका अर्थ ईश्वर है किन्तु उस में ईश्वर का जिकर भी नहीं है । इस बात की साबूती में स्वामीजी एक प्रमाण देते हैं (यत्रोपास्यत्वेन॰) अर्थात् जहां सब देवों का पूजन कहा है वहां परमेश्वर को समझना चाहिये । फिर इस की पुष्टि में स्वामीजी मनु का प्रमाण देते हैं (आत्मैव देवता:सर्वा:॰) अर्थात् आत्मा सब देव है और आत्मा ही में सब संसार स्थित है यह नहीं समझ सकते कि यह वचन स्वामीजी का मन प्रसन्न प्रमाण की पुष्टता कैसे कर सकती है ॥

स्वा॰जी—ऊपर के वचनों से ईश्वर का नाम अग्नि सिद्ध करदिया है । परन्तु पक्षपात छोड़ के विद्या की आंख से देखने वाले को स्पष्टमालूम होता है कि निस्सन्देह अग्नि ईश्वर का भी नाम है । वेदों में अनेक ईश्वर को विधान कहीं नहीं है । और जो देवताशब्दसे सृष्टिके भी पदार्थों का विधान है उसका उत्तर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अङ्क३ के देवता विधान प्रकरण को देखने से अच्छे प्रकार जान लेना अर्थात् जिस २ गुण औरअभिप्राय से सृष्टि के पदार्थों का नाम

देवता रक्खा गया है उस को देख लेना चाहिये क्योंकि वहां यह बात अनेक प्रमाणों से सिद्ध करदी है, परन्तु चारो वेदों में एकसे दूसरा ईश्वर कहीं नहीं माना है और न ईश्वर के तुल्य पूजना कहा है किन्तु उन की दिव्यगुणों से व्यवहारमात्रमें देवता संज्ञा मानी है। चारोवेदों में एक से दूसरा ईश्वर कहीं प्रतिपादन नहीं किया है। तथा इन्द्र अग्नि और प्रजापति आदि शब्दों से ईश्वर और भौतिक दोनों का प्रतिपादन किया है। और जो पण्डित जी लिखते हैं कि अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर नहीं है किन्तु उस स्थान में जिकरभी नहीं इस का उत्तर यह है कि इस में वेद वेदान्त ब्राह्मण तथा मेरा दोष नहीं किन्तु इस में पण्डित जी के शास्त्रों में न्यून अभ्यास का दोष है। क्योंकि जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों का यथार्थ अर्थ न समझा होगा उस के उलटे ज्ञान हो जाने का संभव है। वेदों में एक ईश्वर के प्रतिपादन में भूमिका अङ्क ४ में ८८ के पृष्ठ से ९२ पृष्ठ तक ब्रह्मविद्याप्रकरण की समाप्ति पर्य्यन्त देखना चाहिये। (आत्मैव देवताः सर्वाः०) इस का अभिप्राय पण्डित जी ने ठीक२ नहीं समझा है। क्योंकि इस का मतलब यह है कि आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही अग्निआदि सब व्यवहार के देवताओं का रचन पालन और विनाश करने वाला है तथा (अग्निर्देवताः०) इत्यादि प्रकरण में व्यवहार के देवता और अग्निआदि नामों से परमेश्वर का भी ग्रहण है क्योंकि (सर्वमात्मन्यवस्थितम्) इस वचन से सिद्ध होता है कि सब जगत् का आत्मा जो परमेश्वर है सो उसी में स्थिर है और वही सब में व्यापक है इस अभिप्राय से यह बात सिद्ध होती है कि अग्नि परमेश्वर का भी नाम है इस से मेरा कहना यथार्थ पुष्टि रखता है॥

पं० महेश०—ऐतरेयब्रा० के प्रमाण से अग्नि और विष्णु दोही देव मुख्य करके पूजनीय माने हैं क्योंकि वे ही यज्ञ में आदि अन्त के देव हैं जिन के द्वारा सब बीच वालों को भाग पहुंचता है इसलिये इन्ही दोनों की सब देवों के तुल्य स्तुति की गई है। इस में स्वामी जी ऐतरेयब्रा० का जो प्रमाण देते हैं सो उन के कथन की पुष्टि तो नहीं करता किन्तु विरुद्ध पड़ता है॥

स्वा० जी—अब जो पं० जी (अग्निर्वै सर्वा देवताः) इस में भ्रान्त हुए हैं सो ठीक नहीं और जो—

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः॥

इत्यादि ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण धरा है इस का अर्थ ठीक २ पण्डित जी नहीं समझे हैं इस का अभिप्राय यह है कि (अग्निर्वै सर्वा देवताः, विष्णुः सर्वा देवताः) इस का भी मनु के प्रमाण समान अर्थ होने से मेरे अभिप्राय की पुष्टि

करता है और जहां भौतिक वा मन्त्र ही देवता लिये गये हैं वहां पुरोडाश आदि करने की क्रिया द्रव्ययज्ञ में संघटित यथावत् की गई हैं क्योंकि जब प्रथम अग्नि में होम किया जाता है और उस से सब द्रव्यों के रस और जल आदि के परमाणु पृथक् २ हो जाते हैं तब वे हल्के हो के सूर्य्य के आकर्षण से वायु के साथ मेघमण्डल में जा के रहते हैं फिर वेही मेघाकार संयुक्त होकर वृष्टिद्वारा पृथ्वी आदि मध्यस्थ देवसंज्ञक व्यवहार के पदार्थों को पुष्ट करते हैं इस का नाम भाग और बलिदान है। तथा इसी कारण अग्नि को प्रथम और सूर्य को अन्त में माना है। ऐसे ही अग्नि को सूक्ष्म और सूर्यलोक को अग्नि का बड़ा पुंज समझा है। इत्यादि अभिप्राय से यह पंक्ति ऐतरेय ब्राह्मण में लिखी है जिस को पं० जी ने न जान कर मेरे लेख पर विरुद्ध संमति दी है॥

पं० महेश०—निरुक्त भी कुछेक ही साक्षी देता है स्वामी जी (अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति०) इत्यादि निरुक्त का प्रमाण धरते हैं कि जिस में अग्नि शब्द की साधना की गई है। कई धात्वर्थ केवल भौतिक अग्नि के वाची हैं और स्वामी जी भी इस बात को मानते हैं और कहते हैं कि सिवाय भौतिक के अग्नि शब्द से ईश्वर का भी ग्रहण होता है और यह अर्थ (अग्रणीः) शब्द से लेते हैं। जैसा कि निरुक्तकार समझता है कि अग्नि शब्द (अग्र—नी) से मिल कर बना है निरुक्तकार इस शब्द के कुछ विशेष अर्थ नहीं करता है। शतपथ ब्रा० जिस को स्वामी जी मानते हैं विशेष अर्थ बताता है परन्तु ईश्वर के नहीं यद्यपि वे कुछ कहते हैं लेकिन सिवाय भौतिक के दूसरा अर्थ नहीं हो सकता॥

स्वा० जी—अब जो पं० जी लिखते हैं कि निरुक्तकार भी कुछेक ही संमति देता है सो नहीं क्योंकि निरुक्त में अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों अर्थों का यथावत् ग्रहण किया है। तथा उस में अग्निशब्द का साधुत्व तो कुछ भी नहीं लिखा है किन्तु धात्वर्थ के निर्देश से अर्थप्रतीति कराई है क्योंकि शब्दों का साधुत्व व्याकरण का ही विषय है निरुक्त का नहीं। इस लिये उस में रूढ़ि यौगिक और योगरूढि शब्दों का निरूपण मुख्य करके किया गया है जैसे कि (इतात्) (अक्तात्) (दग्धात्) वा (नीतात्) इन में (इण्) धातु गत्यर्थक (अञ्जू) व्यक्त्याद्यर्थ (दह) भस्मी करणार्थ (णीञ्)प्रापणार्थ दिखाने से विद्वानों को ऐसा भ्रम कभी नहीं हो सकता है कि अग्निशब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों का ग्रहण नहीं है क्यों कि (इण्) और (अञ्जू) इन धातुओं के गत्यर्थ होने से ज्ञान, गमन, प्राप्ति, ये तीनों अर्थ लिये जाते हैं। इन में ज्ञान और प्राप्त्यर्थ से परमेश्वर तथा गमन और प्राप्त्यर्थ से भौतिक पदार्थ ये दोनों ही लिये जाते हैं और (अग्रणीः) शब्द तथा

अथं यज्ञेषु प्रणीयतेऽगं नयति ॥

इस के अभिप्राय से अग्नि शब्द परमेश्वर और (न क्नोपयति न स्नेहयति) इस से भौतिक पदार्थ में लिया जाता है यह निरुक्त का अभिप्रायार्थ है । मंत्रभाष्य के दूसरे पृष्ठ में ठीक२ लिख दिया गया है । जो उसको पण्डितजीयथाथ विचारते तो इस वेदभाष्य पर ऐसी विरुद्ध सम्मति कभी न देते क्योंकि निरुक्त-कारने पूर्वोक्त प्रकार से दोनों अर्थ का विशेष अच्छी तरह दिखला रक्खा है परन्तु जो कोई किसी के लेख का अर्थ यथावत् नहीं समझते उन को उस के विशेष वा सामान्य अर्थ का ज्ञान कभी नहीं हो सकता ॥

पं॰महेश॰—(प्रजापतिर्ह वा इदमग्र॰) हमारी मुराद यह नहीं है कि हम शतपथ ब्राह्मण में अग्नि शब्द भौतिक का वाची ढूंढें किन्तु मैं यह बताता हूं कि पूर्वोक्त वाक्यसे निश्चय होता है कि अग्नि सिवाय आग के दूसरा अर्थ नहीं देती है॥

स्वा॰जी—पंडित जी का कथन है कि हमारी मुराद यह नहीं है कि हमशत-पथब्राह्मण में अग्नि शब्द भौतिक का वाची ढूंढें इत्यादि । इस का उत्तर यह है कि मैं पूर्वोक्त प्रकार अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों अर्थों को लेता हूं सो वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से निर्भ्रमता के साथ सिद्ध है । परन्तु पण्डित जी का अभिप्राय जो अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण में विरुद्ध है उस का हेतु यह मालूम पड़ता है कि पण्डित जी बाल्यावस्था से लेकर आज पर्य्यन्त अग्नि शब्द से भौतिक अर्थात् चूल्हे आदिमें जलने वाली ही आगि को सुनते और देखतेआये हैं इसलिये वहीं तक उन की दौड़ है परन्तु मैं उन से मित्रभाव से कहता हूं कि वे वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, और ब्राह्मण आदि सनातन आर्षग्रन्थों के अर्थ जानने में अधिक पुरुषार्थ करें कि जिस से ऐसी२ तुच्छ शंका हृदय में उत्पन्न न हों क्योंकि जो २ शतपथ के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण-विषय में धरे हैं वे क्या शतपथ के नहीं हैं जो शंका हो तो उक्त जगह पुस्तक में देख लेवें और जिस वाक्य की पंक्ति का प्रमाण पण्डित जी ने धरा है उसमें का मुख्य पाठ उन्हों ने पहिले ही उड़ादिया इस चालाकी को देखना चाहिये कि—

तद्यदेनं मुखादजनयत्तस्मादन्नादोऽग्निः स यो हैवमेतमग्नि-मन्नादं वेदान्नादो हैव भवति ॥

इस में अन्नाद शब्द अग्नि का वाची है, और—

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो अहमन्नादोऽहमन्नादः ।

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का बचन परमेश्वर के विषय में है अर्थात् वह उपदेश करता है कि मैं ही अन्नाद हूं और अन्नाद अग्नि को कहते हैं इस से यहां भी परमेश्वर का नाम अग्नि आता है और दूसरी चाल पण्डित जी यह भी खेले हैं कि जिस आधी पंक्ति से शतपथ में अग्नि शब्द से परमेश्वर लिया है उस पाठको अपने पुस्तक में नहीं लिखा देखिये कि :—

प्रजापतिः परमेश्वरः यत् यस्मात् मुख्यात् प्रकाशमयान्मुख्यात्कारणात् एनं भौतिकमग्निमजनयत्तस्मात्सपरमेश्वरोऽन्नादोऽग्निरर्थादग्निसंज्ञो विज्ञेयः । यो मनुष्यो ह इति निश्चये नैवमनुनाप्रकारेणैतमन्नादं परमेश्वरमग्निं वेद जानाति ह इति प्रसिद्धे सएवान्नादो भवत्यर्थाद् ब्रह्मविद्भवतीति ॥

इस प्रकार से यह बात निश्चित होती है कि पण्डित जी उन ग्रन्थों का अर्थ ठीक २ नहीं जानते और जितना जानते हैं उस में भी कपट और आग्रह से सत्य नहीं लिखते । पण्डित जी को विदित हो कि यहां पाठशालाओं के लड़कों से प्रश्नोत्तरलेख वा उन की परीक्षा नहीं है इस से जो कुछ वे लिखें सो विचारपूर्वक होना चाहिये कि उन को किसी की खुशामद वा आग्रह से लिखना उचित नहीं । जो २ शतपथ के प्रमाण मैं ने वहां २ लिखे हैं उस २ का अर्थ भी संक्षेप से लिख दिया है उसको ध्यान देकर देख लेवें ।

पं०महेश०—अग्निः पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामः ॥

पृथिवी का अग्नि ईश्वर अर्थ में कभी नहीं लिया जा सकता है इस बात को अच्छी तरह प्रकाश करनेके लिये कि निरुक्तकार अग्नि शब्द के क्या अर्थ लेता है ॥

स्वा० जी—फिर जो पण्डित जीने (अग्निः पृथ्वीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामः) इस में अपना अभिप्राय जताया है कि क्या पृथ्वी का अग्नि ईश्वर अर्थ में कभी लिया जा सकता है । इस में पण्डित जी से मैं पूछता हूं कि क्या आप अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोकस्थ अग्नि ईश्वर अर्थ में ग्रहण करते तथा क्या परमेश्वर के व्यापक होने से पृथिवीस्थान नहीं हो सकता और उन को विचारना चाहिये कि (पृथवी स्थानं यस्य सः परमेश्वरोऽग्निर्भौतिकश्चेत्यर्थद्वयं गृह्यताम्) इस वचन के अर्थ पर उन का अभिप्राय ठीक नहीं सिद्ध होता क्योंकि इस बात को कौन सिद्ध कर सकता है कि पृथिवी से भिन्न अन्य पदार्थ में भौतिक अग्नि नहीं है जब कि यहां पृथिवी अर्थात् सब सृष्टि भर ली जाती है तथा कार्य्य

और कारण रूप को भी पृथिवी शब्द से लेते हैं। फिर उन का अभिप्राय इस बात में शुद्धभी नहीं हो सकता क्योंकि रूप गुण वाला पदार्थ अग्नि शब्द से गृहीत होता है और न केवल चूल्हे वा वेदी में धरा हुआ। तथा पृथिवी स्थानशब्द के होने से अग्निशब्दका ग्रहण परमेश्वर अर्थ में भी यथावत् होता है। जैसे :—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोऽयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं पृथिवीमन्तरोऽयमयति स त आत्मा अन्तर्य्याम्यमृतः ॥

यह वचन शत० कां० १४ अ० ६ ब्रा० ५ कण्डिका ७ का है कि जिस में पृथिवीस्थान शब्दसे परमेश्वर का ग्रहण किया है क्योंकि जहां कहीं अन्तर्य्यामी शब्दसे परमेश्वर की विवक्षा होती है वहां एक जीव के हृदय की अपेक्षा से भी परमेश्वर का ग्रहण होता है जैसे :—

स त आत्माऽन्तर्य्याम्यमृतः।

अर्थात् गौतमऋषि से याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गौतमजी पृथिवी में ठहर रहा है और उस से पृथक् भी है तथा जिस को पृथिवी नहीं जानती जिस के शरीर के समान पृथिवी है जो पृथिवी में व्यापक होकर उस को नियम में रखता है वहीपरमेश्वर अमृत अर्थात् नित्यस्वरूप तेरा जीवात्मा का अन्तर्य्यामी आत्मा है। इतनेही से बुद्धिमान् समझलेंगे कि पण्डितजी निरुक्तका अभिप्राय कैसा जानतेहैं।

पं० महेश०—तथा देवता विषय में उसका कैसा विचार था आगे के प्रमाण अङ्गरेजी टीका सहित लिखते हैं (यत्कामऋषिर्यस्यां०) जिस मंत्र से जिस देवता की स्तुति कीजाती है वही उस मंत्र का देवता है (महाभाग्याद्देवतायाः) अर्थात् देवता एक ही है परन्तु उस में बहुतसी शक्ति होने के कारण अनेक रूपों में पूजा जाता है उस के सिवाय और २ देव उसके अङ्गहैं। प्राचीन अनुक्रमणिकाकार भिन्न २ मंत्रों के पृथक्२ देवता विभाग करता है और इस का प्रमाण स्वामी जी ने माना है देखो पृष्ठ १ पं० २ । तथा पृ० २३ पं० १४ । इसी विषय की। परन्तु बात काट के उस के असली अर्थ के विरुद्ध कहते हैं कि सब मंत्रों का देवता परमेश्वर है अग्नि वायु आदि नहीं यह हिन्दुओं का बड़ा सत्यानुसार धर्म है कि अनेक देवते एक ईश्वर ही के प्रकाशरूपहैं। इस बात का प्रमाण ऐतरेयोपनिषद् में लिखता है कि जिस को स्वामीजी भी मानते हैं जैसे :—

निहितमस्माभिरेतद्यथावदुक्तमनसौत्यथोत्तरप्रश्नमनुब्रूहीति ०॥

इत्यादि। ४। ५। ६॥

स्वामी जी—यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मंत्रो भवति ॥

इस का उत्तर भूमिका अङ्क २ के देवता विषय में देख लेना वहां अभिप्राय सहित लिखदिया है अर्थात् प्रकारान्तर से व्यवहार के पदार्थों को भी देवसंज्ञा मानी है पूज्योपास्य बुद्धि से नहीं। अब प्राचीन अनुक्रमणिकाकार जो भिन्न २ देवता मानता है सो भी इस अभिप्राय से है कि इस मंत्र का अग्निदेवता इत्यादि लेख से कुछ आप को बात की पुष्टि नहीं होती क्योंकि वहां केवल नाममात्र का प्रकाश है विशेष अर्थ का नहीं वैसे ही अग्नि शब्दके पूर्वोक्त प्रकार से घटित दोनों अर्थ लिखे जाते हैं तथा सब मंत्रों का देवता परमेश्वर इस अभिप्राय से है कि सब देवों का देव पूजनीय और उपासना योग्य एक अद्वितीय ईश्वर ही है सो यथावत् देवता प्रकरण में लिखदिया है वहां देखलेना कि व्यावहारिक अग्नि वायु को देवता किस लिये और परमेश्वर किस प्रकार माना जाता है ऐसे ही सब जगत् को ब्रह्म मानना तथा ब्रह्म को जगत् रूप समझना यह हिन्दुओं की बात होगी आर्यों की नहीं। हम लोग आर्य्यावर्त्तवासी ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमस्थ ब्रह्मा से लेकर आज पर्य्यन्त परमेश्वर को वेदरीति से ऐसा मानते चले आये हैं कि वह शुद्ध सनातन निर्विकार, अज, अनादि, स्वरूप जगत् के कारण से कार्यरूप जगत् का रचन पालन और विनाश करनेवाला है और हिन्दु उसको कहते हैं कि जो वेदोक्तसत्य मार्ग से विरुद्ध चले। इसमें पंडित जी ने जो मैत्र्युपनिषद् का प्रमाण धरा है सो भी विना अर्थ जानेहुए लिखा है क्योंकि वहां ब्रह्म की उपासना का प्रकरण है। तद्यथा:—

यस्तपसाऽपहतपाप्माऽऽों ब्रह्मणो महिमेत्येवैतदाह यः सुयुक्तोऽजस्रं चिन्तयति तस्माद्विद्यया तपसा चिन्तया चोपलभ्यते ब्रह्म स ब्रह्मणः पर एता स्वधि दैवत्वं देवेभ्यश्चेत्यक्षय्यमपरिमितमनामयं सुखमश्नुते य एवं विद्वाननेन त्रिकेण ब्रह्मोपास्ते ॥

जो पंडितजी इस प्रकरण का अर्थ ठीक २ समझ लेते तो परमेश्वर का नाम अग्निनहीं ऐसा कभी न कह सकते क्योंकि उसी ब्रह्मके अग्नि आदि नाम यहां भी हैं और ब्रह्म की तनू अर्थात् व्याप्य जो पूर्वोक्त स्थान शतपथ ब्राह्मण में अन्तर्यामी पृथिवी से लेकर जीवात्मा पर्य्यन्त २४ अर्थात् अन्वय और व्यतिरेकालङ्कार से शरीर शरीरी अर्थात् व्याप्य व्यापक संबन्ध परमेश्वर का जगत् के साथ दिख लाया है सो देखलेना उसी शतपथ में पांचवे ब्राह्मण की २१ कण्डिका में

अदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽस्ति द्रष्टेत्यादि।

व्याप्यव्यापकसंबन्ध पूर्वोक्त अलंकार से यथावत् दिखला दिया है इस से—

ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्।

इस का अर्थ इसप्रकारसे है कि ब्रह्म केवल एक चेतनमात्र तत्व है जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह सुवर्ण खरा है तो इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि इस सुवर्ण में दूसरे धातु का मेल नहीं इसी प्रकार जैसे कार्य्य जगत् के संघातों में अनेक तत्वों का मेल है वैसे ब्रह्म नहीं किन्तु वह भिन्न वस्तु है तथा तात्स्थ्योपाधि से यह सब जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मस्थ है और ब्रह्म सर्व विश्वस्थ भी है यह इस वचन का ठीक अर्थ है क्योंकि फिर इसी के आगे यह पाठ है कि:—

यावास्यामन्तस्तनश्चात्मा अभिध्यायेदर्चयेन्निन्हयात्मातस्ताभिः सहैवोपर्य्युपरि लोकेषु चात्यश्च कृत्स्नस्य एकत्वमेति पुरुषस्य पुरुषस्य॥

अर्थात् जो विद्वान् पुरुष अपने आत्मा में ब्रह्मकी उपासना ध्यान और उसी की अर्चा कर अपने हृदय के सब दोषों को अलग करता इस के उपरान्त जब अपने अन्तःकरण से शुद्ध हो कर मुक्ति पा चुकता है तब वह उन्ही पूर्वोक्त तनुओं के सहित उपरि सब लोकों के बीचा बीच रहता हुआ अन्तमें परमेश्वर की सत्ता-मात्र को प्राप्त हो जाता है। सब मुक्त पुरुषों के समीप रहता हुआ अकथनीय परम आनन्दमें किलोल करता है और इस के आगे भी मैत्र्युपनिषद् के पञ्चम प्रपाठक के आरम्भ में कौत्सायिनी स्तुतिके अनुसार भी (त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णु-स्त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिरग्निः) इत्यादि प्रमाण से अग्न्यादि परमेश्वर के नाम यथा-वत् हैं इस से यह बात पाई गई कि यद्यपि पण्डित जी प्रोफेसरग्रिफिथ टानी साहब के वकील भी हुए तथापि मुकद्दमा में खारज होने के योग्य हैं तथा यह भी जान पड़ा कि वेदभाष्य पर विरुद्ध संमति देने वाले वेदादि शास्त्रों का ज्ञान कम रखते हैं॥

पं० महेश० तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः॥

जो लोग निरुक्त के समझने वाले हैं वे कहते हैं कि देवता तीन ही हैं। अग्नि वायु, और सूर्य इन देवताओं का बल बहुत और काम पृथक् २ होने से उन को कई नामों से बोलते हैं॥

अथाकारचिन्तनं देवतानां पुरुषविधाः स्युरित्येके चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाविधानि। अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते ॥

कितने ही देवते मनुष्यों के समान हैं अर्थात् वे मनुष्यों के तुल्य घोड़े आदि की सवारी और खाना पीना सुनना बोलना आदि काम करते हैं, कुछ देवते ऐसे हैं कि मनुष्यों के तुल्य नहीं परन्तु दृष्टिमें आते हैं जैसे अग्नि, वायु, आदित्य, पृथिवी और चन्द्रमा, तथा कितने ही चेतन नहीं हैं जैसे सिक्का वनस्पति आदि॥

हम कह चुके हैं कि देवता तीन हैं अग्नि, वायु और सूर्य जिन के गुणों की व्याख्या करते हैं, अब अग्निके गुण बताते हैं, अर्थात् वह देवतों के पास चढ़वा पहुंचाता है, तथा उन को यज्ञ में बुलाता है ये अग्निके प्रत्यक्ष काम हैं॥

अग्निः पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामः।

जो अग्नि पृथिवी पर रहता है प्रथम हम उसी का वर्णन करते हैं, इसका अग्नि नाम क्यों हुआ, क्योंकि वह प्रथम ही आता है, देखो (अग्निमीड़े) इत्यादि इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि निरुक्तकार अग्नि शब्द से सिवाय भौतिक के दूसरी चीज़ नहीं समझा है, यह ब्रा० और निरु० से स्वामी जी का कथन ठीक नहीं, श्रौतसूत्र जो वेद की प्राचीन व्याख्या है यद्यपि स्वामी जी ने उस का कोई प्रमाण नहीं दिया परन्तु मैं कुछ साक्षी के तौर पर प्रमाण देता हूं सू० २६। कण्डिका १। अ० १, तथा सू० ७, कं० १२, अ० ४ में देखने से साफ मालूम होता है कि (अग्निमीड़े०) यह मन्त्र भौतिक अग्नि की पूजा विधान में लिखा गया है॥

स्वा० जी-इस के आगे पण्डित जी (तिस्रएव देवता०) इत्यादि निरुक्त का अभिप्राय लिखते हैं सो उन्हों ने इस का भी अर्थ ठीक २ नहीं जाना, क्योंकि इस प्रकरण में भी पूर्वोक्त प्रकार से दोनों व्यवस्था जानी जाती हैं अर्थात् अग्नि आदि नामों से व्यवहारोपयुक्त पदार्थ और पारमार्थिक उपास्य परमेश्वर दोनों ही का यथावत् ग्रहण होता, इस निरुक्त का अर्थ भूमिका के अङ्क ३ पृष्ठ ६० पंक्ति ८ मी से अङ्क ४ पृष्ठ ७८ तक देखने से ठीक २ उत्तर मिल जायगा, और इस के आकार चिन्तन से यह अभिप्राय है कि जिस२पदार्थ में जो २ गुण होते हैं उन का यथावत् प्रकाश करना स्तुतिकहाती है सो जड़ और चेतन दोनों में यथावत् घटती है इसी प्रकरण में॥

एकस्य सतोऽपि वा पृथगेव स्युः पृथगपि स्तुतयो भवन्ति तथाऽभिधानानि।

इस पंक्ति का अर्थ पण्डितजी ने न विचारा होगा नहीं तो इतने आडम्बरका लेख क्यों करते क्योंकि देखो—

तासां माहाभाग्यादेकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।

इस का अभिप्राय यह है कि अग्न्यादि संसारी पदार्थों में भी ईश्वर की रचना से अनेक दिव्य गुण हैं कि जिनके प्रकाश के लिये वेदों में उन पदार्थों के अग्न्यादि कई २ नाम लिखे हैं। तथा वेही नाम गुणानुसार एक अद्वितीय परमेश्वर के भी हैं उन्हीं पृथक् २ गुणयुक्त नामों से परमेश्वरकी स्तुति होती है तथा उसी के वेदों में सर्वसुखदायक स्वयं प्रकाश सत्य ज्ञानप्रकाशक नाना प्रकार के व्याख्यान लिखे हैं इस प्रकार सब सज्जन लोगों को जानलेना चाहिये कि अग्न्यादि नामों से पूर्वोक्त दोनों अर्थों का ग्रहण होता है केवल एक का नहीं और—

तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तासां भक्ति साहचर्यं व्याख्यास्यामः।

इस का अभिप्राय यह है कि उन व्यावहारिक देवताओं का जुदापन (साहचर्यं) अर्थात् संयोग दो प्रकार का होता है एक समवायसम्बन्ध दूसरा संयोगसंबन्ध समवाय नित्य गुण गुणी आदि में होता है और संयोगसंबन्ध गुणी और अगुणियों का होता है जैसे जगत् के पदार्थों में स्वाभाविक और नैमित्तिक सम्बन्ध होता है वैसे ही परमेश्वर में भी जानलेना कि वह अपने स्वाभाविक गुण और सामर्थ्यादि के साथ समवाय और जगत् के कारण कार्य तथा जीव के साथ संयोग संबन्ध अर्थात् व्याप्य व्यापकतादि प्रकार से है इस वचन में भी परमेश्वर का त्याग कभी नहीं हो सकता। तथा जैसे भौतिक अग्नि का काम व्यावहारिक देवताओं को जल चढ़ाना वा पहुंचाना है तथा मंत्र देव और दिव्य गुणों को जगत् में प्राप्त करना है वैसे ही सब जीवों को पाप पुण्य के फल पहुंचाना और ज्ञानानन्दी मोक्षरूप यज्ञ में धार्मिक विद्वानों को हर्षयुक्त करदेना परमेश्वर का काम है (अग्निःपृथिवीस्थानः०) इसकी व्याख्या पूर्व कर आये हैं। और(अग्नि मीळे) इसकी व्याख्या निरुक्त के अनुसार इसी मंत्र के भाष्य में लिख दी है परन्तु वहां भी दोही अग्नि लिये हैं क्योंकि एक अध्येषणा कर्मा अर्थात् परमेश्वर और भौतिक दूसरा पूजा कर्मा अर्थात् केवल परमेश्वर ही लिया है। तथा (अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः०) इस मंत्र की व्याख्या में निरुक्तकार का स्पष्ट लेख है कि—

स न मन्येतायमेवाग्निरित्यप्यते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते॥

इस का अर्थ यह है कि वह अग्निजो परमेश्वर का वाची है चूल्हे में प्रत्यक्ष जलने वाला नहीं है । किन्तु जोकि अपने व्याप्य में व्यापक विद्युत्रूप और जो उत्तर अर्थात् कारणरूप ज्योतिःस्वरूप और सबका प्रकाशक है तथा जो परमेश्वर का अग्निशब्द से ग्रहण करना कहा है । एक आनन्दस्वरूप परमात्मा का स्वीकार है जैसा कि पूर्वोक्त प्रकार से बुद्धिमान् लोग जान लेंगे कि वे सब प्रमाण जो मैने इस विषय में लिखे हैं मेरी बात की पुष्टि करते हैं वा नहीं तथा पंडित जी की पकड़ ठीक है वा नहीं। और जोकि वे श्रौतसूत्र का प्रमाण लिखते हैं उस का भी अभिप्राय उन्हों ने यथार्थ नहीं जाना क्योंकि वहां तो केवल होम क्रिया करने का प्रसङ्ग है। और होता आदि के आसनादिक और अध्वर्यु आदि के काम पृथक् २ लिखे हैं इसलिये वहां तत्संसर्गी का ग्रहण नहीं हो सकता। क्यों कि जो जिस का काम है उस को वही करे यहां उस सूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिये उस का लिखना व्यर्थ है, तथा आश्वलायन श्रौतसूत्र के चतुर्थाध्याय में तेरहमी कण्डिका के ७ सूत्र में भी केवल कर्मकाण्ड ही की क्रिया के मंत्रों की प्रतीकें धरी हैं वहां भी पंडित जी अग्नि शब्द से परमेश्वर का त्याग कभी नहीं करा सकते किस लिये कि वहां मंत्र ही देवता हैं। और शुभ कर्मों में परमेश्वर ही की स्तुति करना सब को उचित है ॥ वही मंत्र का पाठातिदेश किया है अर्थ नहीं इस से इस सूत्र का लिखना पंडितजी को योग्य नहीं था क्योंकि वहां तो केवल क्रियायज्ञ का प्रकरण है दूसरी बात का नहीं ॥

पं० महेश०—(अग्निमीडे) इस मंत्र की सिद्धि में और अधिक प्रमाण स्वामी जी ने नहीं दिये ॥ परन्तु कई मंत्रों का प्रमाण धरके कहते हैं कि अग्नि से ईश्वर का ग्रहण है सो उन मन्त्रों की साधारण विचार परीक्षा से ही मालूम हो जाता है कि उन से स्वामी जी के अर्थ नहीं निकल सकते, पहिला मन्त्र (इन्द्रं मित्रम्) वे उस को इन्द्र मित्र, वरुण और अग्निआदि नामों से पुकारते हैं। यह मालूम नहीं होता कि इस मंत्र में किस को सन्मुख करके बोलते हैं । निरुक्तकार कहता है कि वह भौतिक के लिये आया है । कोई सूर्य को बनाते हैं। खैर कुछ ही हो। परन्तु अग्नि से ईश्वर कभी नहीं लिया जा सकता, और यह जाना गया है कि जब किसी विशेष देवता की स्तुति करते हैं तो उस को शब्द और २ देवताओं के नाम से लाते हैं उस के बल आदि गुण बताने के लिये (देवाग्नि०) शुक्लयजुर्वेद से कि जिस के समान कृष्णयजुर्वेद में भी है (देखो) तैत्तिरीय आरण्यक अ० १ ॥ प्र० ॥ इस स्थान में अद्वैत मत का प्रतिपादन है जैसे देखो, जो सर्वज्ञ पुरुष सदा था है और रहेगा जिसका तमाम ब्रह्माण्ड एक अंश मात्र है

जिस से वेद उत्पन्न हुए हैं तथा जिस से घोड़ा, गौ, बकरी और खटमलआदि निकले हैं जिस के मन से चन्द्रमा नेत्रों से सूर्य्य कानो से वायु और प्राण और मुख से अग्नि वह सर्वव्यापी और सब संसार का आधार है। इस के वाद स्वामी जी मंत्र का प्रमाण देते हैं जैसे (तदेवाग्निः०) अर्थात् अग्नि, सूर्य्य, वायु आदि सब एक परमेश्वर के ही गुण नाम हैं। जैसे अग्नि शब्द के अर्थ परमेश्वर में नहीं घटते वैसे ही ऊपरके अर्थ भी नहीं लग सकते, सिवाय इस के जो (तदेवाग्नि०)पदभेद को विषय अर्थ से मिलावें तो स्वामीजीका अग्निशब्दकोपरमेश्वर अर्थमें मिलाना ऐसा असंभव होगा जैसे कहदेकि मनुष्य पशु है अथवा पशु मनुष्यहै॥

(अग्निर्होता कविः क्रतुः०) स्वामी जी कवि शब्द के अर्थ सर्वज्ञ के लेते हैंतथा सत्य का विनाशरहित। परन्तु निरुक्त में कवि का और ही अर्थ है और स्वामी जी भी जब मंत्र को शास्त्रसंबन्धि अर्थ में लेतें हैं। तो कई प्रकार के अर्थ करते हैं कदाचित् स्वामी जी का अर्थ मान भी ले तो वह उनके अभिप्राय को अग्नि ईश्वर का नाम है नहीं खोलता क्योंकि यह दस्तूर की बात है कि देवता की स्तुति करने में सब प्रकार के विशेषण लाते हैं॥

स्वा० जी—अब पण्डित जी प्रमाणों की परीक्षा पर बहुत भूले हैं क्योंकि मैं ने अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण विषय में वेद मंत्रों के अनेक प्रमाण मंत्रभाष्य के आरम्भ में लिखे हैं उनका विचार छोड़ कर मृग के समान आगे कूद कर चले गये हैं इस से मालूम होता है किपण्डित जी को मन्त्रों का अर्थ मालूम नहीं और विना इतनी विद्या के वे साधारण वा विशेष परीक्षा कैसे कर सकते हैं उन का यह भी लिखना ठीक नहीं कि इन प्रमाणों से स्वामी जी का अर्थ नहीं निकल सकता। अब विद्वान् लोग पंडित जी के लेख की परीक्षा करें अर्थात् वे लिखते हैं कि यह मालूम नहीं होता कि (इन्द्रं मित्रं०) इस मंत्र में "उसको" शब्दकिस के लिये आया है, इत्यादि, तथा निरुक्तकार कहता है कि वह भौतिक अग्नि के लिये आया है इत्यादि, सो पण्डित जी को जानना चाहिये कि विना ज्ञान वेदविद्या के उनकी परीक्षा करना बालकों का खेल नहीं इस ग्रन्थ में भी अग्निका पाठ दो वार है एक—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः॥
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

इस का अभिप्राय यह है कि अग्नि शब्द से दोनों अर्थों का ग्रहण होता है। अर्थात् भौतिक और परमेश्वर। तथा उसमें तीन आख्यात पद होने से तीनअन्वय होतेहैं अर्थात् अग्न्यादि नाम भौतिक अर्थ में और परमेश्वर अर्थ में भी दोअन्वयहोतेहैं॥

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निम् ।

अर्थात् एक शब्द से परब्रह्म को विद्वान् लोग, अथवा वेदमंत्र अग्न्यादि नामों से अनेक प्रकार की स्तुति करते हैं तथा यसका निरुक्त जो दूसरे पृष्ठ में लिख दिया है उसका भी अर्थ पण्डित जी ने नहीं जाना क्योंकि वहां भी—

उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते ।

इस का यह अर्थ है कि अग्नि नाम करके पूर्वोक्त प्रकार से उत्तर ज्योति गृहीत होते हैं अर्थात् भौतिक और परमेश्वर इन दो अर्थों का ग्रहण होता है तथा (इममेवाग्निं०) इत्यादि इन दोनों अर्थों के अभिप्राय में है क्योंकि विना पठनाभ्यास के कोई कैसा ही बुद्धिमान् क्यों न हो गूढ़ शब्दों का यथावत् अर्थ जानने में उसको कठिनता पड़ जाती है इस मंत्र का अभिप्राय मैंने अच्छी तरह वेदभाष्य में प्रकाशित कर दिया था तिस पर भी पण्डित जी न समझे बड़े आश्चर्य्य की बात है कि विद्या के अभिमानी होकर ऐसी भ्रान्ति में गिर पड़ते और उन प्रमाण मंत्रों के यथार्थ अर्थ को उलटा समझते हैं क्या यह हठ की बात नहीं है कि विद्वान् कहा कर बार२ यही कहते चले जाना कि अग्नि शब्द से परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता जैसे इस मंत्र के अर्थ में पण्डित जी भूल गये हैं वैसे ही (तदेवाग्नि०) जो इस में तैत्तिरीय आरण्यकका नाम लिखा उसके प्रकरण का अभिप्राय पण्डितजी ने ठीक २ नहीं जाना है क्योंकि वहां परमेश्वर का निरूपण और सृष्टिविद्यादि लिख लाई है जैसे वह परमेश्वर भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल में एक रस रहता है । अर्थात् जब २ जगत् हुआ था, है और होगा तब २ वह:—

तदक्षरे परमे व्योमन् ।

सर्वव्यापक आकाशवत् विनाश रहित परमेश्वर में स्थित होता है क्योंकि :-

येनावृतं खं च दिवं मही च० ।

इत्यादि जिस ने आकाश सूर्य्यादि लोक और पृथिव्यादियुक्त जगत् को अपनी व्याप्ति से आवृत कर रक्खा है ।

येन जीवान् व्यससर्ज भूम्याम् ।

जो कि जीवों को कर्मानुसार फलभोगने के लिये भूमि में जन्म देता है ॥

अतः परं नान्यदणीयसस्ति ।

जिस से सूक्ष्म वा बड़ा कोई पदार्थ नहीं है तथा जो सब से पर एक अद्वितीय अव्यक्त और अनन्तस्वरूपादि विशेषणयुक्त है ।

तदेवावर्त्तं तदु सत्यमाहुस्तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम् ।

वही एक यथार्थ नित्य एक चेतन तत्वमय है वही सत्य वही ब्रह्म तथा विद्वानों का उपास्य परमोत्कृष्ट इष्ट देवता है और (तदेवाग्नि०) अर्थात् वही परमेश्वर अग्न्यादि नामों का वाच्य है ।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे इत्यादि ।

जिस से सब कालचक्रादि पदार्थ उत्पन्न हुए हैं तथा—

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।

अर्थात् उस परमेश्वर का स्वरूप व्यक्त्ता से दृष्टि में नहीं आ सकता अर्थात् कोई उस को आंख से नहीं देख सकता किन्तु जो धार्मिक विद्वान् अपनी बुद्धि से अन्तर्यामी परमात्मा को आत्मा के बीच में जानते हैं वे ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं तथा जिस अनुवाक का पंडित जी ने नाम लिखा है उस का अभिप्राय और ही कुछ है अद्वैत शब्द का अर्थ उन की समझ में ठीक २ नहीं आया क्योंकि उन के मन में भ्रम होगा कि सिवाय परमेश्वर के जगत् में दूसरा पदार्थ कोई भी नहीं किन्तु परमेश्वर ही जगत्रूप बन गया है क्योंकि वे लिखते हैं कि तमाम ब्रह्माण्ड एक अंशमात्र है जिस से घोड़ा गौ और खटमल आदि निकले हैं इस से उन का अभिप्राय स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रह्म ही सब जगत् बन गया है यह भ्रान्ति उन को वेदादि शास्त्रों के ठीक २ न जानने के कारण हुई है क्योंकि देखो अद्वैतशब्द परमेश्वर का विशेषण है कि जैसे एक २ मनुष्यादि जाति जगत् में अनेक व्यक्तिमय है वैसा परमेश्वर नहीं किन्तु वह तो सब प्रकार से एकमात्र ही है इसका उत्तर भूमिका अङ्क ४ पृष्ठ ९० की पंक्ति २० में मिलता है जैसे—

न द्वितीयो न तृतीयः ।

इत्यादि में देख लेनां तथा—

पुरुष एवेदंसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥

इत्यादि मंत्रोंका अर्थ भूमिका अंक ५ के ११८पृष्ठमें (सहस्रशीर्षा०)इत्यादि की व्याख्या से ले कर अंक ६ के १३४ पृष्ठ की समाप्ति पर्यन्त देखने से इस का ठीक उत्तर मिल जायगा । और—

अग्निर्होता कविः क्रतुः० ॥

इस के अर्थ विषय में जो पंडित जी को शंका हुई है कि अग्नि शब्द से ईश्वर कैसे लिया जाता है तो निरुक्त में कवि शब्द का अर्थ क्रान्तदर्शन अर्थात् सब को

जानने वाला है सो सिवाय परमेश्वर के भौतिक में कभी नहीं घट सकता क्योंकि भौतिक अग्नि जड़ है इस मंत्रका अर्थ वेदभाष्य के अंक १ पृष्ठ १६ में देख लेना (क्रतुः) सब जगत् का करने वाला (सत्यश्चित्रश्रवस्तमः) इत्यादि पदों का अर्थ वहीं देख लेना। जब आग्रह छोड़ के विद्या की आंख से मनुष्य देखता है तब उस को सत्यासत्य का ज्ञान यथावत् होता है और जब इस प्रकार की ठीक २ विद्या ही नहीं तो उस को सत्यासत्य का विवेक कभी नहीं हो सकता तथा निघं० अ० ३ खं १५ में मेधावी का नाम कवि लिखा है सो परमेश्वर के सिवाय भौतिक जड़ अग्नि में कभी नहीं घट सकता तथा यजुर्वेद अ० ४० मं ८०

सपर्य्यगाच्छुक्र०।

इस मंत्रमें कविर्मनीषी इत्यादि लिखा है यहां भी कवि नाम सिवाय परमेश्वर के भौतिक जड़ अग्नि में कभी नहीं घट सकता। और ये सब प्रमाण मेरे अभिप्राय को ठीक २ सिद्ध करते हैं तथा पंडित जी का विशेष लेख मेरे लेख की परीक्षा तो नहीं कर सकता किन्तु उन की न्यूनविद्या की परीक्षा अवश्य कराता है॥

पं० महेश० —(ब्रह्म ह्यग्निः) जो कि आगे की संस्कृत में आता है। जैसे

अग्ने महां असि ब्राह्मण भारतेति०॥

इस में अग्नि को ब्राह्मण कहा है क्योंकि अग्नि इस नियम से—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

ब्रह्म है और भारत इस लिये कहते हैं कि वह चढ़ाया हुआ पदार्थ देवताओं को पहुंचाता है शत० कां० १ ॥ अ० ४ ॥ ब्रा० ४ ० २ इस से मालूम होता है कि यह अग्नि शब्द का अर्थ नहीं किन्तु ब्राह्मण और भारत, अग्नि में लगाये हैं

आत्मा वा अग्निः॥

यह श० कां० ७। अ०२।॥ ब्रा० ३ । कं० ४। के अगले प्रमाण में आया है जैसे।

यद्वेव चिते गार्हपत्येऽचित आह्वनीये राजानं क्रीणाति। आत्मा वा अग्निः। प्राणः सोमः आत्मानं ततः प्राणं मध्यतो दधाति।

अर्थात् बाद रखने गार्हपत्य और पूर्व रखने अग्नि के होम करने वाला सोमलता को मोल लेता है। क्योंकि आत्मा अग्नि है तथा प्राण नाम सोम का है और आत्मा के बीचमें प्राण रहते हैं॥ यहां आत्मा का अर्थ ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्यके जीव से मुराद है तथा अग्नि का नाम भी आत्मा अलंकार रूप से है

इसी लिये सोमलता प्राण का अर्थ लिया है अग्नि का अर्थ आत्मा नहीं है जैसे कि सोमलता का अर्थ प्राण है । ११ भी शतपथ ब्राह्मण से लिये गये हैं जिस में इस बात का नाम नहीं है कि अग्नि का अर्थ ईश्वर माना जावे किन्तु जहां से ये प्रमाण रक्खे हैं वे बराबर होमादि का विधान करते हैं और वे निस्संदेह केवल भौतिक अग्नि का अर्थ देते हैं दूसरा नहीं । ऐतरेयोपनिषद् के हैं अर्थात् १८ प्रमाण में ईश्वर का वर्णन प्राण, अग्नि, पञ्चवायु आदि से तथा १३ में ईशान संभू, भव, रुद्र आदि ये सब अर्थ उसी नियम पर हैं कि जिस का कथन कर चुके सब वस्तु ब्रह्म है इन प्रमाणों से भी स्वामी जी के कथन की पुष्टता नहीं होती १२ प्रमाण में अग्नि कहीं नहीं आया है । सिवाय (अग्निरिवाग्निना पिहितः) ब्रह्म को अग्नि शब्द के तुल्य करने से कि जो (अग्निरिव) से उत्पन्न होता है साफ मालूम होता है कि अग्नि और ईश्वर में बड़ा भेद है परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि स्वामी जी इसी को अपना प्रमाण मानते हैं १४ ऐतरेय ब्रा० और शत० ब्राह्म० के हैं जो कह दिये गये॥

स्वा० जी—इस के आगे जो २ प्रमाण मैंने शतपथ के इस विषय में क्रम से धरे हैं उन को तो देखते विचारते नहीं परन्तु इधर उधर घूमते हैं विद्वानों का यह काम है कि उलट पुलट के आगे का पीछे और पीछे का आगे कर देवें (ब्रह्म ह्यग्निः) इस वचन से स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रह्म का नाम अग्नि है तथा—

अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारतेति ।

इस वचन के भी दूसरे अर्थ हैं क्योंकि वहां (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) यह नियम कहीं नहीं लिखा ।

ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मण इति भारतेत्येष हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्मादाह भारतोऽग्निरित्याहुरेष उवा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्मादेवाह भारतेति ।

इस कण्डिका का अर्थ पूर्वापर संबन्ध से पण्डित जी न समझे क्योंकि इस का अर्थ यह है कि हे अग्ने परमेश्वर आप (महान्) सब से बड़े हैं और बड़े होने से ब्राह्मण तथा सब प्रजा को धारण करने से भारत कहाते हैं और विद्वानों के लिये सब उत्तम पदार्थों का धारण करते हैं इस लिये भी आप का नाम भारत है । इस कंडिका के अर्थ से यथावत् सिद्ध होता है कि अग्नि भारत और ब्राह्मण ये नाम परमेश्वर के हैं और जो—

आत्मा वा अग्निः ।

इस में अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक अग्नि का ग्रहण है इस से दोष नहीं आ सकता यही मेरा अभिप्राय है इस को पण्डित जी ठीक २ नहीं समझे और

तस्मादयमात्मन् प्राणो मध्यत: ॥

इस का यह अर्थ है कि (अयम्) यह होम करने वाला वा परमेश्वर का उपासक सब के बलकारक प्राण को शरीर में वा मोक्षस्वरूप अन्तर्यामी ब्रह्म के बीच में धारण करता है क्योंकि सब के प्राण सामान्य से परमेश्वर की सत्ता में ठहर रहे हैं इस से सब का आत्मा प्राण के बीच में है और मनुष्य के प्राण की अपेक्षा व्यवहार दशा में है परन्तु—

स उ प्राणस्य प्राण: ॥

इस केनोपनिषद् के विधान से परमेश्वर का नाम भी प्राण है इस से यहां आत्मन् शब्द से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण है। और आत्मा का नाम अग्नि अलंकार से नहीं किन्तु संज्ञासंज्ञि संबन्ध से है क्योंकि उस प्रकरण में वैसे ही अग्निनाम से पूर्वोक्त दोनों अर्थ सिद्ध हैं और यज्ञादि कर्मों में परमेश्वर का ग्रहण सामान्य से आता है। सोम का नाम प्राण शतपथ में इसलिये है कि वह प्राण अर्थात् बल बढ़ाने का निमित्त है परमेश्वर का नाम सोम है सो पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मण के प्रकरण में सिद्ध है और जहां २ से प्रमाण लिखे हैं वहां २ सर्वत्र होमादि क्रिया उपासना और परमेश्वर का ग्रहण है परन्तु पण्डित जी लिखते हैं कि अग्नि नाम से भौतिक अर्थ का ही ग्रहण होता है यह केवल उन का आग्रह है इस का उत्तर पूर्व भी हो चुका। और—

प्राणोऽग्नि: परमात्मेति ।

यह मैत्युपनिषद् का प्रमाण भी यथावत् परमेश्वरार्थ को कहता है प्राण, अग्नि, परमात्मा, ये तीनों नाम एकार्थवाची हैं तथा आत्मा और ईशानादि भी संज्ञासंज्ञि संबन्ध में स्पष्ट हैं और सब वस्तु ब्रह्म है इस का उत्तर मैं पूर्व दे चुका हूं। पण्डित जी वेदादिशास्त्रों को न जान कर भ्रम से जगत् को ब्रह्म मानते हैं इस प्रकरण में प्राण, अग्नि और परमात्मा पर्यायवाचक लिखे हैं। उन का अर्थ विना विचारे कभी नहीं मालूम हो सकता क्योंकि (पञ्चवायु:) इस शब्द से पण्डित जी को भ्रम हुआ है इस में केवल व्याकरण का कम अभ्यास कारण है क्योंकि जिस में पांच वायु स्थित हों सो (पञ्चवायु:) परमेश्वर कहाता है और इस प्रकरण में (विश्वभुक्) आदि शब्द भी हैं इस से दोनों अर्थ वहां लिये जाते हैं॥

य एष तपति अग्निरिवाग्निना पिहित:। एक वा जिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्य: सर्वभूतेभ्योऽभयंदत्वाऽऽरण्यं गत्वाऽथ-बहि: कृत्वेन्द्रियार्थान् स्वाच्छरीरादुपलभेतैनमिति विश्वरूपं

हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तं सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः। तस्माद्वा एष उभयात्मैवं विद्वात्मन्येवाभिध्यायत्यात्मन्येव यजतीति ध्यानम्।

जो परमेश्वर अग्नि और सूर्य्य के समान सर्वत्र तप रहा है जिस को सब विद्वान् लोग जानने की इच्छा करते और खोजते हैं तथा सब प्राणियों को अभयदान दे के विषयों में इन्द्रियों को रोक के एकान्त देश में समाधिस्थ हो कर इसी मनुष्य-शरीर में जिस को प्राप्त होते हैं वह परमेश्वर विश्वरूप है अर्थात् जिसका स्वरूप विश्व में व्याप्त हो रहा है और सब पापों को नाश करने वाला उसी से वेद प्रकाशित हुए हैं वह सब विश्व का परम अयन, ज्योतिःस्वरूप एक अर्थात् अद्वितीय, सूर्य्यादि को तपाने वाला असंख्यात ज्योतियुक्त अर्थात् सब विश्वमें असंख्यात गुण और सामर्थ्य से सह वर्त्तमान सब का प्राण अर्थात् सब प्रजाओं के बीच में ज्ञान स्वरूप से उदित और चराचर जगत् का आत्मा है उस परमेश्वर को जो पुरुष उभयात्मा अर्थात् अन्तर्यामी और परमेश्वर की आत्मा परमेश्वर ही को जानने वाला तथा अपने आत्मा में जगदीश्वर का अभिध्यान और समाधियोग से उस का पूजन करता है वही मुक्ति को प्राप्त होता है इसी प्रकार से—

उपलभेतैनमिति।

मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं क्योंकि पण्डित जीने इस प्रकरण का अर्थ कुछ भी नहीं जाना इसी से विरुद्ध लेख किया इस प्रकार से यह प्रकरण मेरे लेख का मण्डन और पण्डित जी के लेख का खण्डनकरता है भौतिक अग्निऔर परमेश्वर में बड़ा भेद है यह मैंभी जानता औरमानता हूं परन्तु पण्डित जीने मेरे लेख में उन दोनों का भेद कुछ भी नहीं समझा यह बड़ा आश्चर्य्य है॥

पं० महेश०—(अग्निः पवित्रमुच्यते) पवित्र शब्द की खराबी लगीहै कि उसको पवित्र शब्द के अर्थ में लिया है। १८ मनु का है। इस स्थान में मैं कुछ अवश्य कहना चाहता हूं कि एक बड़ा भाग मनु का जो कि हिंदु धर्म का बयान करता है स्वामी जी उसके लौट डालने को अपनी ओर प्रेरणा अर्थात् रसूली समझते हैं। इसलिये मनु के प्रमाण रखने में उन की चतुराई नहीं समझी जा सकती। और धरा तो धरा करो परन्तु उससे भी सिद्ध नहीं हो सकता कि अग्नि ईश्वर का वाची है। जैसे सब दृष्ट अदृष्ट सृष्टि को परमेश्वर में स्थित देखना चाहिये आत्मा सर्व देवता हैं सब आत्मा में स्थित हो रहे हैं कोई कहते हैं कि वह अग्नि है कोई मनुअर्थात् प्रजापति कोई इन्द्र कोई प्राण और कोई२ उसको नित्य

ब्रह्म कर के समझते हैं । वह मनुष्य जो परमात्मा को सब में व्यापक देखता है स्वीकार करता है कि सब समान हैं वह परमेश्वर में लवलीन हो जाता है ।

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः । आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् । एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

अब देखना चाहिये कि ये सब मंत्रों के प्रमाण स्वामी जी ने अग्नि शब्द के परमेश्वरार्थ में सिद्ध करने को दिये हैं सो कैसे वृथा हैं ॥

स्वा० जी—(अग्निः पवित्रमुच्यते) इस का उत्तर हम देचुके और मनु के प्रमाण के विषय में पण्डित जी का लेख विपरीत है क्योंकि जो आर्य्यों का वेदोक्त सनातन धर्म है उस को पण्डित जी के समान विचार करने वाले मनुष्यों ने उलटा दिया है उस उलटे मार्ग को उलटा कर पूर्वोक्त सत्यधर्म का स्थापन मैं किया चाहता हूं । इस से मेरी चतुराई तो ठीक हो सकती है परन्तु पण्डित जी की चतुराई ठीक नहीं समझी जाती क्योंकि मनु के प्रमाण का अभिप्राय पंडित जी ने कुछ भी नहीं समझा ।

प्रशासितारं सर्वेषां० ।

इसपूर्वोक्त से पुरुष अर्थात् परमेश्वर की अनुवृत्ति—

एतमेके वदन्त्यग्निम्० ।

इस श्लोक में बराबर आती है तथा—

अपरे ब्रह्म शाश्वतम् ।

इस वचन से भी ठीक २ निश्चय है जिस का नाम परमेश्वर और ब्रह्म है । उसी के अग्न्यादि नाम भी हैं । इस सुगम बात को भी पंडित जी ने नहीं समझा यह बड़े आश्चर्य की बात है और—

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः । सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ १ ॥ आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् । आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ २ ॥ एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना । स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ ३ ॥

इन स्लोकों से पण्डित जी ने ऐसा अर्थ जाना है कि परमेश्वर ही सब देवता हैं और सब जगत् परमेश्वर में स्थित है यह पण्डित जी का जानना बिलकुल मिथ्या है क्योंकि इन स्लोकों से इस अर्थ को नहीं सिद्ध करते (समाहितः) इस पद को अशुद्ध करके (समाहितम्) यह पण्डित जी ने लिखा है । जो सावधान पुरुष असत्कारण और सत्कार्य्यरूप जगत् को आत्मा अर्थात् सर्वव्यापक परमेश्वर में देखे वह कभी अपने मन को अधर्मयुक्त नहीं कर सकता क्योंकि वह परमेश्व को सर्वज्ञ जानता है ।। १ ॥ आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही सब व्यवहार के पूर्वोक्त देवताओं का रचने वाला और जिस में सब जगत् स्थित है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव तथा सब जीवों को पाप पुण्य के फलों का देने हारा है ॥ २ ॥ इसी प्रकार समाधियोग से जो मनुष्य सब प्राणियों में परमेश्वर को देखता है वह सब को अपने आत्मा के समान प्रेमभाव से देखता है । वही परमपद जो ब्रह्म परमात्मा है उस को यथावत् प्राप्त हो के सदा आनन्द को प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ अब देखना चाहिये मेरे वेदभाष्य पर विना समझे जो पंडित जीने तर्क लिखे हैं वे सब मिथ्या हैं क्या इस बात को सब सज्जन लोग ध्यान देके न देख लेंगे ।।

पं० महेश०—फिर स्वामी जी लिखते हैं कि अग्नि परमेश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् न्यायकारी पिता पुत्र के समान मनुष्य को उपदेश करता है कि हे जीवतू इस प्रकार कहो कि मैं अग्नि परमेश्वर की स्तुति करता हूं तिस पर जीव कहता है कि मैं अग्ने ईश्वर की स्तुति करताहूं जो कि सर्वज्ञ,शुद्ध, अविनाशी, अजन्मा, आदि अन्त रहित , सर्वव्यापक, सृष्टिकर्त्ता और स्वयंप्रकाशस्वरूप है दूसरे को नहीं इस विषय में स्वामी जी कोई प्रमाण नहीं देते हैं । संसार स्वामी जी को इस प्रेरणा के बताने का ऋणी है । परन्तु उनको ऐसी मधुरता से अपने भाष्य में लेख करना उचित नहीं । अब (अग्निमीडे़०) पुरोहित शब्द को देखना चाहिये स्वामी जी अर्थ करते हैं वह जो जीवों का पालन और रक्षा करता तथा हर एक को उत्पन्न करके सत्य विद्या का उपदेश करता और अपने उपासकों के हृदय में प्रेम भक्ति का प्रकाश करता है । स्वामी जी हित शब्द को डुधाञ् धातु से बनाते हैं जिस से आगे क्त है इस में वह निरुक्त का प्रमाण धरते हैं:—

पुरोहितः पुर एनन्दधाति० ।

यह नहीं समझा जा सकता कि स्वामी जी पुरोहित शब्द से अपने अर्थ कैसे निकालते हैं व्याकरण की रीति से इस हित शब्द के अर्थ आगे रक्खे के हैं स्वामी जी लेते हैं कि जो कुछ रखता है । व्याकरण की रीति से हित शब्द डुधाञ् धातु का कर्माधार गौणक्रिया है सकर्मक गौण क्रिया नहीं स्वामी जी उसे व्याकरण के

सूत्र सिद्ध करदें परन्तु इस बात का दावा किया जा सकता है कि हित शब्द किसी उदाहरण से सकर्मक गौण क्रिया सिद्ध नहीं कर सकते ।

स्वा० जी—जो अग्नि नाम परमेश्वर का लिखा है उस के प्रमाण उसी मंत्र के भाष्य में यथावत् लिखे हैं वहां ध्यान दे कर देखने से मालूम हो जायगे। तथा पुरोहित शब्द पर जो मैं ने प्रमाण वा उसका अर्थ लिखा है सो भी वहां देखने से ठीक २ मालूम होगा कि जैसा व्याकरण और निरुक्तादि से सिद्ध है । पण्डित जी पुरोहित शब्द को कर्मवाच्य कृदन्त मानते हैं किन्तु कर्तृवाच्य कृदन्त नहीं यह उनका कथन कैसा है कि जैसा प्रमत्तगीत अर्थात् किसीने किसी से प्रयाग का मार्ग पूछा उसने उत्तर दिया कि वह द्वारिका का मार्ग सूधा जाता है। पुरोहित शब्द के साधुत्व में यहां व्याकरण का यह सूत्र उपयोगी है—

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च । अष्टा० अ० ३। पा० ४ सू० ७१।

इस से आदिकर्मविषयक जो क्त प्रत्यय है वह कर्त्ता में सिद्ध है क्योंकि सकल पदार्थों का उत्पादन और विज्ञानादि दान अर्थात् वेदद्वारा सकलपदार्थविज्ञान करा देना यह परमेश्वर का आदि कर्म है इस के न होने से सत्यासत्य का विवेक और विवेक के न होने से परमेश्वर को जानना और परमेश्वर के न होने से उस की भक्ति होना ये सब परस्पर असंभव है । निरुक्तकार ने भी पुरोहित शब्द में डुधाञ् धातु से कर्त्ता में क्त प्रत्यय मान कर परमेश्वर का ग्रहण किया है वहां अन्वयादेश इसी अभिप्राय में है कि परमेश्वर सब जगत् को उत्पन्न करके उस का धारण और पोषण करता है उसी परमेश्वर को संसारी जन इष्ट देव मान कर अपने आत्माओं में धारण करते हैं देखिये वेदों में अन्यत्र भी—

विश्वस्मा उग्रकर्मणे पुरोहितः । ऋ० मं० १ । सू० ५५।मं०३।

यह उदाहरण भी प्रत्यक्ष है। और जो पण्डितजी (यद्दे वापिः०) इस मंत्रमें पुराणकी झूठी आख्यायिका कहते हैं । उनकीबड़ी भूल है क्योंकि उनको इस मंत्र के अर्थ की खबर भी नहीं है और जो इस केऊपर निरुक्त लिखा है उसकाभी ठीक २ अर्थ नहीं जानते। क्योंकि पण्डित जी ने शंतन शब्द से भीष्म जी का पितासमझ लिया है जो शंतनु शब्दका निरुक्त में अर्थ लिखा है उस की खबर भी नहीं है ।

शंतनुः शंतनोस्त्विति वा शमस्मै तन्वा अस्त्विति वा ।

जिस का यह अर्थ है कि (शं) कल्याणयुक्त तनु शरीर होता है जिस से वह परमेश्वर शंतनु कहाता है और जिस शरीर से जीव कल्याण को प्राप्त होता है इस लिये उस जीव का नाम भी शंतनु है इस से पण्डित जी ने इस में जो कथा लिखी सो सब व्यर्थ है ॥ ११ ॥

अब यज्ञ शब्द पर पण्डित जी लिखते हैं कि यज्ञ और देव शब्दको मिला करके लिया है सो बात नहींहै क्योंकि यह लेख और यंत्रालय का दोष है(यज्ञस्य) यह शैषिकी षष्ठी है पुरोहित, देव, ऋत्विक्, होता और रत्नधातम ये सब यज्ञ के सम्बन्धी हैं और अग्निके विशेषण हैं। यज्ञ शब्दका अर्थ जैसा भाष्य में लिया है वैसा समझ लेना चाहिये और निरुक्तकार भी वैसा ही अर्थ लेते हैं क्योंकि प्रख्यात अर्थात् प्रसिद्ध जो तीन प्रकार का वेदभाष्य में यज्ञ लिखा है वह निरुक्त-कार के प्रमाण से युक्तहै और जो गो शब्दका दृष्टान्त दिया सो भी नहीं घट सकता क्योंकि प्रकरण, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति, तात्पर्य्य, संज्ञा, आदि कारणों से शब्दका अर्थ लिया जाता है और जो देव शब्दके विषय में पंडितजी ने लिखा है कि स्वामीजी ने जय की इच्छा करने वाले कहां से वा कैसे लिये हैं इस का उत्तर यह है कि दिवु का धात्वर्थ विजिगीषा भी है और जो यज्ञ में विघ्न-कारक दुष्ट प्राणी और कामक्रोधादि शत्रु हैं उन का जीतनेवाला वही परमेश्वर देव है क्योंकि विविध यज्ञ का रक्षक इष्ट और पूज्यदेव परमेश्वर हीहै ॥

पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च।

इस के अर्थ में पंडितजी की बहुत भूल है क्योंकि निरुक्तकार कहते हैं कि हमने पुरोहित और यज्ञ शब्दकी पूर्व व्याख्या करदी है और पंडितजी कहते हैं कि निरुक्तके तीसरे अध्याय के १९ खण्ड में यज्ञ शब्दको व्याकरण से सिद्ध कि-या है सो झूंठा है क्योंकि वहां अर्थ की निरुक्तिमात्र कही है सिद्धि कुछ भी नहीं और जो निघण्टु के अ० ३ ख० १७ प्रमाण से यज्ञ के अनेक नाम लिखे हैं कि बहुधा वे होमादिक के विधान में आते हैं और स्वामीजी के अर्थों में उनमें सेएक भी नहीं मिलता यह बात पंडितजी की भ्रांतियुक्त है क्योंकि उन १५ नामों का अर्थ मेरे अर्थ के साथबराबर मिलता है क्योंकि मैंने यज्ञ शब्दका अर्थ त्रिविध लिया है इस के साथ उन को मिला कर देखो और पंडितजी निरुक्तकार के विषय में कहते हैं कि देव शब्द के अर्थ देनेवाला प्रकाश करनेवाला और स्वर्ग में रहनेवाला ये तीन ही हैं इस देव शब्द विषयक निरुक्त का अर्थ भूमिका के ती-सरे अङ्कके ६२ पृष्ठ की ५ पंक्तिसे देख लेना चाहिये। निरुक्त कार—

यो देवः सा देवता०

इत्यादि जो पांच अर्थ लेते हैं उन को पंडितजी ठीक ठीक नहीं समझे कि निरुक्तकार कितने अर्थ लेते हैं इसमें पण्डितजी की परीक्षा हुई कि वे निरुक्त-कार का अभिप्राय ठीक नहीं जानते हैं॥

पं० महेश०-इसी प्रकार स्वामीजी ऋत्विजं, ० होतारम्, और रत्नधातमं शब्दों के कई २ अर्थ अद्भुत रीति से करते हैं परन्तु क्योंकि उनकी भूल यज्ञस्य, देवं शब्दों में सिद्ध कर चुका हूं। इसलिये विशेष लिखना वृथा है (स्वा० जी) (ऋत्विजं०) का अर्थ करते हैं कि जिसकी सब ऋतुओं में पूजा की जाय परन्तु सब के प्रामाणिक अर्थ इस शब्दके चढ़ाने वाले अर्थात् भेट करने वाले के हैं और न कि जिस को भेट चढ़ाई जाय यह बात भी निरुक्तकी साक्षी से सिद्ध है कि जिस का स्वामीजी भी प्रमाण मानते हैं॥

स्वा०जी-अब पंडितजी ऋत्विक् शब्द पर लेख करते हैं सो भी ठीक२ नहीं वे समझे

कृत्ल्युटो बहुलम् ।

इस वार्तिक का अर्थ भी नहीं समझे क्योंकि इस वार्तिक में कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्म में भी उन शब्दों में माने जाते हैं जोकि वेदादि सत्य शास्त्रों में प्रयुक्त हों इसलिये इस वेदभाष्य में जो इस का अर्थ लिखा गया है सो व्याकरण से सिद्ध है परन्तु पंडितजी ऋत्विज् शब्द का अर्थ नहीं समझे॥

पं॰ महेश०- स्वामीजी (होतारं) शब्दके जो कई अर्थ करते हैं उन में से एक (आधातारं) अर्थात् ग्रहण करनेवाले के हैं यह भिन्नपद है कि जिन से यह अर्थ लिये जाते हैं (होतारं) जो(हु) से बनता है जिस के अर्थ अगले नियम धातुपाठ के से (अदन) होते हैं और इस ग्रन्थ को स्वामीजी मानते हैं जैसे॥

हुदानादनयोरादानेचेत्येके ।

(हु)धातु के अर्थ दान अदन और किसीके मतमें आदान अर्थात् ग्रहण करना अदन का अर्थ ग्रहण वा आदान अर्थ ग्रहण करना है। वेदान्तदर्शन का एक सूत्र है।

अत्ता चराचरग्रहणात् ।

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि अदन का अर्थ ग्रहण करना है। और फिर धातुपाठ के उसी नियम से सिद्ध होता है कि अदनशब्दजो उस में आया है उस के अर्थ आदान के नहीं हो सकते किन्तु उस के अर्थ कुछ और ही हैं नहीं तो उक्तनियम के अनुसार (आदाने चेत्येके) कैसे बन सकता। किसी के मत में हु धातु का अर्थ भी आदान होता है इस से मालूम हो गया कि धातुपाठकार ने अदन आदान अर्थ में लाने का कभी ख्याल भी नहीं किया। अर्थात् उस अर्थ में कि जिस में स्वामीजी ने लिया है! इस सूत्र में कदाचित् स्वामीजी इस बात को सिद्ध करसकें कि अदन आदान के अर्थ में आता है तो यह वेदान्त दर्शन का सूत्र ही हो यह माना फिर भी वह धातुपाठ के नियम की हस्ति में नहीं

लग सकता । तथा पण्डितजी के प्रमाण की पुष्टि कभी नहीं कर सकता । अब इसलिये इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि वेदान्त सूत्र भी जिस को कि स्वामीजी मानते हैं अदन को आदान अर्थ में सिद्ध नहीं कर सकता है यह तमाशे की बात है कि स्वामीजी ने हु धातु से अर्थ लेने की अनेक युक्तियां घूम २ कीं परन्तु न मालूम स्वामीजी होतार शब्द का अर्थ ग्रहण करने वा लेने में ऐसे अधीर क्यों हो गये । निस्सन्देह ग्रहण करने का जो गुण है सो ईश्वर में कभी नहीं लग सकता । अब मैं स्वामीजी के एक ईश्वर प्रतिपादन विषय की परीक्षा कर चुका कि जिस को पढ़नेवाले समझ लेंगे ॥

स्वामी जी—अब होता शब्दपर पण्डितजी के लेख की परीक्षा करता हूं पण्डित जी को यह शंका हुई है कि अदन का अर्थ जब ग्रहण लेंगे तब आदान व्यर्थ होजायगा परन्तु इस में यह बात समझी जाय कि जब होता शब्द परमेश्वर का विशेषण है तब क्या किसी मनुष्य को शंका न होगी कि परमेश्वर भी अत्ता होने वाला होने से जगत् का भक्षणकारक होगा इस की निवृत्ति के लिये आदान का अर्थ धारण किया है जो इस के तीन अर्थ हैं उन में से प्रथम अर्थ को ले कर होता शब्दके अर्थ ईश्वर को जगत् का भक्षण करनेवाला कोई मनुष्य न माने क्योंकि ईश्वर में यह अर्थ नहीं घट सकता । जो निराकार और सर्वव्यापक है वह भक्षणादि कैसे कर सकता है हां धारण शक्ति से व्यापक होके ग्रहण अर्थात् धारण तो कर रहा है । इसलिये इस शंका का निवारण इस अर्थ के बिना नहीं हो सकता। और जो पंडितजी ने लिखा कि धातुपाठ के कर्त्ता का यह अभिप्राय नहीं है सो भी पं० जी की समझ उलटी है क्योंकि जब (हु) धातु का केवल ईश्वरार्थ के साथ ही प्रयोग हो और अन्यत्र न हो तब यह दोष (देवदत्तो भोजनं जुहोत्यत्तीत्यर्थः) ऐसे वाक्य में (अदन) शब्दभक्षण के अर्थ में ही आता है। इस अभिप्राय से पाणिनिमुनिने (हु) धातु तीन अर्थों में लिखा है (आदाने चेत्येके) इस के कहने से स्पष्ट मालूम होता है कि धातुपाठकार के मत में (हु) धातु दान और अदन इन दोनों अर्थों में है। और अदन अर्थ से भक्षण तथा आदान दोनों ले लिये जावेंगे । परन्तु कोई आचार्य आदान को पृथक् मानते हैं । धातुपाठकार नहीं। इसी लिये आदानअर्थ का पृथक् ग्रहण किया है । इससे जानलो धातुपाठकार का यह ध्यान होता तो स्वयं दान और अदन में आदान का पाठ क्यों नहीं करलेते । इस से धातुपाठ की वृत्ति में ठीक २ मेरा अभिप्राय मिलता और मेरे ही अर्थ की पुष्टि करता है। पं० जी की नहीं । इसीप्रकार वेदान्त का सूत्र भी मेरे अर्थ की पुष्टि करता है । पण्डितजी की कुछ भी नहीं क्योंकि (अत्ता) शब्दको ग्रहण करनेवाले के अर्थ में वेदान्तसूत्रकार का अभिप्राय है ।

(आदान) शब्द के अर्थ के लिये नहीं क्योंकि आदान शब्दतो स्वयं ग्रहण करने अर्थ में है इसलिये इस सूत्र आदि प्रमाणों के बिना (अत्ता) शब्द को ग्रहणार्थ में कोई कभी नहीं ला सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पं० जी अपनी निर्मूल बात को समूल करने के लिये बहुत से यत्न करते हैं परन्तु क्या झूंठा सच्चा और सच्चा झूंठा कभी हो सकता है। इतने ही लेख से पण्डित जी की विद्या की परीक्षा विद्वान् लोग करलेवें। और पण्डित महेशन्यायरत्नजी कीसंस्कृत में विद्वत्ता कितनी है इस को समझ लेवें कि इन्होंने क्या केवल विद्याहीन पौराणिक लोगों को वेदार्थ विरुद्धटीका और वैसेही अंग्रेजी में जो वेदोंपर मूलार्थ विरुद्ध उलटे तरज में हैं उनके सिवाय ब्रह्माजी से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के किये वेदोंके व्याख्यान ग्रंथों को कुछभी कभीदेखा वा समझा है नहींतो ऐसी व्यर्थ कल्पना क्योंकरतेहां मैं कह सकता हूं कि:-

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किरातः करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाः॥

चोर कोटपालको दण्डे अर्थात् जो सच्चे को झूंठा दोष लगाते हैं। वे ऐसे दृष्टांत के योग्य होते हैं कि जो जिस के उत्तम गुण नहीं जानता। वह उस की निन्दा निरन्तर करता है। जैसे कोई जङ्गलीमनुष्य गजमुक्ताओं को हाथ में लेकर उनको छोड़ के घुंघुचीका हार बनाकर गले में पहन कर फूला २ फिरे वैसे जिन्होंने मेरे बनाये भाष्य पर विरुद्ध बात लिखी हैं क्या इस पत्र को जो २ बुद्धिमान् लोग देखेंगे वे जैसी उन की पण्डिताई की खंडबंड दशाको न जान लेंगे परन्तु मैं यह प्रसिद्ध विज्ञापन देता हूं कि ग्रीफिथ साहब आदि अंग्रेज पं० गुरुप्रसाद और महेशचन्द्र न्यायरत्नजी और मैं कभी संमुख बैठ कर वेदविषय में वार्त्तालाप करें तब सब को विदित हो जावे कि इन विरुद्धवादियों को वेद के एक मूलमंत्र का भी अर्थ ठीक२ नहीं आता यह बात सबको विदितहोजावे मैं चाहता हूं कि ये लोग मेरे पास आवें वा मुझको अपने पास बुलावें तो ठीक२विद्या और अविद्या का निश्चय होजावे कि कौन पुरुष वेदों को यथार्थ जानता है और कौन नहीं क्योंकि:—

विद्यादम्भः क्षणस्थायी

सब का दम्भ कुछदिन चलताजाता परन्तु विद्याका दम्भ क्षणमात्रमें छूटजाता है।

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृतशंकासमाधानयुक्तपत्रं पूर्तिमगात्॥ संवत् १९३४ कार्तिक शुक्ला २॥

ओ३म् ।

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय ।

अथ

गोकरुणानिधिः ।

—०*०—

स्वामिदयानन्दसरस्वतीनिर्मितः ।

प्रयाग

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

अनेक सत्पुरुषों की सम्मति के अनुसार आर्यभाषा में बनाया है ।

गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों के सुख के लिये ।

इस के अनुसार वर्त्तमान करने से संसार का बड़ा उपकार है ।

संवत् १९४३ आषाढ

तीसरीवार २००० छापा गया ।

मूल्य /)॥



ओ३म्

नमोनमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय ॥

गोकरुणानिधिः ॥

—:०*०:—

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो अस्तु द्विपदे शं
चतुष्पदे ॥ य० अ० ३६ । मं० ८ ॥

तनोतु सर्वेश्वर उत्तमम्बलं गवादिरक्षां विविधं दयेरितः ।
अशेषविघ्नानि निहत्य नः प्रभुः सहायकारी विदधातु गोहितम् ॥ १ ॥
ये गोसुखं सम्यगुशन्ति धीरास्ते धर्म्मजं सौख्यमथाददन्ते ॥
क्रूरा नराः पापरता न यन्ति प्रज्ञाविहीनाः पशुहिंसकास्तत् ॥ २ ॥

भूमिका ॥

वे धर्मात्मा विद्वान् लोग धन्य हैं जो ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव अभिप्राय सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण और आप्तों के आचार से अविरुद्ध चल के सब संसार को सुख पहुंचाते हैं, और शोक है उन पर जो कि इन से विरुद्ध स्वार्थी दयाहीन हो कर जगत् में हानि करने के लिये वर्त्तमान हैं। पूजनीय जन वे हैं कि जो अपनी हानि होती हो तो भी सब के हित के करने में अपना तन मन धन लगाते हैं। और तिरस्करणीय वे हैं जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रह कर सब के सुखों का नाश करते हैं, ऐसा सृष्टि में कौन मनुष्य होगा जो सुख और दुःख को स्वयं न मानता हो, क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है कि जिस के गले को काटे वा रक्षा करे वह दुःख और सुख का अनुभव न करे ? जब सब को लाभ और

सुख ही में प्रसन्नता है तो विना अपराध किसी प्राणी का प्राणवियोग करके अपना पोषण करना यह सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न होवे ? सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों के आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि जिस से ये सब दया और न्याययुक्त हो कर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें, और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का विनाश न करें कि जिस से दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनन्द में रहें, इस ग्रंथ में जो कुछ अधिक न्यून वा अयुक्त लेख हुआ हो उस को बुद्धिमान् लोग इस ग्रंथ के तात्पर्य के अनुकूल कर लेवें, धार्म्मिक विद्वानों की यही योग्यता है कि वक्ता के वचन और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय के अनुसार ही समझ लेते हैं,यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है कि जिस से गो आदि पशु जहां तक सामर्थ्य हो बचाये जावें, और उन के बचाने से दूध घी और खेती के बढ़ने से सब को सुख बढ़ता रहे । परमात्मा कृपा करे कि यह अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो । इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं एक समीक्षा, दूसरा नियम, और तीसरा उपनियम, इन को ध्यान दे पक्षपात छोड़ विचार के राजा तथा प्रजा यथावत् उपयोग में लावें कि जिस से दोनों के लिये सुख बढ़ता ही रहे ॥

इति भूमिका ॥

अथ समीक्षा ॥

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा ॥

इस सभा का नाम गोकृष्यादि रक्षिणी इस लिये रक्खा है जिस से गो आदि पशु और कृषि आदि कर्मों की रक्षा और वृद्धि होकर सब प्रकार के उत्तम सुख मनुष्यादि प्राणियों को प्राप्त होते हैं, और इस के विना निम्नलिखित सुख कभी नहीं प्राप्त हो सकते, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने इस सृष्टि में जो २ पदार्थ बनाये हैं वे निष्प्रयोजन नहीं किन्तु एक २ वस्तु अनेक २ प्रयोजन के लिये रचा है, इस लिये उन से वेही प्रयोजन लेना न्याय अन्यथा अन्याय है, देखिये जिस लिये यह नेत्र बनाया है इस से वही कार्य्य लेना सब को उचित होता है, न कि उस से पूर्ण प्रयोजन न लेकर बीच ही में वह नष्ट कर दिया जावे ! क्या जिन २ प्रयोजनों के लिये परमात्मा ने जो २ पदार्थ बनाये हैं उन २ से वे २ प्रयोजन न लेकर उन को प्रथम ही विनष्ट कर देना सत्पुरुषों के विचार में बुरा कर्म्म नहीं है ? पक्षपात छोड़ कर देखिये गाय आदि पशु और कृषि आदि कर्मों से सब संसार को असंख्य सुख होते हैं वा नहीं ? जैसे दो और दो चार वैसे ही सत्यविद्या से जो २ विषय जाने जाते हैं वे अन्यथा कभी नहीं हो सकते ॥

जो एक गाय न्यून से न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कुछ भी शंका नहीं इस हिसाब से एक मास में ८। सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम ६ महीने और दूसरी अधिक से अधिक १८ महीने तक दूध देती है तो दोनों का मध्यभाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते हैं इस हिसाब से बारहों महीनों का दूध ९९ निन्नाणवे मन होता है। इतने दूध को औटाकर प्रति सेर में एक छटांक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डाल कर खीर बना खावें तो प्रत्येक पुरुष के लिये दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है क्योंकि यह भी एक मध्यभाग की

गिनती है अर्थात् कोई दो सेर दूध की खीर से अधिक खायगा और कोई न्यून। इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से १९८० एक हजार नवसौ अस्सी मनुष्य एक बार तृप्त होते हैं, गाय न्यून से न्यून ८ और अधिकसे अधिक १८ बार व्याती है इस का मध्यभाग तेरह बार आया तो। २५७४० पच्चीस हजार सातसौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्म भर के दूध मात्र से एकबार तृप्त हो सकते हैं इसगाय की एक पीढ़ी में छः बछिया और सातबछड़े हुए इन में से एक का मृत्यु रोगादि से होना सम्भव है तो भी बारह रहे। उन छः बछियाओं के दूध मात्र से उक्त प्रकार १५४४४० एक लाख चौवन हजार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन होसकता है। अब रहे छः बैल उन में एक जोड़ी से दोनों साह में २०० दोसौ मन अन्न उत्पन्न होसकता है इस प्रकार तीन जोड़ी ६०० छः सौ मन अन्न उत्पन्न करसकती हैं और उन के कार्य्य का मध्यभाग आठ वर्ष है इस हिसाब से ४८०० चार हजार आठसौ मन अन्न उत्पन्न करने की शक्ति एक जन्म में तीनों जोड़ी की है (४८००) इतने अन्न से प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव अन्न भोजन में गिनें तो २०५६०००दो लाख छप्पन हजार मनुष्यों का एकवार भोजन होता है। दूध और अन्न को मिला कर देखने से निश्चय है कि ४१०४४० चार लाख दश हजार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है अब छः गाय की पीढ़ी पर पीढ़ियों का हिसाब लगाकर देखा जावे तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है। और इस के मांस से अनुमान है कि केवल अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं देखो तुच्छलाभकेलिये लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं ?

यद्यपि गाय के दूध से भैंस कादूध कुछ अधिक और बैलों से भैंसा कुछ न्यून लाभ पहुंचाता है तदपि जितना गाय के दूध और बैलों के उपयोग से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसियों के दूध और भैंसों से नहीं। क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धिवर्धक आदि गुण गाय के दूध और बैलों में होते हैं उतने भैंस के दूध और भैंसे आदि में नहीं हो सकते इसी लिये आर्यों ने गाय सर्वोत्तम मानी है ॥

और ऊंटनी का दूध गाय और भैंस के दूध से भी अधिक होता है तो भी इन का दूध गाय के सदृश नहीं ऊंट और ऊंटनी के गुण भार उठा कर शीघ्र पहुंचाने के लिये प्रशंसनीय हैं ॥

अब एक बकरी कम से कम एक और अधिक से अधिक पांच सेर दूध देती है इस का मध्यभाग प्रत्येक बकरी से तीन सेर दूध होता है और वह न्यून से न्यून तीन महीने और अधिक से अधिक पांच महीने तक दूध देती है तो प्रत्येक बकरी के दूध देने में मध्यभाग चार महीने हुए वह एक मास में २। सवा दो मन और चारमास में ९ नव मन होता है पूर्वोक्त प्रकारानुसार इस दूध से एक सौ अस्सी १८० मनुष्यों की तृप्ति होती है और एक बकरी एक वर्ष में दो वार व्याती है इस हिसाब से एक वर्ष में एक बकरी के दूध के एक वार भोजन से ३६० तीनसौ साठ मनुष्यों की तृप्ति होती है, कोई बकरी न्यून से न्यून चार वर्ष और कोई अधिक से अधिक ८ आठ वर्ष तक व्याती है इस का मध्यभाग ६ छः वर्ष हुआ तो जन्मभर के दूध से २१६० दो हजार एकसौ साठ मनुष्यों का एक वार के भोजन से पालन होता है, अब उस के बच्चा बच्ची मध्यभाग से २४ चौबीस हुए क्योंकि कोई न्यून से न्यून एक और कोई अधिक से अधिक तीन बच्चों से व्याती है उन में से दो का अल्पमृत्यु समझो रहे २२ बाईस उन में से १२ बारह बकरियों के दूध से २५९२० पचीस हजार नवसौ बीस मनुष्यों का एकदिन पालन होता है उस की पीढ़ी पर पढ़ी के हिसाब लगाने से असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और बकरे भी बोझ उठाने आदि प्रयोजनों में आते हैं और बकरा बकरी भेड़ा भेड़ी के रोम और उन के बस्त्रों से मनुष्यों को बड़े २ सुख लाभ होते हैं ? यद्यपि भेड़ी का दूध बकरी के दूध से कुछ कम होता है तदपि बकरी के दूध से उस के दूध में बल और घृत अधिक होता है। इसी प्रकार अन्य दूध देने वाले पशुओं के दूध से भी अनेक प्रकार के सुख लाभ होते हैं जैसे ऊंट ऊंटनी से लाभ होते हैं वैसे ही घोड़े घोड़ी और हाथी आदि से अधिक कार्यसिद्ध होती हैं, इसी प्रकार सुअर कुत्ता मुर्गा मुर्गी और मोर आदि पक्षियों से भी अनेक उपकार होते हैं जो पुरुष हरिण और सिंह आदि पशु और मोर

आदि पक्षियों से भी उपकार लेना चाहैं तो ले सकते हैं परन्तु सब का पालन उत्तरोत्तर समयानुकूल होवे गा वर्त्तमान में परमोपकारक गौ की रक्षा में मुख्य तात्पर्य है। दो ही प्रकार से मनुष्य आदि की प्राण रक्षा, जीवन, सुख, विद्या, बल और पुरुषार्थ आदि की वृद्धि होती है एक अन्नपान दूसरा आच्छादन इन में से प्रथम के विना मनुष्यादि का सर्वथा प्रलय और दूसरे के विना अनेक प्रकार की पीड़ा होती है देखिये जो पशु निःसार घास तृण पत्ते फल फूल आदि खावें और सार दूध आदि अमृतरूपी रत्न देवें हल गाड़ी आदि में चल के अनेक विध अन्न आदि उत्पन्न कर, सब के बुद्धि बल पराक्रम को बढ़ा के नी रोगता करें, पुत्र पुत्री और मित्र आदि के समान पुरुषों के साथ विश्वास और प्रेम करें जहां बांधें वहां बंधे रहैं, जिधर चलावें उधर चलें, जहां से हटावें वहां से हटजावें, देखने और बुलाने पर समीप चले आवें जब कभी व्याघ्रादि पशु वा मारने वाले को देखें अपनी रक्षा के लिये पालन करने वाले के समीप दौड़ कर आवें कि यह हमारी रक्षा करे गा, ॥

जिन के मरे पर चकड़ा भी कांटक आदि से रक्षा करे, जंगल में चर के अपने बच्चे और स्वामी के लिये दूध देने को नियत स्थान पर नियत समय चले आवें अपने स्वामी की रक्षा के लिये तन मन लगावें जिन का सर्वस्व राजा और प्रजा आदि मनुष्यों के सुख के लिये है, इत्यादि शुभ गुण युक्त सुख कारक पशुओं के गले छुरों से काट कर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उन से भी अधिक कोई विश्वासघाती अनुपकारी दुःख देने वाले और पापी जन होंगे ? इसी लिये यजुर्वेद के प्रथम ही मंत्र में परमात्मा की आज्ञा है कि (अघ्न्याः + यजमानस्य पशून् पाहि) हे पुरुष तूं इन पशुओं को कभी मत मार और यजमान अर्थात् सब के सुख देने वाले जनों के संबंधी पशुओं की रक्षा कर जिन से तेरी भी पूरी रक्षा होवे, और इसी लिये ब्रह्मा से ले के आज पर्यन्त आर्य्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं, और इन की रक्षा में अन्न भी महंगा नहीं होता क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्री को भी खान पान में मिलने पर न्यून ही अन्न खाया

जाता है, और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है, मल के न्यून होने से दुर्गंध भी न्यून होता है, दुर्गंध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि भी विशेष होती है, उस से रोगों की न्यूनता होने से सब को सुख बढ़ता है ॥

इस से यह ठीक है कि गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश होजाता है, क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कर्मों की भी घटती होती है, देखो इसी से, जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ७०० सातसौ वर्ष के पूर्व मिलते थे, उतना दूध, घी, और बैल आदि पशु इस समय दशगुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते, क्योंकि ७०० सातसौ वर्ष के पीछे इस देश में गौ आदि पशुओं को मारने वाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आबसे हैं, वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़ मांस तक भी नहीं छोड़ते तो (मूले नष्टे नैव पुष्पं फलं न) जब कारण का नाश करदे तो कार्य्य नष्ट क्यों न हो जावे ? हे मांसाहारीयो तुम लोग, जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ? हे परमेश्वर तू क्यों इन पशुओं पर जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं दया नहीं करता ? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या उन के लिये तेरी न्यायसभा बंद हो गई है ? क्यों उन की पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता ? और उन की पुकार नहीं सुनता ? क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन, और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता ? जिस से ये इन बुरे कामों से बचें ॥

अथ समीक्षायां हिंसकरक्षकसंवादः ।

हिंसक—ईश्वर ने सब पशु आदि सृष्टि मनुष्यों के लिये रची है, और पुरुष अपनी भक्ति के लिये, इस लिये मांस खाने में दोष नहीं हो सकता, ॥

रक्षक—भाई सुनो तुम्हारे शरीर को जिस ईश्वर ने बनाया है, क्या उसीने पशु आदि के शरीर नहीं बनाये हैं ? जो तुम कहो कि पशु आदि हमारे खाने को बनाये हैं, तो हम कह सकते हैं कि हिंसक पशुओं के लिये तुम को उस ने रचा

है क्योंकि जैसे तुम्हारा चित्त उन के मांस पर चलता है वैसे ही सिंह गृध्र आदि का चित्त भी तुम्हारे मांस खाने पर चलता है तो उन के लिये तुम क्यों नहीं ?

हिं०–देखो ईश्वर ने पुरुषों के दांत पैने मांसाहारी पशुओं के समान बनाये हैं इस से हम जानते हैं कि मनुष्यों को मांस खाना उचित है,

र०–जिन व्याघ्रादि पशुओं के दांत के दृष्टान्त से अपना पक्ष सिद्ध किया चाहते हो, क्या तुम भी उन के तुल्य ही हो ? देखो तुम्हारी मनुष्य जाति, उन की पशुजाति, तुम्हारे दो पग, औ उन के चार तुम विद्या पढ़कर सत्यासत्य का विवेक कर सकते हो वे नहीं, और यह तुम्हारा दृष्टांत भी युक्त नहीं क्योंकि जो दांत का दृष्टान्त लेते हो तो बंदर के दांतों का दृष्टान्त क्यों नहीं लेते देखो बंदरों के दांत सिंह और बिल्ली आदि के समान हैं और वे मांस कभी नहीं खाते, मनुष्य और बंदर की आकृति भी बहुत सी मिलती है जैसे मनुष्यों के हाथ पग और नख आदि होते हैं वैसे ही बंदरों के भी हैं, इसी लिये परमेश्वर ने मनुष्यों को दृष्टान्त से उपदेश किया है कि जैसे बंदर मांस कभी नहीं खाते और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो जैसा बंदरों का दृष्टान्त सांगो-पांग मनुष्यों के साथ घटता है वैसा अन्य किसी का नहीं, इस लिये मनुष्यों को अति उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ देवें ॥

हिं०–देखो जो मांसाहारी पशु और मनुष्य हैं वे बलवान् और जो मांस नहीं खाते वे निर्बल होते हैं इस से मांस खाना चाहिये ॥

र०–क्यों अल्प समझ की बातें मान कर कुछ भी विचार नहीं करते देखो सिंह मांस खाता, और सुअर वा अरणा भैंसा मांस कभी नहीं खाता परन्तु जो सिंह बहुत मनुष्यों के समुदाय में गिरे तो एक वा दो को मारता और एक दो गोली वा तलवार के प्रहार से मर भी जाता है, और जब वराहो सुअर वा अरणा भैंसा जिस प्राणि समुदाय में गिरता है तब उन अनेक सवारों और मनुष्यों को मारता, और अनेक गोली, बरछी, तथा तलवार आदि के प्रहारों से भी शीघ्र नहीं गिरता, और सिंह उन से डर के अलग सटक जाता है, और वह सिंह से नहीं डरता । और जो प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखना चाहो तो एक मांसाहारी का एक

दूध घी और अनाहारी मथुरा के मल्ल चौबे से बाहुयुद्ध हो तो अनुमान है कि चौबा मांसाहारी को पटक उस की छाती पर चढ़ ही बैठेगा, पुनः परीक्षा होगी कि किस २ के खाने से बल न्यून और अधिक होता है, भला तनिक विचार तो करो कि छिलकों के खाने से अधिक बल होता है अथवा रस और जो सार है उस के खाने से ? मांस छिलके के समान और दूध घी सार रस के तुल्य है इस को जो युक्ति पूर्वक खावे तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक, अन्याय, अधर्म, और दुष्ट कर्म क्यों नहीं ?

हिं०–जिस देश में सिवाय मांस के अन्य कुछ नहीं मिलता वहां वा आपत्काल में अथवा रोगनिवृत्ति के लिये मांस खाने में दोष नहीं होता ॥

र०– यह आप का कहना व्यर्थ है क्यों कि जहां मनुष्य रहते हैं वहां पृथिवी अवश्य होती है जहां पृथिवी है वहां खेती वा फल फूल आदि होते हैं, और जहां कुछ भी नहीं होता वहां मनुष्य भी नहीं रहसकते और जहां ऊषर भूमि है वहां मिष्ट जल और फलाहारादि के न होने से मनुष्यों का रहना भी दुर्घट है, और आपत्कालमें भी अन्य उपायों से निर्वाह कर सकते हैं जैसे मांस के न खाने वाले करते हैं, और विना मांस के रोगों का निवारण भी ओषधियों से यथावत् होता है इसी लिये मांस खाना अच्छा नहीं ॥

हिं०–जो कोई भी मांस न खावे तो पशु इत ने बढजांय कि पृथिवी पर भी न समावें और इस लिये ईश्वर ने उन की उत्पत्ति भी अधिक की है तो मांस क्यों न खाना चाहिये ॥

र०–वाह ! वाह ! वाह ! यह बुद्धि का विपर्य्यास आप को मांसाहार ही से हुआ होगा, देखो मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता पुनः क्यों न बढ़ गये, और इन की अधिक उत्पत्ति इस लिये है कि एक मनुष्य के पालन व्यवहार में अनेक पशुओं की अपेक्षा है इस लिये ईश्वर ने उन को अधिक उत्पन्न किया है ॥

हिं०– ये जितने उत्तर किये वे सब व्यवहार संबन्धी हैं परंतु पशुओं को मार के मांस खाने में अधर्म तो नहीं होता, और जो होता है तो तुम को होता

होगा क्योंकि तुम्हारे मत में निषेध है इस लिये तुम मत खाओ और हम खावें क्योंकि हमारे मत में मांसखाना अधर्म्म नहीं है ॥

र०—हम तुम से पूछते हैं कि धर्म्म और अधर्म्म व्यवहार ही में होते हैं वा अन्यत्र? तुम कभी सिद्ध न कर सकोगे कि व्यवहार से भिन्न धर्म्माधर्म्म होते हैं, जिस जिस व्यवहार से दूसरों की हानि हो वह २ अधर्म्म, और जिस २ व्यवहार से उपकार हो वह २ धर्म्म कहाता है, तो लाखों के सुखलाभ कारक पशुओं का नाश करना अधर्म्म और उन की रक्षा से लाखों को सुख पहुंचाना धर्म्म क्यों नहीं मानते? देखो चोरी जारी आदि कर्म्म इसी लिये अधर्म्म हैं कि इन से दूसरे की हानि होती है, नहीं तो जो २ प्रयोजन धनादि से उन के स्वामी सिद्ध करते हैं, वे ही प्रयोजन उन चोरादि के भी सिद्ध होते हैं, इस लिये यह निश्चित है कि जो २ कर्म्म जगत् में हानिकारक हैं वे २ अधर्म्म और जो २ परोपकारक हैं वे २ धर्म्म कहाते हैं, जब एक आदमी की हानि करने से चोरी आदि कर्म पाप में गिनते हो तो गो आदि पशुओं को मार के बहुतों की हानि करना महापाप क्यों नहीं देखो मांसाहारी मनुष्यों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं किंतु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही में सदा रहते हैं, जब मांसाहारी किसी पुष्ट पशु को देखता है तभी उस को इच्छा होती है कि इस में मांस अधिक है मारकर खाऊं तो अच्छा हो, और जब मांस का न खाने वाला उस को देखता है तो प्रसन्न होता है कि यह पशु आनन्द में है,जैसे सिंह आदि मांसाहारी पशु किसी का उपकार तो नहीं करते किंतु अपने स्वार्थ के लिये दूसरे का प्राण भी ले मांस खाकर अति प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मांसाहारी मनुष्य भी होते हैं इस लिये मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं, ॥

हिं०— अच्छा जो यही बात है तो जबतक पशु काम में आवें तब तक उन का मांस न खाना चाहिये, जब बूढ़े हो जावें वा मरजावें तब खाने में कुछ भी दोष नहीं ॥

र०—जैसे दोष उपकार करने वाले माता पिता आदि के वृद्धावस्था में मारने और उन के मांस खाने में हैं वैसे उन पशुओं की सेवा न कर मार के मांस

खाने में है और जो मरे पश्चात् उन का मांस खावे तो उस का स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी न बच सकेगा इस लिये किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिये ॥

हिं०—जिन पशुओं और पक्षियों अर्थात् जंगल में रहने वालों से उपकार किसी का नहीं होता और हानि होती है उन का मांस खाना वा नहीं ? ॥

र०—न खाना चाहिये, क्योंकि वे भी उपकार में आसकते हैं देखो सौ १०० भंगी जितनी शुद्धि करते हैं उन से अधिक एक सुअर वा मुर्गा अथवा मोर आदि पक्षी सर्प आदि की निवृत्ति करने से पवित्रता और अनेक उपकार करते हैं और जैसे मनुष्यों का खान पान दूसरे के खाने पीने से उन का जितना अनुपकार होता है वैसे जंगली मांसाहारी का अन्न जंगली पशु और पक्षी हैं, और जो विद्या वा विचार से सिंह आदि वनस्थ पशु और पक्षियों से उपकार लेवें तो अनेक प्रकार का लाभ उन से भी हो सकता है इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये । भला जिन के दूध आदि खाने पीने में आते हैं वे माता पिता की समान माननीय क्यों न होने चाहिये ? ईश्वर की सृष्टि से भी विदित होता है कि मनुष्यों से पशु और पक्षी आदि अधिक रहने से कल्याण है क्योंकि ईश्वर ने मनुष्यों के खाने पीने के पदार्थों से भी पशु और पक्षियों के खाने पीने के पदार्थ घास वृक्ष फूल फलादि अधिक रचे हैं और वे विना जोते बोए सींचे पृथिवी पर स्वयं उत्पन्न होते हैं, और वहां वृष्टि भी करता है इस लिये समझ लीजिये कि ईश्वर का अभिप्राय उन के मारने में नहीं किंतु रक्षा करने में है ॥

हिं०—जो मनुष्य पशु को मार के मांस खावें उन को पाप होता है और जो बिकता मांस मूल्य से ले वा भैरव, चामुंडा, दुर्गा, जखैया वाममार्ग, अथवा यज्ञ आदि की रीति से चढ़ा समर्पण कर खावें तो उन को पाप नहीं होना चाहिये क्यों कि वे विधि कर के खाते हैं ॥

र०—जो कोई मांस न खावे न उपदेश और न अनुमति आदि देवे तो पशु आदि कभी न मारे जावें, क्यों कि इस व्यवहार में बहकावट लाभ और बिक्री न हो तो प्राणियों का मारना बंद ही होजावे इस में प्रमाण भी है :—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ १ ॥

अर्थ—अनुमति (मारने की सलाह) देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उन को मारने के लिये लेने और बेचने, मांस के पकाने, परसने, और खाने वाले ८ आठ मनुष्य घातक हिंसक अर्थात् ये सब पापकारी हैं, और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना मारना वा मरवाना महापाप कर्म्म है, इसी लिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी, मद्य भी मांस खाने का ही कारण है इस लिये यहां संक्षेप से थोड़ासा लिखा है ॥

प्रमत्त—कहो जी मांस तो छूटा सो छूटा परंतु मद्य पीने में तो कोई भी दोष नहीं ? ॥

शांत—मद्य पीने में भी वैसे ही दोष हैं जैसे कि मांस खाने में मनुष्य मद्य पीने से नशे के कारण नष्टबुद्धि होकर अकर्त्तव्य कर लेता और कर्त्तव्य को छोड़ देता है, न्याय का अन्याय और अन्याय का न्याय आदि विपरीत कर्म्म करता है और मद्य की उत्पत्ति विकृत पदार्थों से होती है, और वह मांसाहारी अवश्य होजाता है, इस लिये इस के पीने से आत्मा में विकार उत्पन्न होते हैं और जो मद्य पीता है वह विद्यादि शुभगुणों से रहित होकर उन दोषों में फस कर अपने धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत् आहार निद्रा भय मैथुन आदि कर्म्मों में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ कर देता है इस लिये नशा अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन भी न करना चाहिये जैसा मद्य है वैसे भांग आदि पदार्थ भी मादक हैं इस लिये इन का भी सेवन कभी न करे, क्यों कि ये भी बुद्धि का नाश करके प्रमाद, आलस्य और हिंसा आदि में मनुष्य को लगा देते हैं इस लिये मद्यपान के समान इन का भी सर्वथा निषेध ही है ॥

इस से हे धार्म्मिक सज्जन लोगो ! आप इन पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते ? हाय ! बड़े शोक की बात है जब हिंसक लोग गाय

बकरे आदि पशु और मोरआदि पक्षियों को मारने के लिये लेजाते हैं तब वे अनाथ तुम हम को देख के राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं कि देखो हम को विना अपराध बुरे हाल से मारते हैं, और हम रक्षा करने तथा मारने वालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिये उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं चाहते, देखो हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है और हम इसी लिये पुकारते हैं कि हम को आप लोग बचावें, हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते, और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो, क्या हम में से किसी को कोई मारता तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारने वालों को न्यायव्यवस्था से फांसी पर न चढ़वा देते? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्यों कि कोई भी हम को बचाने में उद्यत नहीं होता, और जो कोई होता है तो उस से मांसाहारी द्वेष करते हैं (अस्तु) वे स्वार्थ के लिये द्वेष करो तो करो क्यों कि (स्वार्थी दोषन्न पश्यति) जो स्वार्थ साधने में तत्पर है वह अपने दोषों पर ध्यान नहीं देता किंतु दूसरों की हानि हो तो हो मुझ को सुख होना चाहिये, परंतु जो उपकारी हैं वे इन के बचाने में अत्यंत पुरुषार्थ करें जैसा कि आर्य्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज तक वेदोक्त रीति से प्रशंसनीय कर्म्म करते आये हैं वैसे ही सब भूगोलस्थ सज्जन मनुष्यों को करना उचित है ॥

धन्य है आर्य्यावर्त्तदेशवासी आर्य्यलोगों को कि जिन्हों ने ईश्वर की सृष्टिक्रम के अनुसार परोपकार ही में अपना तन, मन, धन लगाया, और लगाते हैं, इसी लिये आर्य्यावर्त्तीय, राजा, महाराजा, प्रधान, और धनाढ्य लोग आधी पृथिवी में जंगल रखते थे कि जिस से पशु और पक्षियों की रक्षा होकर ओषधियों के सार दूध आदि पवित्र पदार्थ उत्पन्न हों जिन के खाने पीने से, आरोग्य, बुद्धिबल, पराक्रम आदि सद्गुण बढ़ें, और वृक्षों के अधिक होने से वर्षा जल और वायु में आर्द्रता और शुद्धि अधिक होती है पशु और पक्षी आदि के अधिक होने से खात भी अधिक होता है, परंतु इस समय के मनुष्यों का इस से विपरीत व्यवहार है कि जंगलों को काट, और कटवा डालना, पशुओं को मार, और मरवा

खाना, और विष्ठा आदि का खात खेतों में डाल अथवा डलवा कर रोगों की वृद्धि करके संसार का अहित करना स्वप्रयोजन साधना, और परप्रयोजन पर ध्यान न देना, इत्यादि काम उलटे हैं (विषादप्यमृतङ्ग्राह्यम्) सत्पुरुषों का यही सिद्धान्त है कि विष से भी अमृत लेना, इसी प्रकार गाय आदि का मांस विषवत् महारोगकारी को छोड़ कर उन से उत्पन्न हुए दूध आदि अमृत रोगनाशक है उन को लेना, अत एव इन की रक्षा करके विषत्यागी, और अमृतभोजी सब को होना चाहिये सुनो बंधु वर्गो तुम्हारा तन मन धन गाय आदि की रक्षा रूप परोपकार में न लगे तो किस काम का है देखो परमात्मा का स्वभाव कि जिस ने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार ही के लिये रच रक्खे हैं, वैसे तुम भी अपना तन, मन, धन, परोपकार ही के लिये अर्पण करो, बड़े आश्चर्य्य की बात है कि पशुओं को पीड़ा न होने के लिये न्याय पुस्तक में व्यवस्था भी लिखी है कि जो पशु दुर्बल और रोगी हों उन को कष्ट न दिया जावे और जितना बोझ सुख पूर्वक उठा सकें उतना ही उन पर धरा जावे,

श्रीमती राजराजेश्वरी श्रीविक्टोरिया महाराणी का विज्ञापन भी प्रसिद्ध है कि इन अव्यक्त वाणी पशुओं को जो २ दुःख दिया जाता है वह २ न दिया जावे जो यही बात है कि पशुओं को जो २ दुःख दिया जाता है वह २ न दिया जावे, तो क्या भला मार डालने से भी अधिक कोई दुःख होता है ? क्या फांसी से अधिक दुःख बंदीगृह में होता है ? जिस किसी अपराधी से पूछा जाय कि तू फांसी चढ़ने में प्रसन्न है वा बंदीघर के रहने में ? तो वह स्पष्ट कहे गा कि फांसी में नहीं किंतु बंदीघर के रहने में और जो कोई मनुष्य भोजन करने को उपस्थित हो उस के आगे से भोजन के पदार्थ उठा लिये जावें और उस को वहां से दूर किया जावे तो क्या वह सुख मानेगा ? ऐसे ही आज कल के समय में कोई गाय आदि पशु सरकारी जङ्गल में जाकर घास और पत्ता जो कि उन्हीं के भोजनार्थ हैं बिना महसूल दिये खावें वा खाने को जावें तो बेचारे उन पशुओं और उन के स्वामियों की दुर्दशा होती है जंगल में आग लग जल जावे तो कुछ चिंता नहीं किंतु वे पशु न खाने पावें, हम कहते हैं कि किसी अति क्षुधातुर राजा

वा राजपुरुष के सामने आये चावल आदि वा डबल रोटी आदि छीन कर न खाने देवें, और उन की दुर्दशा की जावे तो इन को दुःख विदित न होगा ? क्या वैसा ही उन पशु पक्षियों और उन के स्वामियों को न होता होगा ? ध्यान देकर सुनिये कि जैसा दुःख सुख अपने को होता है वैसा ही औरों को भी समझा कीजिये, और यह भी ध्यान में रखिये कि वे पशु आदि और उन के स्वामी तथा खेती आदि कर्म करने वाले प्रजा के पशु आदि और मनुष्यों के अधिक पुरुषार्थ ही से राजा का ऐश्वर्य अधिक बढ़ता और न्यून से नष्ट होजाता है इसी लिये राजा प्रजा से कर लेता है कि उन की रक्षा यथावत् करे, न कि राजा और प्रजा के जो सुख के कारण गाय आदि पशु हैं उन का नाश किया जावे, इस लिये आज तक जो हुआ सो हुआ आगे आंखें खोल कर सब के हानि कारक कर्मों को न कीजिये, और न करने दीजिये। हां हम लोगों का यही काम है कि आप लोगों को भलाई और बुराई के कामों को जता देवें, और आप लोगों का यही काम है कि पक्षपात छोड़ सब की रक्षा और बढ़ती करने में तत्पर रहें, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर हम और आप पर पूर्ण कृपा करे कि जिस से हम और आप लोग विश्व के हानिकारक कर्मों को छोड़ सर्वोपकारक कामों को करके सब लोग आनन्द में रहें ॥ इन सब बातों को मत सुन डालना किन्तु सुन रखना, इन अनाथ पशुओं के प्राणों को शीघ्र बचाना ॥

हे महाराजाधिराज जगदीश्वर जो इन को कोई न बचावे तो आप इन की रक्षा करने और हम से कराने में शीघ्र उद्यत हूजिये ॥

इति समीक्षा ॥

इस सभा के नियम ॥

१ सब विश्व को विविध सुख पहुंचाना इस सभा का मुख्य उद्देश है किसी की हानि करना प्रयोजन नहीं ॥

२ जो जो पदार्थ सृष्टिक्रमाऽनुकूल जिस २ प्रकार से अधिक उपकार में

आवे उस २ से आमाऽभिप्रायाऽनुसार यथायोग्य सर्वहित सिद्ध करना इस सभा का परम पुरुषार्थ है ॥

३ जिस २ कर्म्म से बहुत हानि और थोड़ा लाभ हो उस २ को सभा कर्त्तव्य नहीं समझती ॥

४ जो २ मनुष्य इस परमहितकारी कार्य्य में तन, मन, धन, से प्रयत्न और सहायता करे वह २ इस सभा में प्रतिष्ठा के योग्य होवे ॥

५ जो कि यह कार्य्य सर्वहितकारी है इस लिये यह सभा भूगोलस्थ मनुष्यजाति से सहायता की पूरी आशा रखती है ॥

६ जो जो सभा देश देशांतर और द्वीप द्वीपांतर में परोपकार ही करना अभीष्ट रखती है वह २ इस सभा की सहायकारिणी समझी जाती है ॥

७ जो २ जन राजनीति वा प्रजा के अभीष्ट से विरुद्ध, स्वार्थी, क्रोधी और अविद्यादि दोषों से प्रमत्त होकर राजा और प्रजा के लिये अनिष्ट कर्म्म करे वह२ इस सभा का सम्बन्धी न समझा जावे ॥

उपनियम ॥

१ इस सभा का नाम "गोकृष्यादिरक्षिणी" है ॥

उद्देश

२ इस सभा के उद्देश वे ही हैं जो कि इस के नियमों में वर्णन किये गये हैं ॥

३ जो लोग इस सभा में नाम लिखाना चाहें* और इस के उद्देशाऽनुकूल आचरण करना चाहें वे इस सभा में प्रविष्ट होसकते हैं परंतु उन की आयु १८ वर्ष से न्यून न हो जो लोग इस सभा में प्रविष्ट हों वे गोरक्षक सभासद कहलावेंगे ॥

---

* इस सभा में नाम लिखाने के लिये मंत्री के पास इस प्रकार का पत्र भेजना चाहिये कि मैं प्रसन्नता पूर्वक इस सभा के उद्देशानुकूल जो कि नियमों में वर्णन किये हैं गये आचरण स्वीकार करताहूं मेरा नाम इस सभा में लिख लीजिये परन्तु अन्तरङ्ग सभा को अधिकार रहेगा कि किसी विशेष हेतु से उन का नाम इस सभा में लिखना स्वीकार न करे ॥

४ जिन का नाम इस सभा में सदाचार से एक वर्ष रहा हो और वे अपनी आय का शतांश वा अधिक मासिक वा वार्षिक इस सभा को दें वे गोरक्षक सभासद हो सकते हैं और सम्मति देने का अधिकार केवल गोरक्षक सभासदों ही को होगा ॥

अ + गोरक्षक सभासद बनने के लिये गोकृष्यादिरक्षिणी सभा में वर्ष भर नाम रहने का नियम किसी व्यक्ति के लिये अन्तरंग सभा शिथिल भी कर सकती है इस सभा में वर्षभर रहकर गोरक्षक सभासद बनने का नियम गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के दूसरे वर्ष से काम आवेगा ॥

ब × राजा सरदार बड़े २ साहूकार आदि को इस सभा के सभासद बनने के लिये शतांश ही देना आवश्यक नहीं वे एक वार वा मासिक वा वार्षिक अपने उत्साह वा सामर्थ्याऽनुसार दे सकते हैं ॥

ज × अंतरंग सभा किसी विशेष हेतु से चन्दा न देने वाले पुरुष को भी गोरक्षक सभासद बना सकती है ॥

द ÷ नीचे लिखी हुई विशेष दशा ओं में उन सभासदों को भी जो गोरक्षक सभासद नहीं बने सम्मति ली जा सकती है ॥

१ जब नियमों में न्यूनाधिक शोधन करना हो ॥

२ जब कि विशेष अवस्था में अंतरंग सभा उन की सम्मति लेनी योग्य और आवश्यक समझे ॥

३ जो इस सभा के उद्देश के विरुद्ध कर्म्म करेगा वह न तो गोरक्षक और न गोरक्षक सभासद गिना जावेगा ॥

४ गोरक्षक सभासद दो प्रकार के होंगे एक साधारण और दूसरे माननीय। माननीय गोरक्षक सभासद वे होंगे जो शतांश वा १०) रु० मासिक वा इस से अधिक देवें अथवा एक वार २५०) रुपया दें, वा जिन को अन्तरंग सभा विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों से माननीय समझे ॥

५ यह सभा दो प्रकार की होगी एक साधारण दूसरी अन्तरंग ॥

६ साधारण सभा तीन प्रकार की होवे १ मासिक २ षाण्मासिक और ३ नैमित्तिक ॥

७ (मासिक सभा) प्रतिमास एक बार हुआ करे उस में महीने भर का आय व्यय और सभा के कार्य्यकर्ताओं की क्रियाओं का वर्णन किया जावे जोकि कथन योग्य हो ॥

८ (षाण्मासिक सभा) कार्तिक और वैशाख के अन्त में हुआ करे उस में आलोक्त विचार मासिक सभा का कार्य्यप्रत्येक प्रकार का आय व्यय समझना और समझाना होवे ॥

९ (नैमित्तिक सभा) जब कभी मन्त्री प्रधान और अन्तरङ्ग सभा आवश्यक कार्य्य जाने उसी समय यह सभा हो और उस में विशेष कार्य्यों का प्रबंध होवे

१० (अन्तरंग सभा) सभा के समस्त कार्य्यप्रबंध के लिये एक अन्तरंग सभा नियत की जावे और इस में तीन प्रकार के सभासद हों एक प्रतिनिधि दूसरे प्रतिष्ठित और तीसरे अधिकारी ॥

११ प्रतिनिधि सभासद अपने २ समुदायों के प्रतिनिधि होंगे और उन्हें उन के समुदाय नियत करेंगे, कोई समुदाय जब चाहे अपने प्रतिनिधि को बदल सक्ता है प्रतिनिधि सभासदों के विशेष कार्य्य ये होंगे–

अ+अपने २ समुदायों की सम्मति से अपने को विज्ञ रखना।

ब+अपने २ समुदायों को अंतरंग सभा के कार्य्य जो कि प्रगट करने के योग्य हों बतलाना ॥

ज+अपने २ समुदायों से चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्ष को देना ॥

१२ प्रतिष्ठित सभासद विशेष गुणों के कारण प्रायः वार्षिक, नैमित्तिक, और साधारण सभा में नियत किये जावें प्रतिष्ठित सभासद अन्तरंग सभा में एक तिहायी से अधिक न हों, ॥

१३ प्रति वैशाख की सभा में अन्तरंग सभा के प्रतिष्ठित अधिकारी वार्षिक साधारण सभा में फिर से नियत किये जावें और कोई पुराना प्रतिष्ठत और अधिकारी पुनर्वार नियुक्त हो सकता है ॥

१४ जब वर्ष के पहिले किसी प्रतिष्ठित सभासद और अधिकारी का स्थान रिक्त हो तो अन्तरंग सभा आप ही उस के स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकती है।

१६ अंतरंग सभा कार्य्य के प्रबंध निमित्त उचित व्यवस्था बना सकती है, परन्तु वह नियमों और उपनियमों से विरुद्ध न हो ॥

१७ अन्तरंग सभा किसी विशेष कार्य्य के करने और सोचने के लिये अपने में से सभासदों और विशेष गुण रखने वाले सभासदों को मिला कर उपसभा नियत कर सकती है, ॥

१८ अंतरंग सभा का कोई सभासद मंत्री को एक सप्ताह के पहिले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जाय और वह विषय प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जावे परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरंग सभा के पांच सभासद सम्मति दें वह अवश्य निवेदन करना हो पड़े

१९ दो सप्ताह के पीछे अन्तरङ्ग सभा अवश्य हुआ करे, और मंत्री और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरङ्ग सभा के पांच सभासद मंत्री को पत्र लिखें तो भी हो सकती है ॥

२० अधिकारी छः प्रकार के होंगे १ प्रधान २ उपप्रधान ३ मंत्री ४ उपमंत्री ५ कोषाध्यक्ष ६ पुस्तकाध्यक्ष ॥

(मंत्री) (कोषाध्यक्ष) (पुस्तकाध्यक्ष) इन के अधिकारों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक भी नियत हो सकते हैं और जब किसी अधिकार पर एक से अधिक भी नियत हों तो अन्तरंग सभा उन्हें कार्य्य बांट देवे ॥

२१ प्रधान के निम्न लिखित अधिकार और काम होवें ।

१ (प्रधान) अन्तरंग सभा आदि सब सभाओं का सभापति समझा जावे ।

२ सदा सभा के सब कार्य्यों के यथावत् प्रबंध और सर्वथा उन्नति और रक्षा में तत्पर रहै सभा के प्रत्येक कार्य्य को देखे कि वे नियमानुसार किये जाते हैं वा नहीं स्वयं नियमानुसार चले ॥

३ यदि कोई विषय कठिन और आवश्यक प्रतीत हो तो उस का यथोचित प्रबंध तत्काल करे और उस को हानि में वही उत्तर देवे ।

४ प्रधान अपने प्रधानत्व के कारण सब उपसभाओं का जिन्हें अन्तरंग सभा संस्थापन करे सभासद हो सकता है ॥

उपप्रधान ॥

२२ इस के ये कार्य कर्त्तव्य हैं—प्रधान की अनुपस्थिति में उस का प्रतिनिधि होवे, यदि दो वा अधिक उप प्रधान हों तो सभा की संमति के अनुसार उन में से कोई एक प्रतिनिधि किया जावे परंतु सभा के सब कार्यों में प्रधान को सहायता देनी उस का मुख्य कार्य है ॥

मंत्री ॥

२३ (मंत्री) के निम्नलिखित अधिकार और कार्य हैं—

१ अन्तरंग सभा की आज्ञानुसार सभा की ओर से सब के साथ पत्र व्यवहार रखना ॥

२ सभाओं का वृत्तान्त लिखना और दूसरी सभा होने से पहिले ही पूर्व वृत्तान्त पुस्तक में लिखना वा लिखवाना ॥

३ मासिक अन्तरंग सभाओं में इन गोरक्षकों वा गोरक्षक सभासदों के नाम सुनाना जो कि पिछली मासिक सभा के पीछे सभा में प्रविष्ट वा उस से पृथक् हुए हों ॥

४ सामान्य प्रकार से भृत्यों के कार्य पर दृष्टि रखना और सभा के नियम, उपनियम, और व्यवस्थाओं के पालन पर ध्यान रखना ॥

५ इस बात का भी ध्यान रखना कि प्रत्येक गोरक्षक सभासद् किसी न किसी समुदाय में हों और इस का भी कि प्रत्येक समुदाय भी अपनी ओर से अन्तरंग सभा में प्रतिनिधि किया होवे ॥

६ पहिले विज्ञापन दिये पर मान्य पुरुषों को सत्कार पूर्वक बिठाना ॥

७ प्रत्येक सभा में नियत काल आना और बराबर ठहरना ॥

कोषाध्यक्ष ॥

२४ (कोषाध्यक्ष) के नीचे लिखे अधिकार और कार्य हैं—

१ सभा के सब आयधन का लेना, उस को रसीद देना और उस को यथोचित रखना ॥

२ किसी को अन्तरंग सभा की आज्ञा के बिना रुपया न देना किंतु मंत्री और प्रधान को भी उस प्रमाण से देवे जितना अन्तरंग सभा ने उन के लिये नियत किया हो, अधिक न देना और उस धन के उचित व्यय के लिये वही अधिकारी जिसके द्वारा वह व्यय हुआ हो उत्तर दाता होवे ।

३ सब धन के व्यय का रीतिपूर्वक बही खाता रखना और प्रतिमास अन्तरंग सभा में हिसाब को बही खाते समेत परताल और स्वीकार के लिये निवेदन करना ॥

पुस्तकाध्यक्ष-

२५ (पुस्तकाध्यक्ष) के अधिकार और कार्य ये होवें जो पुस्तकालय में सभा की स्थिर और विक्रय की पुस्तक हों उन सबों की रक्षा कर और पुस्तकालय सबंधी हिसाब भी रक्खे और पुस्तकों के लेने देने का कार्य भी करे ॥

मिश्रितनियम-

२६ सब गोरक्षक सभासदों की संमति निम्नलिखित दशाओं में ली जावे अन्तरंग सभा का यह निश्चय हो कि किसी साधारण सभा के सिद्धांत पर निश्चय न करना चाहिये किन्तु गोरक्षक सभासदों की संमति जाननी चाहिये, ॥

२ सब गोरक्षक सभासदों का पांचवां वा अधिक अंश इस निमित्त मंत्री के पास पत्र लिख भेजे ॥

३ जब बहुत से व्ययसंबंधी वा प्रबंध संबन्धी नियम अथवा व्यवस्थासंबंधी कोई मुख्यविचारादि करना हो अथवा जब अन्तरंग सभा सब गोरक्षक सभासदों की सम्मति जाननी चाहे ।

२७ जब किसी सभा में थोड़े से समय के लिये कोई अधिकारी उपस्थित न हो तो उस समय के लिये किसी योग्य पुरुष को अन्तरंग सभा नियत कर सकती है ॥

२८ यदि किसी अधिकारी के स्थान पर वार्षिक साधारण सभा में कोई पुरुष नियत न किया जावे तो जब तक उस के स्थान पर नियत न किया जाय वही अधिकारी अपना काम करता रहे ॥

२९ सब सभा और उपसभाओं का वृत्तान्त लिखा जाया करे और उस को सब गोरक्षक सभासद देख सकते हैं ॥

३० सब सभाओं का कार्य तब आरंभ हो जब न्यून से न्यून एक तिहाई सभासद उपस्थित हों ॥

३१ सब सभाओं और उपसभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित हों ॥

३२ आय का दशांश समुदाय में रक्खा जावे ॥

३३ सब गोरक्षक और गोरक्षक सभासदों को इस सभा की उपयोगी वेदादि विद्या जाननी और जनानी चाहिये ॥

३४ सब गोरक्षक और गोरक्षक सभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द समय में सभा की उन्नति के लिये उदारता और पूर्ण प्रेमदृष्टि रक्खें ॥

३५ सब गोरक्षक और गोरक्षक सभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें और आनन्दोत्सव में निमंत्रण पर सहायक हों छोटाई बड़ाई न गिनें ॥

३६ कोई गोरक्षक भाई किसी हेतु से अनाथ वा किसी की स्त्री विधवा अथवा सन्तान अनाथ हो जावें अर्थात् उन का जीवन नहीं सकता हो और यदि गोकृष्यादि रक्षिणी सभा उन को निश्चित जान ले तो यह सभा उन की रक्षा में यथाशक्ति यथोचित प्रबंध करे ॥

३७ यदि गोरक्षक सभासदों में किन्हीं का परस्पर झगड़ा हो तो उन को उचित है कि वे आपस में समझ लेवें वा गोरक्षक सभासदों की न्याय उपसभा द्वारा उस का न्याय करा लें, परंतु अशक्या अवस्था में राजनीति द्वारा भी न्याय करा लेवें ॥

३८ इस गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के व्यवहार में जितना २ लाभ हो वह वह सर्वहितकारी काम में लगाया जावे किन्तु यह महाधन तुच्छ कार्य्य में

व्यय न किया जावे और जो कोई इस गोरक्षयादि को रक्षा के लिये जो धन है उस की चोरी से अपहरण करेगा वह गोहत्या के पाप लगने से इस लोक और परलोक में महादुःखभागी अवश्य होगा ॥

३९ संप्रति इस सभा के धन का व्यय गो आदि पशु लेने उन का पालन करने जंगल और घास के क्रय करने उन को रक्षा के लिये भृत्य वा अधिकारी रखने तलाव कूप बावड़ी अथवा बाड़ा के लिये व्यय किया जावे पुनः अत्युन्नत होने पर सर्वहितकार्य्य में भी व्यय किया जावे ॥

४० सब सज्जनों को उचित है कि इस गोरक्षक धन आदि समुदाय पर स्वार्थ-दृष्टि से हानि करना कभी मन से भी न विचारें किंतु यथाशक्ति इस व्यवहार की उन्नति में तन, मन, धन, से सदा परम प्रयत्न किया ही करें ॥

४१ इस सभा के सब सभासदों को यह बात अवश्य जाननी चाहिये कि जब गो आदि पशु रक्षित हो के बहुत बढेंगे तब कृषिआदि कर्म्म और दुग्ध घृत आदि की वृद्धि होकर सब मनुष्यादि को विविध सुख लाभ अवश्य होगा इस के विना सब का हित सिद्ध होना संभव नहीं ॥

४२ देखिये पूर्वोक्त रीत्यनुसार एक गौ की रक्षा से लाखों मनुष्य आदि को लाभ पहुंचाना और जिस के मारने से उतने ही की हानि होती है ऐसे निकृष्ट कर्म्म के करने को आप्त विद्वान् कभी अच्छा न समझेगा ॥

४३ इस सभा के जो जो पशु प्रसूत होंगे उन २ का दूध एक मास तक उस के बछड़े को पिलाना और अधिक उसी पशु को अन्न के साथ खिला देना चाहिये, और दूसरे मास में तीन स्तनों का दूध बछड़े को देना और एक भाग लेना चाहिये, तीसरे मास के आरंभ से आधा दुह लेना और आधा बछड़े को तब तक दिया करें कि जब तक गौ दूध देवे, ॥

४४ सब सभासदों को उचित है कि जब२ किसी को स्वरक्षित पशु देवें तब२ न्याय नियम पूर्वक व्यवस्था पत्र ले और दे कर जब वह पशु असमर्थ होजाय उस के काम का न रहें और उस के पालन करने में सामर्थ्य न हो तो अन्य किसी को न देसके किंतु पुनरपि सभा के आधीन करे ॥

४५ इस सभा की अंतरंग सभा को उचित है किंतु अत्यावश्यक है कि उक्त प्रकार से अप्राप्त पशुओं की प्राप्ति, प्राप्तों की रक्षा, रक्षितों की वृद्धि और बढ़े हुए पशुओं से नियमानुऽसार और सृष्टिक्रमाऽनुकूल उपकार लेना अपने अधिकार में सदा रखना, अन्य किसी को इस में स्वाधीनता कभी न देवे ॥

४६ जो कि यह बहुत उपकारी कार्य्य है इस लिये इस का करने वाला इस लोक और परलोक में स्वर्ग अर्थात् पूर्ण सुखों को अवश्य प्राप्त होता है ॥

४७ कोई भी मनुष्य इस सभा के पूर्वोक्त उद्देशों को किये विना सुखों की सिद्धि नहीं कर सकता ॥

४८ क्या ऐसा कोई भी मनुष्य सृष्टि में होगा कि जो अपने सुख दुःखवत् दूसरे प्राणियों का सुख दुःख अपनी आत्मा में न समझता हो ॥

४९ ये नियम और उपनियम उचित समय पर वा प्रति वर्ष में यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा घटाये बढ़ाये जा सकते हैं ॥

ओ ३ म् । सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शांतिः शांतिः शांतिः ॥

धेनुः परा दया पूर्वा यस्यानन्दाद्विराजते ।
आख्यायां निर्म्मितस्तेन ग्रंथो गोकरुणानिधिः ॥ १ ॥
मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्यासिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोयं कामधेनुपः ॥ २ ॥

॥ इति गोकरुणानिधिः ॥



विज्ञापन

—०:※:०—

यद्यपि आर्य्यावर्त्त देशीय जन अपनी दयालुता और परंपरा से अद्यापि पशुओं की हिंसा करने में महापराध ही जानते और मानते हैं तथापि विदेशीय पशु हिंसक निर्दयी जो कि पशुओं की हिंसा करने से संसार की हानि और उन अनाथ पशुओं को दारुण दुःख देते हैं उन के कारण इस देश के भी अज्ञानी जन पशुओं की हिंसा करने और मांस खाने में प्रवृत्त होते जाते हैं इस महापराध से सर्वथा संसार की हानि और उन अनाथ पशुओं का दारुण दुःख देख श्रीमत् स्वामीदयानन्द सरस्वती जी महाराज ने निज करुणारूपी अमृत से गाय आदि पशुओं की रक्षा और संसार के विविध सुख होने के लिये यह (गोकरुणानिधि) ग्रन्थ प्रकाशित किया है ॥

सब सज्जन महाशय राजा महाराजा तथा सर्कार गवर्नमेण्ट से यह प्रार्थना है कि पक्षपात को छोड़ इस ग्रन्थ को देखें और परम उपकार देने वाले पशुओं पर दयारूपी अमृत की वृष्टि करके उन दोनों को बचावें कि जिस से संसार अत्यन्त आनन्द हो ॥

जो सज्जन इस ग्रन्थ को लिया चाहें वे इस पते से पत्र व्यवहार करें ॥

ता० १ जुलाई सन् १८८६ ई०

भीमसेन शर्म्मा स्थानापन्न

प्रबंधकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग ॥

शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद

—३❋६—

जोकि

आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद और जैनधर्म वालों से

श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर और अवधदेश

की

आज्ञानुसार हुआ

और

मुन्शी शिवदयाल सिंह जी के प्रयत्नसे

वैदिक यन्त्रालय

प्रयाग

में

मुद्रितहुआ

संवत् १९४५ सन् १८८८ ई०

छपी

१०००

मूल्य प्रति पुस्तक





ओ३म्

भूमिका

—:-*-:—

उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद देना चाहिये जिस की प्रेरणा और परमकृपा से सब मनुष्य अपने २ कर्त्तव्य धर्मों में प्रवृत्त होते हैं उस परमात्मा ने अपनी परमदयालुता से सब प्राणियों के हितार्थ उस सर्वोत्तम विद्या का उपदेश किया कि जिस से संसार और परमार्थ का सुख सिद्ध हो। और परमेश्वर वही हो सकता है जिस के ऊपर कोई न हो और उस की आज्ञा भी सब के लिये एक सी होनी चाहिये यदि किसी समुदाय को अन्य उपदेश दे तथा किसी को भिन्न आज्ञा देवे तो समझिये कि उन दो समुदायों में विरोध कराने वाला ईश्वर ही हो जावे फिर ऐसे को ईश्वर मानना सिद्ध न हो सके गा इस लिये ईश्वर वही है जो सब के लिये एक हो और उस का उपदेश वा आज्ञा भी सब के लिये एकसी होवे। प्रयोजन यह है कि संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक मत जो प्रवृत्त हैं उन सब का मूल ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्य लोगों की ओर से हैं। इन मतों में जो २ बातें सब को एक सी मिलती हैं वे सब ईश्वरिय विद्या वेद से वहां २ गई हैं। जैसे ईश्वर को प्रायः मानते हैं और बहुधा ईश्वर के गुण कर्मस्वभावों को भी एक प्रकार से मानते हैं वे सब ठीक हैं और जो २ ईश्वर विषय में भी परस्पर विरुद्ध गुणादि मानते हैं वे सब बीच के बनावटी हैं। जो लोग नास्तिक समझे जाते हैं वे भी किसी सिद्ध पुरुष को सर्वज्ञादिगुणविशिष्ट अपना इष्टदेव मानते हैं पर उस को अनादि सनातन सिद्ध सर्वशक्तिमान् सृष्टि-

कर्त्ता नहीं मान ते। इस मन्तव्य में यह विरोध आता है कि जो अनादि न होगा और बीच में सिद्ध हो जाय गा तो वह अपने उत्पन्न होने से पहिले का हाल नहीं जान सकता क्योंकि पिता के जन्म का दर्शन पुत्र को होना कदापि सम्भव नहीं। जब ऐसा है तो उसको सर्वज्ञ मानना कदापि ठीक नहीं है। इस अनेक प्रकार के मत मतान्तर का फैलना मनुष्यों की अविद्या से होता है पर इस सृष्टि में जो २ सर्वज्ञहितकारी विद्वान् होते हैं वे प्रायः यही प्रयत्न करते हैं कि ईश्वरीय व्यवस्थानुसार सब का मन्तव्य ठीक २ हो जावे परस्पर का वैरविरोध मिट कर शुद्ध वैदिकधर्म की सर्वत्र प्रवृत्ति होवे। इसी के अनुसार श्रीमत् स्वामिदयानन्दसरस्वती जी महाराज ने भी प्रयत्न किया कि सब मतोंका वैर विरोध मिटा के एक वैदिक मत को सब मानें पर मतवादी लोग ऐसे पक्षपात में ग्रस्त हो रहे हैं कि आर्य लोग आंख से देखते हैं तो हम नाक से देखने लगें जब से श्रीमदुक्तस्वामी जी ने वैदिक आर्यधर्म की उत्तमता का उपदेश किया है तब से अनेक मतवादियों ने (अपनी वनावटी लीला को कटते देखकर) जहां तहां शास्त्रार्थ कर ने का प्रारम्भ किया परन्तु वे लोग शास्त्रार्थ करने में यदि विचारपूर्वक पक्षपात छोड़ के केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिये प्रवृत्त हों तवतो अवश्य अच्छा फल होवे परन्तु उन लोगों की दृष्टि यह रहती है कि हमारे पक्ष की मूर्खमण्डली (जिस से हमारा सब धनादि का काम निकलता है) गड़बड़ा कर हमारे फन्द से न निकल जावे इस लिये शास्त्रार्थ का हल्ला करके अपना विजय सब को प्रगट कर देवें गे। आजकल अनेक स्थलों में शास्त्रार्थ होते हैं पर उन से ऐसा कोई पूर्णलाभ नहीं होता कि जो अनेक सत्पुरुषोंको सत्यासत्य मालूम हो जावे तथापि बुद्धिमान् लोग उस विवाद में यथोचित बलाबल समझही लेते हैं इससे वैदिकधर्म की उन्नति शनैः२ होती ही जाती है ॥

जिला आगरा में एक फ़ीरोज़ाबाद नामक क़स्बा है वहां जैनियों का तीर्थ है प्रति वर्ष चैत्र में मेला होता है यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं वहां आर्य्यसमाज की उन्नति वा स्थिति होना कठिन होता है इसी के अनुसार नगर फ़ीरोज़ाबाद में भी आर्य्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महाअनिष्टकारी हुआ उन्हों ने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किये दो एक वार समाजमें अपना आदमी भेजा कि हम मतविषयमें शास्त्रार्थ करना चाहते हैं समाज से पत्रद्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं इस प्रकार की वातें आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थी कि इतने में सनातन आर्य्यधर्मोपदेशक श्रीस्वामिभास्करानन्दसरस्वती जो संवत् १९४४ फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातन धर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैन धर्मावलम्बी सेठ फूलचन्द जी ने कहा कि मत विषय पर वार्त्ता होनी चाहिये जिस का मत ठीक और सनातन निकले द्वितीय पक्ष वाला उसी का ग्रहण करे (स्वा० भा०) जी के साथ फूलचन्दने और उक्त स्वामी जी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिस का पक्ष गिर जावे वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तब स्वा० भा० जी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करने वाला हो उस को बुला ओ इस पर सेठ फूलचन्द जी ने पं० पन्नालाल जैनधर्मी को बुलाया वे किसी विशेष कारण से न आये तब यह वात निश्चित हुई कि प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो। इस वात का लेखभी समाचार पत्रों में छप गया था और यह वात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट हो गई दोनों पक्ष वालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को वुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पं० चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए परन्तु जैनपक्ष के पण्डित

द्वितीया को नहीं आये। आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आ गये तब सर्व सम्मति के अनुसार पं० गंगाधर जी उपदेशक आर्य्य-समाज जसवन्त नगर ने सेठ फूलचन्द जी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से प्रारम्भ होना चाहिये जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है इस लिये (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहिये जिस से शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो इस पर उक्त सेठ जी ने उत्तर दिया कि हमारे पं० लोग तृतीया को आजावें गे उसी समय सब नियमादि हो जावें गे। जब जैन पं० द्वितीया की रात को आगये तो उसी समय में समाज के मन्त्री और उक्त पं० गंगाधर जी ने फिर जाकर सेठ जी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बँधजाने चाहिये तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत हो जाने चाहिये जिस से शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो तब उन्हों ने यह कहाकि ये सब बातें सभा में इकट्ठे होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुननेसे दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्धकर्त्ता नियत किये गये आर्य्यों की ओर से सभापति आर्य्यसमाज फ़िरोज़ाबाद श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी और पण्डित गंगाधर जी और जैनियों की ओर से लाला मञ्जूलाल साहब तथा लाला प्यारेलाल साहब नियत हुए फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिये कहा गया वहपुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई ज़मीदार हो चाहे किसी मज़हब का क्यों न हो उस को दोनों पक्ष वाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्ष के शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा के अपने पास रक्खे जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उस को यथोचित रोके। इस पर सेठ फूलचन्द जीने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिये जावेंगे और शास्त्रार्थ का समय

भी उसी समय नियत कर दिया जायगा। मंत्री और पं० गंगाधर जी सब को धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुए आर्य पं० जनों से निवेदन किया कि उन्हों ने प्रातः काल शास्त्रार्थ के नियम पंच और विषय स्थिर करने के लिये कहा है सबकी सम्मति हुई कि प्रातः काल ही सही। तब प्रातः काल सेठ जी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया। अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जानो स्वप्न हुआ था प्रातःकाल और का और ही ठाठ रचमारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी नहींथे) लिख भेजा। इस पर मंत्री ने एक पत्र उर्दू जबान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिये कि यह पत्र आप का ही है ?। इसपर सेठ जी साहब के अनुयायी पण्डित आदि बहुत लाल ताते हुए और कहा कि हम को म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी। इसपर मंत्री और पं० गंगाधर जी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गये और कहा कि आपने पञ्चम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभीतक न किया तब उन्हों ने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिये और उत्तर दिया कि नियम और पंचमपुरुष का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा आप पत्र का उत्तर दीजियेमन्त्रीने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढी करने की आवश्यकता नहीं किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान नियम और जिनविषयों पर शास्त्रार्थ हों निश्चय करलेवें उन्हों ने मेरे कथन को सुना न सुना कर यही जवाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिये मंत्री ने कहा बहुत अच्छा परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा मंत्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उन का अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू

बनाया है आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं इसलिये मिलकर प्रबन्ध करना चाहते हैं और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो जबतक कोई और कारण खड़ा हो जायगा तो शास्त्रार्थ होना बचा रहै और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिये पत्र व्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे।

वह जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र यह है

यथा (श्रीः)

श्रीयदार्य्यसमाजसभ्यैः फिरोजाबादनगरस्थजैनधर्मिकृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम्।

शराब्ध्यङ्के द्व्यब्दीय प्रथमचैत्रशुक्लपक्षगुर्वन्विततृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरघोषितम्मुद्रितं च अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पाथोऽधिघण्टाध्वननावध्यद्यैव कर्त्तव्यः परन्तु शास्त्रार्थपदशक्यस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यावबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा—शास्त्रार्थानन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृतेभाषायां च जगद्वैदित्यन्वेयः। शास्त्रार्थापेक्षितजयाजयनिर्णेतृमध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातो वानुष्ठेयः—एतावतैवालमल्पाङ्कनतोऽप्यभिप्रायावगन्तृज्ञेषु।

संवत् १९४५ प्रथम चैत्रशुक्ल ३ गुरुवारे

भवत्स्नेहिनः फीरोजाबादस्था जैनधर्मावलम्बिनः नियतसमयात्पूर्वंपत्रोत्तराभिलाषिणश्च—हः छेदालालजैन

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फीरोजाबाद नगरस्थजैनधर्मवालों ने किये नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिये कि संवत् १९४५ के प्रथमचैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा इस प्रकार उन २ शहर आदि में आप लोगों ने कहा और छपाया

है इस से वह शास्त्रार्थ १० बजेसे ४ बजेतक आजही करलेना चाहिये परन्तु शास्त्रार्थपद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों के संस्कृत रूप होने से आपस में संस्कृत भाषण पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिये यह हमारी इच्छा है शास्त्रार्थ के पश्चात् उस का विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद करा के जगत् को विदित कराना चाहिये जय पराजय का निश्चय करने वाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है उस का विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिये । इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जान ने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है ।

समीक्षा—सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त जैन धर्मियों का संस्कृत पत्र कैसा है इस में शब्द अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियालाल तथा पं० मिहिर चन्द्र जी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इस का पूर्ण अनुमान इस से हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सब के समक्ष लिखे (जिन में मिहर चन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं उन में इस से बहुत अधिक अशुद्धियां हैं । अर्थरूप अशुद्धियां तो उन के भाषार्थ से ज्ञात हो जावेंगी (शराब्ध्यङ्के द्वद्वीय) यहां (ङ्कन्द्व) ऐसा चाहिये अस्तुछोटी २ बातों पर ध्यान न दे कर बड़ी अशुद्धि देखिये (मध्यस्थ विवेचनं ० ० ० वा नुष्ठेयः) विवेचनं नपुंसक लिङ्ग का विशेषण अनुष्ठेयः पुल्लिङ्ग के साथ किया है संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है । इस से यह अनुमान होता है कि यदि धनादि के लोभ वश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव नहीं ईश्वरविमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई जिस से उन की बुद्धि स्वस्थ न रही । आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं॥ इस उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र ही द्वारा उत्तर

ओ३म्

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु ॥

भवतां पत्रं समागतं रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितं, शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तारः पञ्च सज्जनाः पूर्वं नियोजनीयाः पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति । ततो यैर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः । यत्र २ विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्यएव ।

हस्ताक्षराणि गंगारामवर्म्मणः
संवत् १९४५ चैत्रशु० ३ फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ—श्रीमान् जैनधर्मावलम्बियोग्य—पत्र आपका आया रातको जो निश्चय हुआथा उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा । पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहिये इस के पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिये इस के अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो वह भी लिखना चाहिये ।

इस पत्र के जाने पर जैनियोंका द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया वह यह है—:

श्रीमदार्यमतानुयायिनः
भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्

शास्त्रार्थसमयः संस्कृतएव भविष्यतीति नियमः । मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्रएव लिखितः मञ्जूलालप्यारेलालौप्रबन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणिकारयितुमागतेभ्यो गंगारामवर्म्मभ्योऽर्वाणि विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थकाले भविष्यति यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्थानां-लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि । शास्त्रार्थलिखितसमयंमतीत्यपत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम् ।

संवृत् १९४५ १२ बजे दिन के ह: छेदालालजैनधर्मिणः
प्र०चै० शु० ३ वृ

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायि ! आपका भेजा पत्र मिला शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं । हमारी ओर से मंजूलाल प्यारेलाल प्रवन्धकर्त्ता होंगे । शास्त्रार्थ का स्थान जैन पाठशाला होना चाहिये सो हस्ताक्षर कराने को आये गङ्गाराम वर्मासे कह दियाथा । विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जाय गा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं । परन्तु समय नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा । शास्त्रार्थ का समय जो १० वजे का लिखा था उस के पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है ? ॥

इस पर आर्य्य समाज की ओर से उत्तर (संस्कृतहीमें)

ओ३म्

मावन्मारजित्कृन्तान्तसदसदुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः

तत्रभवतां पत्रमातुङ्गितम् । श्रुतार्थानिहाः पूर्वभाविनियमेतरेतरीररीकृता-नन्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः । जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतक्रि कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयवकिवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावान् । धादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम् । यच्चोक्तं शास्त्रार्थकालएव विषयो निर्णेयइति तन्न कुतः सति कुड्ये चित्रं भवतीतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः । यच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम् ।

प्र० चै० शु० ३ सं० ४५ ह: गङ्गारामस्य

भाषार्थ— श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होने वाले महाजनोंमें श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियो !

आप का पत्र आया—शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत हो जाने के पश्चात् दोनों पक्षवालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिये जय पराजय का निश्चय कर्ता कोई निज मनुष्य

नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्य वक्ता पक्षपात-रहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनों पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो वह मध्यस्थ हो सके सो सर्व गुणाकर पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होनेसे मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है इस लिये वादि प्रतिवादि के लेखद्वारा स्पष्ट किया हुआ विषयही जय पराजय का सूचक हो जाय गा अर्थात् उस लेख से अपनी २ बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे। और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय करलें गे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जबतक भित्ति (दिवार) न बन जावे तबतक उसपर चित्र विचित्र चिन्ह धरना बन नहीं सकता इसी प्रकार पहिले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ का आरम्भ होसक्ता है। और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय होजाने बाद उत्तर देने में क्या कारण है सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हमलोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई तो (इक तर्फी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीत कर हुआ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का जो तृतीय पत्र आया वह यह है कि॥

श्रीमदार्यमतानुसारिणः

द्वितीयपत्रङ्घण्टात्रयकालात्ययउपलब्धम्

भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्यस्थासम्भवोऽभाणि—लेखद्वारा जयाजयस्पष्टताऽङ्गीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषयनिर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषयेकिञ्चिदपि नाऽभाषि—यदि विषयनिर्णयोत्तरमेव शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापणङ्किंविचार्य्याकारि मध्यस्थासम्भवे शास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्र्यादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्त घण्टा ध्वानिमारभ्यदशघ-

पश्चाच्चनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्यः विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः—नोचेदलम्वृथा समयात्ययेन—

सं० १९४५ प्र०चै०शु०३ व ४ बजे   ह० छेदालालजैनधर्मिणः ।

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्य मतानुयायियो ! आप का दूसरा पत्र तीन घण्टा में मिला आपने जयपराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेखद्वारा जयपराजय स्पष्टता स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने से पहिले विषय का निर्णय चाहते हो ! शास्त्रार्थ का स्थान समय तथा संस्कृत वा भाषामें होने के विषय में कुछ नहीं कहा जो विषय का निश्चय होने पश्चात्ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचार पत्रोंमें विषय का निर्णय किये विना क्या विचार के छपाया था (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव है लेखद्वारा शास्त्रार्थ तो वादिप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है । फिर उस २ समाज के मन्त्री आदि के यहां एकत्र करने का क्या प्रयोजन था तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैनपाठशाला स्थान में आकर करना चाहिये । शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिये और यह न होतो व्यर्थ समय न खोना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिये ॥

विशेष—सब महाशयों को ध्यान देना चाहिये कि हमारे लेख में और इन में क्या भेद है । हमने लिखाथा कि दोनों पक्षकी सम्मतिसे पहिले नियम स्थिर हो जावें फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे सो नियमों के लिये तो कुछ उत्तर न दिया इस कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पक्षके अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी होंतो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाया चाहते हैं । शास्त्रार्थ का विषय समाचार पत्रों में छपाया तो उस का अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर

सकता कि विनाही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जायगा। ऐसा हो तब तो विना कारण के भी कार्य्य हो जाया करे जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटा से भोजन बनाऊंगा। इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं जैसे अभाखि अनाषि आदि अस्थान में प्रयुक्त हैं (पूर्वम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि ओष्ठ्यवकार के परे परसवर्ण हो सकता है दन्त्योष्ठ्यके परे नहीं होता। इत्यादि अनेक २ अशुद्धियां हैं ॥

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर ॥

ओ३म्

श्रीमत्सौमन्तमतावलम्बिषु

भावत्कपत्रमागतमालोक्येदमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थस्थानसमय—संस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मितनियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः। समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं वाधकं मन्यते भवद्भिः। शास्त्रार्थः सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थंपरिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव। समयश्चभवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि। यदि तत्र भवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मितनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु यदि काचिद्विप्रतिपत्तिःस्यात्तदाभिमतविषयनियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु। अद्यतु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः। यतः कालादारभ्यसायं प्रातर्वाश्वो भविता स लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम् ॥

ह: गंगारामस्य ४॥ वजे

भाषार्थ—श्रीमान् जैन धर्मियोंके समीप निवेदन—

आप का पत्र आया उस का उत्तर दिया जाता है—शास्त्रार्थ का स्थान समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भा

षा में बनाये नियमों में हैं सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचार पत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किये विना शास्त्रार्थ होगा विषय का निश्चय हुए विना शास्त्रार्थ होना ही अशक्य है इस में क्या आप कुछ वाधक समझते हो? ॥ शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिये उस का लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिये है । आपने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा उस को हम लोग भी स्वीकार करते हैं॥

यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ किया चाहते हो तो बार २ पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है ?। किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाये नियमों को स्वीकार कीजिये यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिख कर भेजो। आज तो आप के नियत किये समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल जब से जब तक होना चाहिये सो आप लिखिये जिस से हम लोग भी पहिले से जानलें और उद्यत रहें।

इस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्न लिखत नियम और विषय जैनियों के पास भेजे गये थे

१—शास्त्रार्थ में पांच पुरुष प्रवन्धकर्त्ता होने चाहिये दो २ उभय पक्ष की ओर से रहें जिन को अपने २ पक्ष वाले नियत करें एक प्रवन्धकर्त्ता सभापति मध्यस्थ हो जिस को दोनों पक्ष वाले सम्मति कर नियत करें॥

२—शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में वा सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिस को उभय पक्ष स्वीकार करे॥

३—शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें

४—दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहिले अपनी २ ओर से लिख के एक दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रक्खें

५—सभा में एक बार में एक ही वादी वा प्रतिवादी बोले अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे

६— प्रश्न के लिये जितना समय रहे उस से चौगुना समय उत्तर दाता को मिले

७—अपनी २ पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पांच २ मनुष्य शास्त्रार्थ के लिये नियत करें

८—जो २ विषय शास्त्रार्थ के लिये नियत हो उस से विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे

९—यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रति में लिखा जावे दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तर दाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच २ होते जावें

१०—शास्त्रार्थ दोनों पक्ष वालों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो पर प्रश्न वा उत्तर लिखाने पश्चात् उस का आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे

११— एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार वा दश बार से अधिक न होना चाहिये ॥

१२—संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आपड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे उस को प्रथम नियत कर लेवें ॥

१३—शास्त्रार्थ जैन धर्मियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घंण्टे वाद उठने पर किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा अर्थात् प्रति दिन चार घंटा से अधिक न होना चाहिये ॥

१४—उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने २ मत को मानते अवश्य हों अर्थात् अन्य मतावलम्बि पुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा ॥

१५—दोनों पक्ष वाले वादी प्रतिवादी प्रश्न वा उत्तर करने के लिये १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे ॥

१६—यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदला चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा । सभापति की आज्ञा विना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा

शास्त्रार्थविषय

१—अनन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा

२—जीवः कोऽस्ति तस्य चेश्वरेण कः संबन्धः ॥

३—चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराः केऽभूवन् किं च तेषां सामर्थ्यम् । कियत् परिमाणानि च तच्छरीराणि

४—जीवरक्षा च क पर्य्यन्तं भवितुं शक्या ॥

५—रथयात्रा काऽस्ति किमर्थं च कर्त्तव्या ॥

६—अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्वज्ञानं वेति ? ॥

१—भाषार्थ—जिस का एक सर्वोपरि से भिन्न कर्त्ता नहीं हो सकता ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ? ॥

२—जीव कौन है और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ! ॥

३—चौवीश तीर्थंकर कौन हुए उन का क्या २ सामर्थ्य था ? । और कितने २ बड़े उन के शरीर थे ?

४—जीव रक्षा कहां तक हो सकती है ?

५—रथयात्रा क्या है और किस लिये करनी चाहिये ? ।

६—और को और समझना मिथ्या ज्ञान है वा तत्वज्ञान ?

इस पर जैनियों का जो पत्र आया वह यह है ॥

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्रादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियतसमयद्वयात्ययनञ्च कृतम्—इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्त्तुमसमर्था इत्यनुमितामित्यलम्

संवत् १९४५ प्र० चै० शु० ३ वृ १० वजे　　　　ह: छेदालालजैनधर्मिणः

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रवन्धकर्त्ता आदि का निश्चय हो जाने पर भी तुम नहीं आये शास्त्रार्थ के नियत किये दो समय भी टाल दिये अब दश बज गये इस से तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो यह अनुमान है ॥

विशेष—इस से पहिले जो पत्र भेजा उस के साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मंत्री और श्रीचतुर्वेदी कमलापति जी सभापति सेठ फूलचन्द जी के पास इस अभिप्राय से गये कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा पड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा इस लिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्रीने सेठ जी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख सुन कर सम्मति कर लीजिये इस पर भी उन के सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिये। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा पर उन्हों ने सिवाय लवड़ धों २ के प्रवन्ध की बात एक भी नहीं माना इस के पश्चात् मंत्री आदि चले आये और नियम जो लेगयेथे उन को पत्र द्वारा भेजे उस का उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा जिस का हमारे पत्र से कुछ संवन्ध नहीं हमने कुछ लिखा उन्हों ने उत्तर कुछ और ही दिया (आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे) इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि " प्रवन्ध कर्तादि का निश्चय हो चुका तो भी तुम नहीं आये" क्या हम लोग इन के नौकर हैं जो इन के बुलाने मात्र से इन के घर पर शास्त्रार्थ के लिये चले जाते और प्रवन्ध कर्तादि का निश्चय कहां हो चुकाथा? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ? शास्त्रार्थ के मूल कारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। विना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय अपने मन माना लिख भेजा क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था जिस को

हम निर्विवाद मान लेते (जो महाशय इस पर ध्यान देंगे उन को यथावत् ज्ञात हो जायगा कि जैन लोग विना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला कर के अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे) इस के पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्य्यों की ओर से उत्तर दिया गया—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः

पूर्वमप्यस्माभिरलेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा नु प्रमाणीकृतं स्यात् । यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः । यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति । अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं तदिदानीं सद्योदातव्यमिति ।

हस्ताक्षराणि

प्र० चै० शु० ३ सं० १९४५ गङ्गाराम वर्म्मणः फिरोजाबादस्थार्य-समाजामात्यस्य

भाषार्थ—पहिले भी हम ने लिखा था (कि सब से पहिले नियम स्थिर करना चाहिये तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किये विना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिये ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला कुछ उत्तर नहीं दिया इस से तुम्हारा पराजय हुआ । यदि आप नियम पत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उल्हाना मान भी लिया जाता । यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुतः अन्तःकरण से चाहते हैं तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं । यदि आप नियमों के विना ही हल्ला गुल्ला किया चाहते हो तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है । हम लोगों ने जो पत्र भेजा था उस का उत्तर आप ने कुछ नहीं दिया सो उत्तर शीघ्र दीजिये ।

यह उक्त पत्र जब भेजा गया तब इसपर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया उन की ऐसी लीला देख कर सामाजिक पुरुषों ने वस्ती के भद्र पुरुषों को बुला कर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियमों को स्वीकार कर लीजिये प्रयोजन यह था कि हमलोग जो नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उन को मध्यस्थ होकर देख लीजिये कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एकसा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है? इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उन की वातें सुनके और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्द जी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते? इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की वातें कहीं जिससे शास्त्रार्थ के होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्र जनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं। ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि हम को ठीक निश्चय हो गया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु टालाटूली करते हैं हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनों का पराजय हुआ। इसपर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत् पुरुषों से एक पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिये वह पत्र यह है:—

हम सत्य परमात्मा को जान कर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ से जैनियों के पास गया मैंने शास्त्रार्थ करने में जैनियों का इनकार पाया हस्ताक्षर लक्ष्मी चन्द गुप्त॥

ह० गुलजारी लाल

ह० रघुवर दयाल)

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे सब को विश्वास हो गया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा कल अपने २ घर चलेंगे। यह सब समाचार ता: १५ मार्च को हुआ इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ सब लोग सो गये।

ता० १६ मार्च ८८ ई० को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच संध्यादि करके आये तब तक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हठ गये बहुतेरे लोगों ने तो जैनि सेठ जी से जा २ कर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे तब तो सेठ जी को बड़ा बिचार पड़ा इधर आर्य्यसमाज की ओरसे भी दो एक पुरुष गये और सेठ जी से कहा कि अबभी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिये नहीं तो हमारे पं० आज अपने २ स्थान को जावेंगे। इस पर सेठ जी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजूलाल प्यारेलाल जी आ जावें तब सलाह करके उत्तर देवें पश्चात् सामाजिक जन चले आये इस के पश्चात् सेठ जी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनि लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्द जी और आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा जी दोनों महाशय जैन पाठशाला में बैठ कर नियमों को निश्चय कर लेवें और उन को दोनों पक्ष वाले स्वीकार करें जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया। सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्मा और चतुर्वेदी कमलापति जी सभापति जैन पाठशाला में गये और सेठ फूलचन्द जी वहां इसी लिये जा कर बैठे थे। वहां पहुंचकर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्द जी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हीं को काट बढ़ा के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्धप्रति कराली जावे सभा के आरम्भ

में पांचो प्रवन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें इस प्रकार बातें चीतें होते २ दश बज गये थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था इस लिये उसी समय नक़ल हो कर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करने थे। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नक़ल कराई गयी और सब ने भोजन किये तबतक शास्त्रार्थ का समय आ गया ॥ मनुष्यों को शा० में जाने के लिये टिकट बंट गये थे टिकट सेठ जी की ओर से बांटे गये थे उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्य लोग जैन पाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आये कोतवाल साहब कितने ही यम दूतों के साथ प्रवन्धार्थ आये जब सब लोग यथावस्थित बैठ गये तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्द जी ने नियत किये हैं वे सभा में सुना दिये जावें पश्चात् प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर हो जावें तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे इसपर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दियेजावें—वे नियम ये हैं।

(१) सभा प्रवन्ध के लिये पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुए आर्य्यों की ओर से चौवे कमलापति जी और पं० गंगाधर त्रिपाठी जी जैनों की ओर से लाला मंजूलाल जी और लाला प्यारेलाल जी और उभय पक्ष की ओर से एक चौवे ज्वालाप्रसाद जी सभा-पति० इन पांचों महाशयों को निम्न लिखित नियमानुसार सभा का प्रवन्ध करना होगा।

(२) सभा में वे महाशय जांय गे कि जिन के पास टिकट होगा पर वे सभास्थ पुरुष दो सौ से अधिक न हों गे।

(३) प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहिये प्रश्न के लि-ये पांच मिनट और उत्तर देने के लिये २० मिनट समय नियत किया है और जब तक एक प्रश्न पर पूरी वार्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

(४) उभय पक्ष की ओर से दो २ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित हो कर वार्त्ता करैं अर्थात् आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्त जी और पं० भीमसेन जी और जैनों की ओर से पं० छेदालाल जी और पं० पन्नालाल जी इन से भिन्न कोई न वोल सके गा ।

(५) यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायगा दो प्रति उभय पक्ष की ओर से तीसरी सभापति की ओर से और इन तीन प्रतियों पर उभय पक्ष के पं० और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहिये ।

(६) शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सव को सुना देना चाहिये ।

(७) शव्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा बिचार न किया जाय गा सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे ।

(८) उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के मानने वाले हों अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलें गे

(९) उभय पक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे ।

(१०) शास्त्रार्थ जैनों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घंटे से अधिक प्रतिदिन न होगा समय की पूर्त्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिये ।

(११) ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहे गा कदापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सके गा ।

ये सब नियम सुनाये गये इस पर जैन लोगों ने अनेक शंका पैदा ी और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए इस प्रकार रस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ इस

का कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग भाषा में होने का हठ करते थे। आर्यलोग संस्कृत में होनेपर इसलिये बलदेते थे कि जैनि लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द और जियालाल (जिन को कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे वस्तुत: जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का वल नहीं था परन्तु उन में (निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जैसे वृक्ष रहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी वड़ा वृक्ष मालूम होता है वैसे) छेदालाल पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे सो सेठ फूलचन्द जीने भी इन के ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पं० मिहिरचन्द और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरो से शास्त्रार्थ का बल बांधा था और इसी बल से संस्कृत के करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी पर जब नियम स्थिर किये गये तब यह निश्चय हो गया कि अन्य पक्ष का पं० अन्य की ओर से मुख़त्यार बन के शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो २ पं० जिस २ पक्ष की ओर से नियत हो वह उस मत को यथावत् मानता हो इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गये जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इनकार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सव लोग कुछ नहीं समझेंगे इस से भाषा में होवे। इस का उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी वल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी इस लिये संस्कृत में ही होना चाहिये इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते २ जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया इस पर दोनों ओर से वहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्द जी श्रीधर जी तथा जो २ पं० आर्य्य समाजी और जैनियों

के मत में नहीं उन में से चाहे जो पं० मध्यस्थ कर लिये जावें जो शास्त्रार्थ लिखापढ़ी द्वारा हो सो उन के पास भेज दिया जावे जिस के पक्ष को वे अच्छा बतलावें उस का पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ हो कर सत्यकहे बहुधा पं० लोग थोड़े २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते हैं (जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैन मत को मानते नहीं तथापि धन लोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खण्डन करने आये हैं) तो किस का विश्वास किया जावे? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और वह धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवें गे) मेरी समझ में जैन लोग तो ऐसे हठीले हैं कि उन के तीर्थंकर पार्श्वनाथ साक्षात् आकर जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानें गे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हजार पांच सौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पं० रूप वाजीगरों से बजवा देंगे। इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहिले नियम भले ही मतमानो किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नये नियम बना लिये जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिये तथा विना नियमों के हम शास्त्रार्थ न करें गे।

जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई अवश्य होवे। ऐसा होते २॥ अढाई घंटे बीत गये सभा के सब लोग व्याकुल हो गये और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग (चाहें किसी कारण से) शास्त्रार्थ न करें गे उन्हीं का पराजय समझा जायगा।

यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि बिना नियमों के ऊटपटांग शास्त्रार्थ किया जावे । (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति कर लीथी कि आर्य्य लोग विना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करें गे इस लिये हम नियमो को तोड़ देवें और कह देवें गे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया इस से उन का पराजय हो गया) तो भी अनिष्ट परिणाम देख कर विचार किया कि हम अब विना ही नियमों के शास्त्रार्थ करें गे । परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में शास्त्रार्थ कर्त्ता दोनों पक्ष के पण्डितों के नाम लिख लिये थे । इस के पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिये तब (अहमहमिका) झगडा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को दे देवें इस के अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ ।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ प्रथम दिन ता० १६ मार्च सन् १८८८ई०

प्रथम पत्र जैनियों का

प्रथम प्रश्न । भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं ॥ प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन ॥ प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं ॥ कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः ॥

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः
ह० पंनालाल जैनमतानुयायिनः ।

भाषानुवाद—भो विद्वानों में श्रेष्ठ जनो ! जगत् में वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण (मिहिरचन्दकृत भाषानुवाद "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है पदार्थ शब्द षष्ठ्यन्त है उस को द्वितीयान्त करना

ठीक नहीं केवल—अस्ति—सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है। इस लिये उस का स्वरूप क्या है। उस के भेद कितने हैं उस का विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है। उस का स्वतः प्रामाण्य वा परतः प्रामाण्य है यह हमारा प्रश्न है॥

इस के साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न दिये गये।

प्रथम पत्र आर्यों का

सुखमार्गान्वेषणार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति। जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः। जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः। जिनजैन-पदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति। तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा यदि सफलं तर्हि किंफलकम्॥

ह० भीमसेनशर्म्मणः

ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवाद—सुख का मार्ग खोजने के लिये सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन संप्रदाय से कैसे हो सकती है। जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन जैन का वाच्यार्थ क्या है और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध है। जिनशब्द वाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य? जिनजैन इन दोनों पदों और इन के वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल है वा निष्फल? यदि सफल है तो उस का क्या फल है?।

विशेष—यह पत्र लिख कर जैनियों को दिया गया और इस से पहिला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्य्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है वह आर्य्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है? और साथ ही इस पर भी

ध्यान रक्खें कि जैनियों के पत्र का जो आर्य्यों ने उत्तर दिया है वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है ? ॥

आर्य्यों के प्रथम प्रश्न के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र

मानाधीनामेयसिद्धिरिति न्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः । तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः ॥

ह० छेदालाल

ह० पंनालाल

भाषानुवाद—प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहिले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है क्योंकि प्रमाण निश्चय के विना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है इस से हमारे कहे पूर्व पक्ष का पहिले विचार करना चाहिये । इस पत्र में (ममोक्तपूर्वप्रक्षस्य) यह बड़ी भारी अशुद्धि है विद्वानों को इन का पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जाय गा । इन पहिले दो पत्रों में बड़ी २ अशुद्धि कम हैं क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहिले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे तब आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ आर्य्यों और जैनियों का है यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे । इस पर मिहिरचन्द्र चिड़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं किन्तु दोनों को पतित समझता हूं । परन्तु । यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार (संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्) वैदिकधर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षों से आचरण करने वा उन का धान्य खाने से मैं भी पतित हो गया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरों को पतित

कहते ? । एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता । चोर चोर मौसियाते भाई होते हैं । इस से मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की ओर नहीं दोनों को पतित समझता हूं परन्तु रुपये की ओर हूं क्योंकि रुपया पतित नहीं है उसी से प्रयोजन है । अब आर्य्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है उस को ध्यान देकर प्रश्न के अक्षरों से मिलाइये ।

जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्य्यों का दूसरा पत्र

अपदं न प्रयुञ्जीत इति शब्दशास्त्रनियमात्, अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात् प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम् । यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः । अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् । अतश्च तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थएव । तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद—व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिस में विभक्ति नहीं ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करे पद उस को कहते हैं जिस के अन्त में सुप् और तिङ् हो इस कारण प्रथम प्रश्न "यह शब्द व्याकरण से विरुद्ध होने से प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" के तुल्य लिखा गया है क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे ? । इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं "एक विसर्ग मात्र की अशुद्धि है" क्या व्याकरण में विसर्ग मात्र की अशुद्धि कम होती है ? । कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीक्षा करें गे विद्यार्थी ने कहा—महाराज मेरी परीक्षा तो

आप करें होंगे पर आप की परीक्षा परीच्छा शब्द से पहिले ही हो गई वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र का हुआ कि जिन को विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इन में कौन वकार लिखना चाहिये इस से इन की भी परीक्षा हो गई और सब को ज्ञात हो जावे गी । क्या इसी पाण्डित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं (अस्तु) यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों में प्रमाण नहीं समझा जावे गा ? जब जगत् के सब पदार्थों में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेय रूप में आगया तो उस के भी प्रमेय हो जाने से प्रमाण रहा ही नहीं फिर उस का प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है। जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उस को निर्णय किया चाहते हो तो उस के निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहो गे वह सब साध्य पक्ष में आजाने से प्रमेय हो जायगा क्योंकि तुम सर्व-साधारण पदार्थों को प्रमेय कह चुके हो तो तुह्मारा प्रमाण विषयक प्रश्न भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है । इस से तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आगया । यदि कहो कि हम को अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुम ने प्रमाण को निश्चित समझ लिया फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बनता । यदि तुम को प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता है वह सब प्रमाणपूर्वक है जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है इस से क्षुधा की निवृत्ति हो कर सुख होगा इस लिये भोजन करें यदि सन्देह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है वा नहीं तो भोजन करना

भी न बने। मनुष्य जिस को नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है उस को ग्रहण करता और जिस को दुःख का हेतु जानता है उस से सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक होता है तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाण पूर्वक होने से तुम ने प्रमाण को जान लिया फिर प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक् २ शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो३ तीन४ चार और आठ हैं। प्रमाण फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है॥

इस आर्य्यों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

जैनियों का तीसरा पत्र

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणाभावेन प्रमेयत्वात्। प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः। कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्ष्याक्रान्तत्वेन दूषणगणबाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वेसिद्धे व्यर्थएव। एतदप्ययुक्तं कुतः यदि असमत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नोचेत्समायातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथा शास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्टाः अपि च प्रमाणविषयोनोक्तः किं तर्हि अस्ति वा नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्राभाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात्॥

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पंनालाल जैनमतानुयायिनः

भाषानुवाद—आप ने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया इस से प्रमेय

हुआ तो प्रमाण विषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ यह आप का लिखना विना विचारे है क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषयरूप हैं प्रमाणरूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आ जांय गे और यह भी आप का कहना अयुक्त है कि प्रमाण पूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण विषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हो तो अंगीकार करो जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया इस से प्रमाणविषयक हमारा प्रश्न सार्थक है और उस के भेद शास्त्र के अनुसार दो २ तीन ३ चार ४ वा आठ हैं यह लेख भी विशेषरहित संदेह रूप है क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद हैं और किस प्रकार से कहे हैं और प्रमाण विषय नहीं कहा वह है या नहीं स्पष्ट कहो और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा सो इस आप के कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ और उस का प्रामाण्य स्वतः परतः होता है इस आप की उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नाई स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती।

विशेष—जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां हैं जैसे—१—हेत्वाभासरिति। २—विषयिरूपत्वात्। ३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्ठाः। ६—नैकान्तकः। ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वंतु। इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धियां हैं। यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उस से पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई हैं। इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इन के पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं जिन से जैन पण्डितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी.

इस के आगे जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

आर्य्यों का तृतीय पत्र

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वम प्रमाणपूर्वकत्वं वा। यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम्। यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिन पदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद —सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक होते हैं वा अप्रमाण पूर्वक ? अर्थात् शोच समझ के मनुष्य कार्य्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान। यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं तो आप का प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाण पूर्वक हुआ अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना तो तुम को प्रमाण का बोध हो गया अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके तो प्रमाण में सन्देह न होने से तुह्मारा प्रमाणविषयक प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि बिना प्रमाण के व्यवहार होते हैं तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथम पत्र में लिखे जिनजैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचार पक्ष में लाने योग्य मानते हो तो जिन पद और उस के वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य हो गया किन्तु सिद्ध नहीं रहा इस से यह आया कि जब तुम को अपने जैन मत पर विश्वास नहीं यदि विश्वास होता तो उस को प्रामाणिक मानते जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में सन्देह न होने से प्रश्न क्यों करते जब तुम को अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है ?। इस लिये तुम्हारे मत में

सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा क्यों कि प्रमाण वही कहाता है कि जिस से विषय का निश्चय और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करें वह प्रमेय कहाता है सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का ठहरना भी दुस्तर है।

यह पहिले दिन ता० १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ सब अपने २ घर को चले गये। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कलकत्र शास्त्रार्थ होगा उस का समय पहिले से नियत होना चाहिये परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिक्रिर नथी और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोता जनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था इस से जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था क्यों कि जैनियों के प्रतिपक्षी आठो प्रहर कटिबद्ध हो रहे थे इस कारण आर्य्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करने पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था उस का उत्तर जैनियों को देना था और जैनियों के तृतीय पत्र का उत्तर आर्य्यों को देना था आर्यों का पत्र जैन ले गये थे और जैनियों का पत्र आर्य्य ले गये थे और अपने २ घर विचार पूर्वक उत्तर लिख कर लाये जैनियों को उत्तर लिखने के लिये घर पर अन्यमतावलम्बी पं० लोगों की सहायता मिल गई जिस से अच्छे प्रकार लिखा।

द्वितीय दिन ता० १७ मार्च आर्य्यों के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र।

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्य-युक्तं। नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा

कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात् । प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमशक्यं। येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात् ॥ नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः । यूयं जानीथ नवेति पृच्छते । अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्वेन नायोग्यत्वं । अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यदस्मदुक्तपदार्थानाम्मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं नतु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं ॥ अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः ॥ अंततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इतिलेखकाद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृष्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम् ।

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—आप ने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक है या अप्रमाण पूर्वक यह आप का कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक ही होते हैं या अप्रमाण पूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाण पूर्वक कोई अप्रमाण पूर्वक होते हैं और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाण पूर्वकता है वह प्रमाण क्या? इस से हमारा प्रश्न सार्थक है और हम को तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है पूछते इस लिये हैं कि आप भी उस को जानते हैं या नहीं हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्मत इस से अयोग्य नहीं है हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आप की इच्छा है वे जैसे प्रमेय हैं उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते हैं परन्तु जो मेय है वह साध्य अवश्य होता है यह नहीं कह सक्ते क्योंकि व्याप्ति का अभाव है इसी लेख से आप ने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उस का अर्थ भी साध्य हुआ

इस से तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं यह आप का कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है इस से हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आप ने भी प्रमाण के विना प्रमेय का अभाव होता है यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण कूं माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं यह हमने जान लिया।

विशेष—यह पत्र लिख कर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं पीछे आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्त शास्त्री जी ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के सम्बन्ध में कहा इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े हो कर कहा इस पर भीमसेन शर्मा ने कहा। जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिये समय दिया गया इस पर तो जैनी प्रसन्न थे पर जब आर्य्य पण्डित बोल चुकें तब फिर भी पीछे बोलना चाहें तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलो गे—उतनी बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलें गे। अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उन के उत्तर दे कर जैन मत की पोल खोल ने का प्रारम्भ किया (जिस को प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत को गोलमाल पोलपाल को दवाते थे कि हमारे मत पर विचार न चल ने पावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न हो कर भाषा में वोलने में टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी इस लिये भाषा में बोल कर समय पूरा करें परन्तु आर्य्यों की इस में भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किये पीछे

जैन मत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई। पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देख कर शास्त्रार्थ के स्वीकार कर्ता जैन पत्नी सेठ फूलचन्द जी को अनेक जैनों ने जा २ कर धमकाया और कहा कि तुम ने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं इस प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्द जी को लज्जित किया इस से सेठ फूलचन्द जी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसरे दिन से सभा में नहीं आये थे। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इस से प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया।

आर्यों का चौथा पत्र जैनियों के तृतीय पत्र के उत्तर में

ओ३म्—तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्च तदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किंभवद्भिरंगीक्रियते? । यदिविषयिरूपत्वमूरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्त्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं

सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते—यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद—तीसरे पत्र में नव अशुद्धि निश्चित हुई हैं सो जैनियों के तीसरे पत्र के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धियां व्याकरण का बोध न होने से हैं यह निश्चित हो है। यद्यपि इस तृतीय पत्र में जो विषय है उस का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिस से विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जाय गा तो उस को प्रमेय कहें गे प्रमाण नहीं कह सकते फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिये यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हो और अन्य पदार्थ उस के प्रकाश से देखे जावें वह प्रमाण कहाता है जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिये द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती ऐसे ही प्रमाण वही है जिस को सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं किन्तु वह स्वयं सिद्ध है। कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करने पड़ता है तब उस को प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे के नेत्र हैं कैसे हैं मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है तब वह यह नहीं विचारता कि जिस कानून से मैं न्याय करूं गा उसी को पहिले निश्चय करलूं कि वह कानून ठीक है वा नहीं किन्तु कानून के अनुसार न्याय करने लगता है ऐसे ही मत विषय

पर विचार होना चाहिये प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इस लिये इस पर बार २ लिखना पिसे को पीसना है तथापि यह कहते हैं कि—यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिनजैनादि पदार्थों को आपने विषयीरूप माना वा विपयरूप माना है इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो? । यदि कहो कि जिनजैनादि को विषयीरूप-प्रमाण मानते हैं तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं इस से पूर्वापर वद तो व्याघात हो जाय गा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया इस से तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है इस से कोई दोष नहीं आता। अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाण विषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो तब प्रमाणविषय को पूछना । परन्तु तुमने जैन मत को ग्रहण किया तो उस को कुछ अच्छा समझ लिया होगा इस लिये हम को जो तुम्हारे जैन मत में शङ्का हैं उन प्रश्नों का उत्तर दीजिये। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आप को प्रमाण विषयक उत्तर बराबर देते आते हैं। ऐसे कहां तक टालोगे। हमारे किये प्रश्न पर सब से पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्राणीमात्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हम को सुख मिले और दुःखों से छूटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहें गे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का

कल्याणकारी कौन मत है यही हमारा प्रश्न है। इस का उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया। जैन मत पर जब परीक्षा चले गी कि जैन मत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाण है इत्यादि विचार होने में जैन मत की समीक्षा प्रमाण से होगी तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध हो जाय गा इस लिये प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये। उन जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिये कि—यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्य वाला है तो वही सनातन सर्वनियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जाय गा ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वयमेव कट जाय गा यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा तो उस आधुनिक जिनके अनित्यत्वादि गुणों का आरम्भ है क्यों कि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगये समाचारों को नहीं जान सकता ऐसा हो तब तो पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे सो असम्भव है इस लिये किसी समय विशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता फिर ऐसे अल्पज्ञ जिन की उपासना कदापि कल्याण कारिणी नहीं हो सकती इस लिये यह जैन संप्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता। इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुना कर जैनों को दिया और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुना कर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्ष के पण्डितों ने कहा पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे उन्हों ने ता० १७ को सन्ध्या से वार २ संदेशा भेज कर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुर प्रसाद शास्त्री जी आगरे से

आगये थे इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसाद जी आर्यों की ओर से बोले और विशेष कर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फीरोजाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुर प्रसाद जी भी बोलें तो ठीक हो अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे । प्रथम पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री को नियत करने का विचार चला इस पर जैनियों ने बहुत वाद विवाद चलाया उन की इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें वा आर्य्य लोग यह कह देवें गे कि पं० ठाकुरप्रसाद जी को न बोलने देओ गे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करें गे तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावे सो आर्यसमाजस्थ उन को कब छोड़ते थे । अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने पश्चात् दो बजे शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ ।

आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्र

यच्च पूर्वपत्रेभवद्भिरुटङ्कितं न लिखितप्रश्नानामुत्तरन्तु जातं भूयपिष्टपेषणवद्भ्रमइति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेत्यशिरस्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति ॥ तदपि चित्रं खपुष्पमितिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परतइत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वंविषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमुरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादि पदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिबालभाषितं आम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादीनां विषयविषयित्ववरणनात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति

यत्र २ साध्यस्तत्र २ विषयो नेति व्याप्तेरभावात् किञ्च जिनमतं सप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतप्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः दृढं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः ॥

ह० पन्नालालजैनधर्मिणः
ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—जो पहिले पत्र में आप ने कहा कि आप के लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके फिर पिष्टपेषण के समान कहैं सो आप का कहना ठीक नहीं प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस विना शिर के वचन को कहने वाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ यह भी अत्यन्त आश्चर्य है क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है काहे ते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वतः और किस की अपेक्षा से परतः इस युक्ति के विना इस आप के कथन को अतिसाहस पूर्वक समझते हैं बहुत बिडम्बना से क्या है और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप। जो विषययिरूप मानते हो सो ठीक नहीं क्यों कि आप के कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया यह निग्रह स्थान की प्राप्ति है यह आप का कहना भी बालक अर्थात् अज्ञानी कासा है क्यों कि पूछे आम बताये अमरूद इस के समान प्रमाण निरूपण समय में जिनजैनादि का विषयविषयित्व वर्णन करते हो और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न होसके क्योंकि

जहां २ साध्य वहां २ विषय नहीं यह व्याप्ति नहीं और हम को तो जैनमत प्रमाण सिद्ध है परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है इस आप के विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है जिस से आप को जिन मत की दूषितता करावें और नित्य अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है इस से तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो ।

आर्यों का पाचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः श्रीमद्भिः । सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वंवेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम् । एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमिति सिषाधयिषितम् । व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना । अत्रायं प्रश्नः व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्य घटितायुक्तत्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वेनायुक्तोयं हेतुः । निर्विच्छिन्नमूलधूमसत्ववन्हेरवश्यं भावनियमात् किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्तउपेक्ष्यो भवतां लेखः । अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः । विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत् प्रमाणं किमिति वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशयइति रात्रिन्दिववोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात् । अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते नायं नियमः । प्रमाणानि च शास्त्रज्ञानवतां प्रमाणत्वेनज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रतिबन्धकानि भवन्तीति सम्मतम् । प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे, भवद्भिरपिकातिप्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं ततश्च सिद्धमेतत् यद्वादिनोः सभायां मतप्राबल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते । अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं भुसु ॥

ह० भीमसेनशर्मणः
ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक या अप्रमाण पूर्वक होते हैं इस में अयुक्त साध्य है और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है इस में यह प्रश्न है कि व्यवहार वैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार नहीं प्रवृत्त होता सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहार वैलक्षण्यरूप हेतु है इस से हेतु अयुक्त है, जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्नि के अवश्य होने का नियम है और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आप का लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावें गे और विरोध यह है कि जिस से व्यवहारों को प्रमाण पूर्वकत्व है वह प्रमाण क्या इस से प्रश्न सार्थक है इस में वह प्रमाण क्या इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हम को प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्तविरुद्ध है और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के विना किये ही प्रवृत्त हों और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह सम्मत है और प्रमाणनिर्णय के विना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं तुम ने भी कितने प्रमाण और उन के क्या लक्षण यह निर्णय किये विना ही पत्र लिखा इस से यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है तो सभा में आन कर उस विषयक प्रश्न करो विद्वानों में इतना बहुत है।

विशेष—यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैन मत पर कुछ विशेष कहा गया तब पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी कृत सत्यार्थप्रकाश को ले कर कोई २ दोष दिखाये और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है सर्वदर्शनसंग्रह के पुस्तक में से कुछ दिखाया कि यह जैन मत नहीं है इत्यादि कहा उस का यथोचित उत्तर दिया गया। जो २ बार्त्ता विना लिखी हुई है उन सब को यथावत् कोई नहीं कह सकता इस लिये सब का लिखना उचित नहीं है। यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उस के सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है इस लिये विशेष बढ़ाना ठीक नहीं। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने वाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य्य लोग कब मानते थे) इस प्रकार अठारह तारीख को ४ बजे में ५ मिनट शेष रहे उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पण्डितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे उस को सुन कर जैन बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहन जी और श्रीमान् राय सोहनलाल जी ने कहा कि अभी समय बाकी है हल्ला न करो श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेष कर राय सोहनलाल जी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यान होने के लिये सभा से निवेदन किया इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठ कर चल दिये। (इस से शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इन की योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ तात्पर्य्य यह था कि इस दिन इन की पोल अच्छे प्रकार खोली गई कुछ शेष रही थी यदि बैठे

रहते तो सभी इन की पोपलीला प्रकट हो जाती) आर्य लोग भी अपने २ घर आये सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् राय साहब सोहनलाल जी के स्थान पर ता० १८ को संन्ध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिये गये नियत समय व्याख्यान हुआ नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई पं० जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैन मत की अच्छे प्रकार समीक्षा को सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्य्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी।

ओम्

(दोहा)—सत्यासत्य विचारहित । भये विज्ञ एकत्र ॥
वाक्यामृत की वृष्टिकरि सन्तोषे जन तत्र ॥

कवित्त

ईश अवराधक शुभकृत्यता प्रकाशक अवगुणादिनाशक सुशासक विज्ञान के
देशगतिसुधारैं वेदसम्मतप्रचारैं वाक्य उचित उचारैं नहि ग्राहक धनदान के
विद्यानुरागी असत्य मत त्यागी ऐसे वड़भागी हितचिन्तक प्रजान के
सीताराम पुलकितह्वै पुनि२ धन्यवाद देत कहां लगि गाऊं गुण आर्य्यमहान् के

आप का शुभचिन्तक
सीताराम चतुर्वेदी
मैनपुरी

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वृही चिन्ता लगी कि ता० १६ को कब से शास्त्रार्थ होगा । इस लिये एक पत्र सेठ फूलचन्द जी के नाम भेजाय

ओ३म्

सेठ फूलचन्द जी योग्य—आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिये कि कल शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा। यदि प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है इस से अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिये॥ १८—३—८८

द० गङ्गाराम

रात्रि के ८ बजे प्र० चैत्र सुदी ६ रवौ मन्त्री आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठ जी ने कुछ नहीं दिया और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरङ्ग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। तब ता० १६ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि—

ओ३म्

श्रीयुत लाला मंजूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्द जी जैन धर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आप का शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ हो जावे इस में क्षण भर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े २ कार्य को छोड़ कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिये आये हैं यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है तो हम को पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करें गे यदि आप को किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिये यदि आप आज दश बजे से शास्त्रार्थ न करें गे तो आप का पराजय समझा जावे गा हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करें गे इस पत्र का उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

आप का कृपाकांक्षी

१६। ३। ८८ ई० सोमवार

गङ्गाराम वर्मा
मन्त्री आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया ता० १६ से पत्र लेना भी बन्द करदिया तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिख कर भेजा गया सो भी नहीं लिया पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग ले गये तब भी सेठ जी ने पत्र न लिया तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिख दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते सो यह भी नहीं लिखा तब आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैन मत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठ जी के समीप ले जाइये। वे लोग ले गये तब भी पत्र नहीं लिया परन्तु आर्य लोगों ने उन को साक्षी कर लिया वह आर्य्यों ने भेजा छठा पत्र यह था कि—

जैनियों के पांचवें पत्र के उत्तर में आर्यों का छठा पत्र

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः। अधुनाप्रतिभाति चैतद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते। अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते प्रत्यक्षानुमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्याचतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्। वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानंचेति प्रमाणद्वयम्। साङ्ख्ययोगयोश्च सिद्धान्तेप्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति प्रमाणत्रयम्। पूर्वमीमांसकमतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते। उत्तरमीमांसकास्तु व्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति। लक्षणानि च प्रात्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम्। यथाचप्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिधेपेलिमम्। अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमागतज्ञानकरणमैतिह्यम्। अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः। यत्राभिधीयमानेर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः। सम्भवो नामाविनाभाविनोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम्। अभावो विरोध्यभूतं भूतस्येति। प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया। तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः श्लिकुलेखइत्यलमतिपल्लवितेन।

ह० भीमसेनशर्मणः

ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आप के पहिले पत्रमें प्रमाण के स्वरूप, भेद, और विषय का प्रश्न था इस से स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया। अब जान पड़ता है कि आप उन के लक्षण ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं इस लिये वे प्रमाण स्वरूपादि प्रकारान्तर से तुम को बोध होने के लिये दिखाये जाते हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं। वैशेषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान दो प्रमाण मानें हैं। साङ्ख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम, तीन प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमांसा में चार न्यायवाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, और अभाव आठ प्राण माने हैं। उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण माने हैं। प्रमाणों के लक्षण—प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं! यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणस हित आध घड़ी में उत्तर दीजिये आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में तुला-मन्तरेण० इत्यादि लेख है वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है इस लिये उपेक्षणीय है इतिशम्। यह पत्र न लिया और जैनियों के ओर के प्रवन्ध कर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना वन्दकर दिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना वन्द कर दिया इस प्रकार का एक पत्र जैन प्रवन्ध कर्त्ताओं ने वना कर सभापति के हस्ताक्षर करा लिये पर आर्य्य प्रवन्ध कर्त्ताओं के पास लाये तो इन्हों ने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैनी लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनी और आर्य्यों की ओर से १० दश२ आदमी एक स्थान में दश २ हाथ पर वैठे रहें बीच में पुलिस बैठी रहे कोई किसी से बोले नहीं वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उस का

उत्तर अपनी २ विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले उस रईस के प्रति देवें इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं कि जिस से उपद्रव कदापि न होवे ! परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हट गये। इस के पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० को एक विज्ञापन शहर में दिया कि:—

ओ३म्

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से न करने शास्त्रार्थ जैन भाइयों के हमारे विद्वान् पुरुष स्वस्थान को आज पधारें गे इस से हम फिर भी १ घंटे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शंका निवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आ कर करें बाद चले जाने विद्वानों के कहना उन का माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन—२०—३—८८ई०

गङ्गाराम वर्म्मा
मन्त्री आर्य्यसमाज
फीरोज़ाबाद

इस के पश्चात् सब लोग अपने२ नगरों को पधारे जो बाहर से आये थे।

इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ ॥

ओ३म् तत्सत्

जैनियों का प्रमाद

—:*:—

विदित हो कि जो शास्त्रार्थ वेदमतानुयायी और जैनमतावलम्बियों से नगर फ़ीरोज़ाबाद में हुआ था उस का ठीक २ वृत्तान्त वोही महाशय कि जिन की शास्त्रार्थ समय उपस्थिति हुई थी जानते होंगे और होने का कारण भी उन्हीं महाशयों पर प्रगट है कि जो यहां के रहने वाले हैं ये दोनों बातें सत्य २ तभी सम्पूर्ण महाशयों पर विदित हो सकती हैं जब पक्षपात रहित द्रष्टा पुरुष लिखें या कहें शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद का सारांश जो मुंशी जगनकिशोर साहब ने छपवाया है वह बहुत ही सही यानी सत्य है जैसे मैंने अपनी अल्पबुद्धि से उस को सत्य समझा है ऐसे और भी महाशयों ने जो पक्षपात रहित होंगे समझा होगा क्योंकि सत्य के कारण से किन्तु जैनी महाशयों के शिर से अभी तक पक्षपात का भूत नहीं उतरा कहीं तो ऐसे गपोड़े हाकने लगे कि हम से आर्य्य हार गये और हमारे प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सके इस से भी अधिक प्रत्येक जैन मिथ्याभाषण करने लगे इन की प्रपंच मय बार्ताओं को सुन आर्य पुरुषों ने बहुत सहन किया तो भी पराजय भूषण जैनी अपना पराजय छिद्र दबाने के लिये ठौर २ और भी अधिक मिथ्याभाषण करने लगे इस पर मंत्री आगरासमाज ने प्रसिद्धिपत्र इस आशय का दिया कि यदि अब भी जैनी कुछ पुरुषार्थ रखते हों तो हम सर्वत्र जैनियों को सूचित करते हैं कि एक हफ़्ते के अन्दर हम से फिर शास्त्रार्थ करें सज्जनो ! ध्यान की जगह है ग़ौर का मुक़ाम है ख्याल की बात है बुद्धि की परीक्षा है यदि ये ऐसे ही सभा जीत थे तो क्यों न शास्त्रार्थ किया इन की शास्त्रज्ञता तो भले प्रकार ३ दिवस के शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद ही में प्रगट हो गई थी कि पराजय दल ने ऐसा

दबाव डाला कि पत्र और विज्ञापनों से भी शास्त्रार्थ करने को समर्थ न हुए फिर ये किस बल से शास्त्रार्थ करते जैनमतावलम्बियों ने शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद जो छपवाया है उस को शास्त्रार्थ द्रष्टा सज्जन लोग तो अवश्य २ ही सत् असत् को जान गये होंगे किन्तु मैं अपनी अल्पबुद्ध्यनुसार सर्व के ज्ञातार्थ प्रमाद से जो उन्हों ने विपर्य्यय छपवाया है उस को प्रगट करता हूं क्योंकि—

दोहा

अति संघर्षण करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दन तें होई॥

जैनियों का प्रमाद प्रमाद प्रमाद

प्रथम प्रमाद

श्री स्वामि भास्करानन्द जी के विषय में जो छपवाया है यह उन का अति ही प्रमाद है स्वामि भास्करानन्द यहां से जब पधारे तब पं० पन्नालाल का पत्र इस आशय का आगया कि मैं इस समय नहीं आ सकता मेरे पैर में फोड़ा है जब पन्नालाल ने फोड़े का मिस किया तब सेठ साहब ने चतुर्वेदी कमलापति साहब और उक्त स्वामि जी से यह कहा कि अब हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ मतविषय का मेले पर यानी ता० १५ मार्च सन् १८८८ ई० से अवश्य होगा इस को सर्व सज्जन भले प्रकार जानते हैं कि जब पन्नालाल न आये तो भी स्वामी भास्करानन्द जी ने १७ फरवरी को अपने व्याख्यान में यह कहा कि यदि अब भी कोई प्रतिष्ठित जैनी यह कहे कि हम कल या ता० १८ फ़र्वरी सन् १८८८ ई० को पं० पन्नालाल को अवश्य २ बुला लेंगे तो मैं कदापि बांकी पुर के शास्त्रार्थ में नहीं जाऊं गा चाहे मेरे पहुंचने के लिये वहां से तार आही गया है इस को किसी जैनी ने कल के लिये यानी ता० १८ फ़र्वरी को स्वीकृत नहीं किया और सेठ फूलचंद साहब ने यही कहा कि मेले पर हमारे पं०लोग अवश्य आवें गे सज्जनो जब सेठ

साहब ने किसी तरह से उस समय शास्त्रार्थ करना स्वीकृत न किया तब स्वामिभास्करानंद सरस्वती जी बांकीपुर को पधारे।

२—प्रमाद

इन के पत्रों के उत्तर ठीक २ समय पर पहुंचते रहे यह लिखना भी प्रमाद से असत्य है वल्कि आर्य्य पुरुषों के दो पत्रों का तो जैनी महाशयों ने उत्तर भी नहीं दिया और जैनियों ने किसी पत्र का उत्तर भी ठीक २ भले प्रकार नहीं दिया कुछ का कुछ उत्तर देते रहे यह बात भी सर्व सज्जनों को विदित है

३—प्रमाद

पंडित भीमसेन शर्मा जी और सेठ फूलचंद साहब में जो नियम नियत हो गये थे उन के सिवाय कुछ भी न्यूनाधिक नहीं हुए यह लिखना जैनियों का सर्वथा व्यर्थ है इन के लेख ही से इन का झूठ यानी मिथ्याभाषण सिद्ध होता है क्योंकि जब ये यह लिखते हैं कि न्यूनाधिक कर दिये थे सज्जनो ध्यान से देखिये कि यह इनकी कैसी प्रपंचयुक्त वार्त्ता है मानो जो न्यून हो गये थे उन को बढ़ा के और जो अधिक हो गये थे उन को दूर करके नियम क्यों न माने और यह लिखा है कि पं० भीमसेन शर्म्मा अपने धर्म से कह देवें येही नियम ठहरे थे यह लिखना और भी जो उक्त पं० जी के विषय में लिखा है बिलकुल असत्य ही है इस को सम्पूर्ण द्रष्टा शास्त्रार्थ सज्जन लोग भले प्रकार जानते हैं भो विद्वज्जनो इन का पूर्ण सिद्धान्त नियमों का न मानना ही इन के लेख से सिद्ध होता है जब अनियम कार्य करना ही जैनी महाशयों को प्रिय लगता है तो इन के बीच में शास्त्रज्ञता का गंध मेरी भी अल्पबुद्धि के अनुसार कोई विद्वान् नहीं कह सकता देखो नियम ही से सम्पूर्ण कार्य संसार के होते हैं अनियम से कोई भी नहीं होता है फिर अनियम कार्य कैसे हो सकता है जब जैनी पं० शास्त्रार्थ के साधारण नियमों का

होना मुख्य नहीं समझते तो शास्त्रार्थ करने की योग्यता इन में कोई विद्वज्जन कब अनुमान कर सकता है जब जैनियों की इच्छानुसार आर्य्य पुरुषों ने पंच और सिरपंच स्थान स्वीकार किया फिर किस प्रकार से आर्य पुरुषों का हठ इच्छानुसार नियम नियत होने का सिद्ध हो सकता है ? ॥

४—प्रमाद

मध्यस्थ के विषय में हम जैनियों का अत्यन्त ही प्रमाद प्रगट करते हैं कि जिन में शास्त्रार्थ और सभ्यता का व्यवहार किंचित् भी प्रगट नहीं जान पड़ता है आधुनिक आर्य और जैनयों के विद्वानों से भिन्न मतावलम्बी मध्यस्थ हो इस लेख से और भी अल्पज्ञता जैनी महाशयों की प्रगट होती है कि शास्त्रार्थ के प्रकार से होता है और उस के विशेष २ नियम सर्वोत्तम क्या है पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह कदापि नहीं कहा कि हमारे सर्व विरोधी हैं और सत् असत् का निर्णय करने वाला कोई नहीं है ऐसा अनर्थरूप लेख लिखना जैनी महाशयों की ही योग्यता है क्या आज आर्य जैन मुसल्मान ईसाइयों के अनेक सम्प्रदाय हैं इन में एक महाशय से पूछा जाय या सर्व से पूछ के जो सिद्धान्त निश्चय किया जाय तो कौन श्रेष्ठ होगा देखो श्रीमती महारानी विक्टोरिया आज कमेटी यानी बहु सम्मति पर ही सर्व कार्य करती हैं ऐसे ही पं० भीमसेन शर्म्मा का यह कथन था कि हमारे तुम्हारे लेखों को देख कर सर्व जगत् और सर्व विद्वान् जयाजय जान सकते हैं ऐसे मध्यस्थ की कुछ इस शास्त्रार्थ में आवश्यकता नहीं है ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता जैनी महाशय समझते हैं तो मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार शास्त्रार्थ करना वृथा था उसी मध्यस्थ से ही पूछ लिया जाता कि किन का सिद्धांत ठीक और मत प्राचीन है विद्या हीन जैनियों का अपने दुराग्रह और अपना कपोल कल्पित जाल कटने के भय से यही आशय इन के लेख से सिद्ध होता है कि शास्त्रार्थ न हो जैनियों की मंदता

देखिये कि ये आधुनिक दयानंदमतावलम्बी लिखना क्या इन को लज्जा नहीं आती है यदि ऐसे ही पं० थे तो इन शब्दों को सभा में क्यों नहीं सिद्ध किया जब पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह कहाथा के अगर तुम वेद को कपोलकल्पित आधुनिक आर्य और दयानंदमतीय सिद्ध करदो तो हमारा तुम्हारा इसी पर शास्त्रार्थ सही इस कहने पर इन के मुखबंद होगये कुछ उत्तर न दे सके प्रियवरो इन जैनी पं० को सिवाय मिथ्या-प्रलाप के कुछ विशेष नहीं आता सज्जनो! शास्त्रार्थ दो प्रक.र से होता है एक तो मुखद्वारा दूसरा लेखद्वारा लिखित शास्त्रार्थ के जयाजय के ज्ञाता सर्व विद्वान् और सर्व जगत् होता है और मुखद्वारा के शास्त्रार्थ के द्रष्टा वे ही लोग होते हैं जो तत्काल उपस्थित हों मध्यस्थ प्रबन्ध-कर्ताओं का होना अवश्य चाहिये क्योंकि जिस से शास्त्रार्थ समय कोई पक्ष नियम विरुद्ध प्रतिकूल कार्य न करे।

५—प्रमाद्र

सज्जन पुरुषो इन का धर्म से ज्यों का त्यों इस पुस्तक के लिखने में प्रमाद और मिथ्याभाषण प्रगट करता हूं एक लघु वात यह है कि पं० पन्नालाल ने शास्त्रार्थ के पर्चों में अपना नाम अनुस्वार लगा कर कई पर्चों पर लिखा था इस को सर्व सज्जन शास्त्रार्थ द्रष्टा भले प्रकार जानते हैं यदि किसी महाशय को प्रतीत न हो तो मैं पं० पन्नालाल के लेखों को दृष्टिगोचर करा सकता हूं फिर ज्यों के त्यों धर्म पूर्वक लेख कोई भी जैनी और जैन पं० सिद्ध कर सकता है क्या मिथ्याभाषण को ही जैनी पंडितों ने धर्म समझ लिया है इन का इस विषय में सम्पूर्ण लेख मिथ्याभाषण और पक्षपात की अनेक व्याधियों से अभिग्रस्त है

६—प्रमाद

जैनी पडितों को व्याकरण का पूर्ण बोध न होने से उन्हों ने अपने पर्चों में विशेष अशुद्धियां कीं और आर्य पं०ने अपने प्रत्येक पत्र में इन की

अशुद्धियों की गणना प्रगट की और सभा में पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह भी कहा कि जैनी पं० यह कहैं कि ये अशुद्धियां हैं या पीछे शुद्धि बना लें तो इसी समय हम अशुद्धियों को जैनी पं० के सन्मुख व्याकरण शास्त्र से सिद्ध कर सकते हैं इस पर व्याकरण शून्य जैनी पं० ने कुछ उत्तर न दिया और शास्त्रार्थ जो छपवाया है उस में लिखते हैं कि आर्य्यों के पत्रों में भी अधिक अशुद्धियां हैं यह लिखना कैसा अज्ञानता से निर्मूल है जैनियों के सम्पूर्ण पत्रों को देख कर सर्व को इन का झूठ और भी अधिक प्रतीत होगा कि जैनी महाशयों ने पत्रों में तो कहीं अशुद्धियों की चर्चा भी नहीं लिखी और न इन के लेख से जो पत्रों में है यह सिद्ध हो कि कोई अशुद्धि है फिर अशुद्धियों के विषय में लिखना सर्वथा व्यर्थ ही है जैनी महाशयों के लेख से यह बात सर्व सज्जनों को विदित होजायगी कि अपनी अशुद्धियों को बना लेना और आर्य्यों के पत्रों में मिथ्या अशुद्धियां प्रगट करना इस एकही लघु बात से सिद्ध है जो मैं पं० पन्नालाल सा० के हस्ताक्षरों के विषय में पूर्व लिख चुका हूं और छठा पत्र तो जैनी महाशयों ने अपने अत्यन्त प्रमाद की प्रबलता से मन माना लिख दिया है सभा में तो इस पत्र को नहीं दिया और न आर्य्यसमाज में भी किसी के हस्तगत हो के भेजा यह बात इन की मिथ्या प्रपंच की नहीं है? जब यह नियम था कि एक २ पत्र दोनों पक्ष वाले एक दूसरे को दे दें फिर छठा पत्र किस प्रकार से जैनियों का अधिक आना कोई विद्वान् कब अनुमान प्रमाण कर सकता है?

७ प्रमाद

मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार जैनियों के प्रत्येक विषय के लेख को स्थूल बातों में ही प्रमाद प्रगट करता हूं जब इन के लेख से यह सिद्ध है कि हमारे और इन के परस्पर यह बात ठहरी थी कि संस्कृत के लेखानुसार भाषानुवाद करके सभा को सुना दिया करें गे सज्जनो !

ध्यान कीजिये इन लेखों के भाषानुवाद को कि यह संस्कृत का ही अनुबाद है ? उस पर भी यह अधिकता कि प्रमाद से परामर्श का पीछा तो पांच २ या छः २ पृष्ठ तक न छोड़ा कहीं की ईंट कहीं के रोड़े का उदाहरण पूरा दर्शाने लगे और अपने लेखों में विरोधाविरोध का भी ध्यान न रहा सज्जनो ! इन के संस्कृत लेखों पर अच्छे प्रकार ध्यान देना चाहिये कि परामर्श सत्यार्थप्रकाश और सर्वदर्शन संग्रहादि के पृष्ठ और पंक्तियों का लिखना इन के पद्यों के कौन से शब्द के अर्थ से प्रगट होता है यदि यही भाषानुवाद संस्कृत का हो तो अपने संपूर्ण ग्रन्थ और सप्तभंगी न्याय का जैनियों ने पूरा उलथा क्यों न लिख दिया प्रियवर जैनियों तुम्हारे इन झूठ मूठ के लड्डुओं के खाने से क्षुधा न दूर होगी कहीं सत् के सन्मुख असत् और आधुनिक जो जैनमत है वह ठहर सकता है शंकराचार्यादि आचार्यों की सहस्रों फटकारों के लजाये हुए जैन यानी बौद्ध मतावलम्बी हठ और दुराग्रह को अभी तक नहीं छोड़ते पक्षपात की पगड़ी को सिर पर और खींच२ के बांधते ही जाते हैं यह आधुनिक मत तुम्हारा पीछा तभी छोड़े गा जब सत् सनातन वेदधर्म का ग्रहण कर पक्षपात की पगड़ी को खूंटी पर रख सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् का शरण लोगे तभी तुम सच्चे तत्त्वज्ञानी होगे प्रियवर ! इस आधुनिक जैनमत के असत्य ज्ञान को कल्याण कारी समझ क्यों अपना जीवन व्यर्थ गमाते हो

८ प्रमाद

जैनियों का पं० ठाकुरप्रसाद जी के विषय में लिखना अति ही असत्य यानी मिथ्या भाषण है ऐसे असत्य लेखों के लिखने में जैन यानी बौद्ध-मतावलम्बियों को लज्जा भी नहीं आती यह न ध्यान दिया कि हमारे मिथ्या लेखों को शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग देख कर कितना पश्चात्ताप करें गे और हम को झूठे का दादा ठहरावें गे जो पुरुष एक बात झूठ बोलता

है और उसके छिपाने के लिये १०० बात झूठ यानी असतय भाषण करता है परन्तु असत्य के कारण से अन्त में असतय ही रहता है इस को अच्छी तरह शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग जानते हैं कि इन बातों में से एक भी बात शास्त्रार्थ के समय में जैनी पं० ने नहीं की यदि जैनी पं० यह कहें कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस बात को सब सज्जन पुरुष जानते हैं कि पं० ठाकुरप्रसाद जी ने अपने व्याख्यानों में यह कहा था कि जो आर्य न होगा वह तो गैर आर्य होगा मैं सोने के पत्र पर रजिस्टरी करा सकता हूं कि मैं आर्य हूं सज्जनो! देखो यदि आर्य न होते तो आर्यसिद्धान्त के सभासद क्यों होते बड़े पश्चात्ताप का विषय है कि जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की हैं तो भी पं० ठाकुरप्रसाद जी से क्यों न शास्त्रार्थ किया जब समान समय तक दोनों पक्षों को लिखने और कहने का अधिकार है फिर जैनी महाशयों को क्या भय था यह पं० ठाकुरप्रसाद जी का कथन इस बात पर अपने व्याख्यानों में सर्व के ज्ञातार्थ हुआ जब शास्त्रार्थ करके जैनी पं० पेच में पहुंचे तब बहुत पुरुषों ने यह कहा कि तुम्हारा बड़ा भारी अपवाद इस बात से हुआ जो तुमने पं० ठाकुरप्रसाद से शास्त्रार्थ करना स्वीकृत नहीं किया तब जैन पण्डितों ने उन पुरुषों को यह उत्तर दिया कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस से हम ने उन से शास्त्रार्थ नहीं किया उन पुरुषों ने आकर समाज में कहा जैनियों का सम्पूर्ण लेख इस विषय का अनेक मिथ्या भाषण की व्याधियों से अभिग्रस्त है और जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों ने असत्य भाषण ही अपना धर्म समझ रक्खा है इन के धर्म ग्रन्थों का भी यही आशय है कि जैसे कोई वस्तु है और नहीं है और कह भी नहीं सकते कि है या नहीं ऐसे ही असत्य ग्रन्थों के संस्कार प्रवल होने से जैनी महाशयों को मिथ्या भाषण और हठ करने का असाध्य रोग ही होगया है इन के ग्रन्थों में ऐसा असत्यभाषण लिखा है कि विद्वानों को

अत्यन्त ही पश्चात्ताप इन के विद्याहीन आचार्यों पर आता है कि कोई प्रमाण किसी वस्तु का अनुमान करके नहीं लिखा जो मन में आया अप्रमाण लिख मारा जैसे ४८ कोस का जूंआ और ८ कोस का बिच्छू १६ कोस का कलसा ४० अक्षरों में एक एक पुरुष का आयु जो सहस्रों वर्षों का एक वर्ष ऐसे ही अनेक मिथ्याभाषण इन के ग्रन्थों में हैं कि जिन को देख कर बुद्धिमानों को अति ही ग्लानि इस आधुनिक मत से होती है।

९—प्रमाद

जैनियों ने जो चतुर्वेदी कमलापति जी के विषय में लिखा है वह सर्वप्रकार असत्य ही है इस को समस्त शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुष अच्छे प्रकार जानते हैं कि सभापति जी का कदापि यह कहना नहीं था कि हमारा जयपराजय पं॰ठाकुरप्रसाद जी ही पर है पं॰ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यानार्थ कहा था कि पांच मिनट शास्त्रार्थ समय में ही से चाहे आर्य पंडितों के ही समय में से ले कर दिया जाय क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों की आकांक्षा उक्त पं॰जी के व्याख्यान सुनने की है इस को सुन कर पराजय मूर्त्ति जैनी बहुत घबराये क्योंकि अन्तिम समय ३० मिनट आर्य्य पण्डितों ही का था कि जिस में इन की सारी पोलें इन्हीं के ग्रन्थों से सुनायीं थीं कि जिस से बहुत लज्जित हुए और यों कह कर कि हमारी तौहीन होती है सभा से भाग गये फिर पत्र और विज्ञापनों के देने से भी शास्त्रार्थ करने को उपस्थित न हुए सज्जनो ! इस में किस का पराजय विदित होता है ।

१०—प्रमाद

महाशयो ! जैनी पंडितों के प्रमाद की प्रबलता और मिथ्याभाषण का मकरजाल देखिये गा कि पं॰ छेदालाल के लेख से विदित है कि मैंने पं॰ भीमसेन से यह कहा कि यह श्लोक हस्ताक्षर करके हम को दे दो क्योंकि इस से हमारे मत पर मिथ्या आक्षेप किया है बड़े पश्चात्ताप का समय है कि आज दीर्घ यानी बहुत समय सत्यार्थप्रकाश को बने हो गया है किसी पं॰ जैनी ने मिथ्या आक्षेप का स्वामी जी महाराज पर दावा न किया क्या पं॰छेदालाल साहब उत्तरायण और दक्षिणायन ध्रुव की यात्रा को चले गये थे जो अब गाढ़ निद्रा से जगे और

एक श्लोक पर नाक उठा कर देखने और कहने लगे प्यारे जैनियो तुम्हारे आधुनिक मत का तो खण्डन श्री १०८ स्वामि दयानन्दसरस्वती जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में खूब प्रगट कर दिखाया यदि ये पोलें जो उक्त समुल्लास में लिखी हैं सत्य नहीं हैं तो दावा तोहीन का क्यों न किया क्या सर्वत्र जैनियों को मोतियाविन्द का रोग हो गया था कि जिस से आज तक न सूझा और बेठिकाने की वेसुरी दो चार बातों को कह कर इन भोले भाले जैनी महाशयों को क्यों ठगते हो और अपने को पंडितों की गणना में कहते हो क्यों इस पं० शब्द को भी अपने नाम में लगा कर लज्जित करते हो अजी लाला जी आप अपने यथा नाम तथा गुण ही पर सन्तोष करो दुराग्रह और मिथ्याभाषण के व्यवहार को छोड़ो सदैव सत्यसनातन बातों को ग्रहण करो कि जिस से व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होना चारित्र कहाता है अर्थात् जिन मत से भिन्न आचार्य सब सर्वथा अवद्य (निन्दनीय) और उन के निन्दित मतों का त्यागना चारित्र कहाता है। और जिनोक्त तत्वों में रुचि वाली वाणी प्रिय पथ्य और तथ्य कहाती है यह वाणी चारित्र से सम्बन्ध रखती है। यही बात इन के सूत्रों से भी सिद्ध होती है कि जिन भिन्न कुगुरु का संग करने से विषीले सर्प का काटना भला है। क्या ही आश्चर्य है कि पं० छेदालाल जी ने ऐसे२ सूत्रों को छिपा कर और पूर्वापर अपने मत का विचार न करके केवल वितण्डा किया है। स्वामी जी महाराज ने अवद्य शब्द का अर्थ सब प्रकार निन्दनीय किया है सो जैनमत को पूर्वापर देख के किया है इस से बहुत ठीक है यदि स्वामी जी अनवद्यं पाठ समझते तो उस का अर्थ भी वैसा ही करते जब पाठ अनवद्य लिखा और अर्थ अवद्य का किया तो निश्चय है कि यह भूल लेखक की वा छापे की है। क्योंकि इसी पुस्तक में (यान्यनवद्यानि कर्माणि) यहां अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय किया है इस से स्पष्ट हुआ कि चारित्र प्रकरण में अवद्य ही पाठ है ऐसे जैनियों की प्रियतथ्य वाणी के विषय में जैन देवगुरुतत्त्व ज्ञान उपदेशक में लिखा है कि :—

कर्त्ताऽस्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः।
इमाः कुहेयाः कुविडम्बनाः स्युर्मन्ता न तासामनुशासकस्त्वम् ॥

इस जगत् का कर्त्ता नित्यव्यापक अपने सामर्थ्य में आच्छादन करने वाला वह सत्य है यह कुविडम्बना (नीचबुद्धि) त्यागने योग्य हैं उन का मानने वा कहने वाला तू (जैनी) नहीं है। अर्थात् नित्य-व्यापक जगत्कर्त्ता ईश्वर को मानना जैनों का काम नहीं।

जैन पण्डितो की द्वितीय शङ्का यह है कि स्वामी (दयानन्दसरस्वती) जी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्। जिस से लक्ष्य जाना जाय उस को लक्षण कहते हैं जैसे आंख से रूप जाना जाता है" सो ठीक नहीं क्योंकि लक्षण का स्वरूप नेत्र को नहीं कह सकते। इस का उत्तर यह है कि नैयायिकी परि पाटी यह है कि :—
अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवदोषाग्रस्तत्वे सति लक्ष्यस्वरूपबोधकत्वं लक्षणत्वम्।

जिस में अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हो और लक्ष्य पदार्थ का स्वरूप जताने वाला हो उस को लक्षण कहते हैं। यहां जैसे नेत्र से रूप का बोध होता है इस में नेत्ररूप लक्षण में अव्याप्ति दोष इस लिये नहीं कि नेत्र रूप के साथ व्याप्त है अतिव्याप्ति इस लिये नहीं कि नेत्र से रूप भिन्न लक्ष्य मात्र का बोध नहीं होता। नेत्र से रूप का ग्रहण असम्भव भी नहीं और लक्ष्यरूप का बोध नेत्र से होता है। इस कारण रूप का लक्षण नेत्र को कहना असङ्गत नहीं है। लक्षण के समान्य स्वरूप में शब्द वाक्य सूत्र आदि लक्षण कहे जाते हैं। जैसे प्रमाण शब्द का व्याकरणानुसार यही अर्थ है कि जिस से प्रमेय को जानें निश्चय करें वैसे लक्ष धातु के दर्शन (ज्ञान) अर्थ से गन्धादि विषय ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय लक्षण हो सकते हैं इस में कोई बाधा नहीं। इस को न समझ के लिखा है तीसरे दिन के शास्त्रार्थ में पं० छेदालाल जैनी ने सत्यार्थप्रकाश पर तीन शङ्का बलपूर्वक की थीं। यद्यपि दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में आर्यों के पण्डितों ने कह दिया था श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी में हमारे मत के प्रवर्त्तक नहीं हैं किन्तु हमारा सनातन वैदिक मत है स्वामी जी के लेख पर जो कोई आक्षेप होगा वह वैदिक मत पर नहीं समझा जावे गा किन्तु स्वामी जी भी एक आप्त सनातन धर्मोपदेशक थे इस लिये हम लोग उन को वेदोक्त धर्मोपदेशक मानते हैं तुम लोग आर्यों के मत पर जो शंका करना चाहो

वेद पर करना इस पर जैनियों ने कुछ न ध्यान दिया और इस विचार सेसोकि वेद पर कहने का कुछ सामर्थ्य नहीं तथा स्वा० द० जी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें जिस से अन्य आर्य (हिन्दु) लोग भी आर्यसमाज से तथा सत्यार्थप्रकाशादि से घृणा करें गे और हमारी प्रशंसा करें गे तथा बहुत जैन लोग भी सत्यार्थप्रकाशादि से जैन मत के गपोड़े देख २ आर्यसमाजस्थ हो गये हैं सो जो हम सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें गे तो जैनी लोग सत्यार्थप्रकाश को देखने से घृणा करें गे और हमारी प्रशंसा होगी कि हमारे पं० ने सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर दिया। इन तीनों शंकाओं का उत्तर भी उसी दिन की सभा में यथोचित दे दिया गया था तथापि जैनियों ने अपनी शंका और बढ़ा कर छपवाईं कि जितना तत्काल नहीं कहा था और हमारी ओर से जो२ कहा गया था सो कुछ नहीं छपाया यह पक्षपात नहीं तो क्या है ?।

उचित तो यही था कि शास्त्रार्थ में जो लेखबद्ध विषय हुआ था उतना ही शास्त्रार्थ के नाम से छपाते और विशेष छपाना होता सो अलग पीछे से छपा देते। पर यह काम धर्मात्माओं का है। सब का नहीं। अब सुनिये—सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी तीन शंकाओं में पहिली यह है कि "पृष्ठ ४२६ पं०—३ सर्वथानवद्य योगानां" इस में स्वामी जी ने अवद्य को अनवद्य लिखा है इस पर पं० छेदालाल तथा अन्य जैनियों ने बड़ा कोलाहल मचाया है कि स्वामी जी ने अज्ञान से वा कपट से शंका कोटि से उठा के तोतातिती को सिद्धान्त कोटि में रख दिया है। इस पर विचार यह है कि वास्तव में (सर्वथावद्ययोगानां) ऐसा ही पाठ ठीक है क्योंकि (वदितुमयोग्यमवद्यम्) (अवद्यपण्य०) इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है जो कहने योग्य नहीं हो उस को अवद्य कहते हैं तो उक्त श्लोक का अर्थ यह होगा कि (जो कहने योग्य न हो उस का त्यागचारित्र कहाता है वह अहिंसादि भेद से पांच प्रकार का है अब प्रश्न यह है कि अवद्य नाम अयोग्य का क्या अर्थ हुआ तो जैन मत के सब पुस्तकों अर्थात् मुख्य सिद्धान्तों से यही निश्चित है कि जिन मत से भिन्न तत्त्वों का अनुसन्धान करना और जिन मत से भिन्न आचार्य सब कुगुरु हैं उन का त्याग यह विद्वान् का दोष नहीं

है किन्तु समझने वाले का दोष है पाठ का यह काम है कि जब उन को समझ में न आवे तो दूसरे स्थलों में देखते हैं जैसे स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ६६ में (लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः) इस का अर्थ बहुत सरल किया है कि जैसे गन्धवती पृथिवी । जो गन्ध वाली है वह पृथिवी है अर्थात् गन्ध पृथिवी का लक्षण है ॥

जैनियों का तृतीय उपलम्भ यह है कि तौतातितियों के पूर्व पक्ष को लेकर स्वामी जी ने जैन मत का खण्डन किया है सो ठीक नहीं क्योंकि वह जैन मत नहीं।

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथा स्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ॥
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं यो वानुमापयेत् ॥

इन दोनों वचनों को स्वामी जी ने जैन मत के वर्णन में लिखा है । इन में से पहिला श्लोक छेदालाल जैन ने शास्त्रार्थ में पढ़ा था और कहा कि हम सर्वज्ञ ईश्वर को मानते हैं और द्वितीय श्लोक तौतातिती नास्तिक शिरोमणि का है । इस को छेदालाल ने अपना प्रतिपक्षी कहा है । सो यह ठीक नहीं क्योंकि तौतातिती यद्यपि किसी अंश में अर्हन्त देव का भी खण्डन करता है इसी लिये माधवाचार्य्य ने सर्वदर्शनसंग्रहस्थ जैन मत में तौतातिती को पूर्व पक्ष में लिया है परन्तु मुख्य कर तौतातिती वैदिक मतानुयायियों का प्रतिपक्षी है अर्थात् नित्य सर्वज्ञ ईश्वर को वेद मतानुयायी लोग मानते हैं उसी का (न चागमविधिः कश्चिन्नित्य सर्वज्ञबोधकः) इत्यादि वचनों से खण्डन किया है जैनी लोग जिस अर्हन्देव को सर्वज्ञ मानते हैं उस को वे नित्य नहीं कह सकते क्योंकि उन का मुख्य सिद्धान्त यही है कि अनादि सिद्ध सनातन ईश्वर कोई नहीं किन्तु अर्हन्देव वा आदिदेव जब उत्पन्न हुए तब सम्यग्ज्ञानादि से सिद्ध हो गये उन्हीं को सर्वज्ञ ईश्वर मानते हैं सो बीच में उत्पन्न होने वाला सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता क्योंकि उस की उत्पत्ति से पहिले अपने पिता पितामहादि का हाल नहीं जान सकता और सिद्ध होने पहिले बाल्यावस्था का अपना ही चरित्र नहीं जान सकता और सर्वज्ञ उसी को कह सकते हैं जो

अतीतानागत वर्त्तमान सब समय में एक रस कूटस्थ व्याप्त हो के सब को जाने सो ऐसा ईश्वर आर्य्यों का मन्तव्य है जैनादि का नहीं लोगों को बहकाने के लिये जैसे ईसाई लोग ईश्वर का अनेक प्रकार वर्णन करते २ अन्त में ईसामसीह पर तान तोड़ते हैं ऐसी ही कुछ चाल जैनियों की है मानते तो एक बीच के उत्पन्न हुए शरीरधारी को हैं उस के विशेषण सर्वज्ञादि हों। यह असम्भव है इसी लिये तौतातिती ने बीच से हुए भी किसी को ईश्वर नहीं माना इस से वह नास्तिकशिरोमणि और जैनियों का बड़ा भ्राता है अर्थात् अनादि सिद्ध सनातन सृष्टि कर्त्ता ईश्वर के न मानने में जैनी और तौतातिती दोनों एक ही हैं इसी अभिप्राय से स्वामी जी ने दोनों को साथ ही लिखा है इस से जैनों का आक्षेप ठीक नहीं है॥

११ प्रमाद

सज्जनो इन जैनियों के मिथ्याभाषण की अधिकता देखिये गा कि जिस के लिखने से ये प्रमाद की गठरी ही जचते हैं जैनी पं० लिखते हैं कि आर्यों की असमर्थता तो पहले से ही शास्त्रार्थ विषय में थी आज शास्त्रार्थ के प्रारंभ समय से तो ज्ञात ही हो गयी कि पं० देवदत्त जी की जगह पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रार्थ करें गे न्यायशील सज्जनो इस को क्या असमर्थता का कारण कोई विद्वान् अनुमान प्रमाण से समझ सकता है देखिये जब कोई पुरुष किसी विशेष कारण या रोगादि या समान संख्या की गणना से किसी कार्य को न करे तो क्या असमर्थ समझा जाय गा कदापि नहीं ख्याल कीजिये जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है और समान ही समय तक उभय पक्ष को कहने का अधिकार है फिर इस से तो असमर्थता आर्यों की कोई न्यायशील नहीं कह सकता यदि जैनियों की असमर्थता नहीं थी तो आर्यों के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया और मतविषयक शास्त्रार्थ क्यों न किया इस से जैनी महाशयो तुम्हारा पराजय तो सर्व जगत् तथा सर्व विद्वानों को तुम्हारे लेख ही से विदित हो गया कि न तो साधारण नियम जो शास्त्रार्थ समय अवश्य माननीय हैं उन को और न मतविषयक शास्त्रार्थ करना अब तुम्हारे इन असंगत लेखों को कोई विद्वान् प्रमाण न करे गा।

१२ प्रमाद

शास्त्रार्थ बन्द होने में जैनियों की असमर्थता ही प्रगट होती है यदि ये असमर्थ न होते तो क्या पत्र और विज्ञापनों से शास्त्रार्थ न करते और उपद्रव का मिस करके शास्त्रार्थ बन्द करना यह जैनियों की कादरता नहीं है ? यह इन के लेख ही से विदित है कि धन्य है ऐसे न्याय मार्गी सभापति को कि जिन्हों ने दोनों पक्ष को समदृष्टि से देखा और न्याय मार्ग पर आरूढ़ हो कर न्याय किया जब सर्वोत्तम न्याय-कर्त्ता श्रीमान् चतुर्वेदी ज्वाला प्रसाद जी और प्रबन्धकर्त्ताओं को कहा और प्रबन्ध की उत्तमता यहां तक लिखी कि नियत प्रबन्ध से इधर उधर न चलने दिया बड़े पश्चात्ताप का समय है इन जैनी महाशयों की बुद्धि पर कि ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के न्याय में भी उपद्रव होने को दोष आरोपण करने लगे तो जो प्रबन्धकर्त्ता अपने न्याय से किसी पक्ष को इधर उधर नहीं चलने देते थे फिर ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के सन्मुख अन्याय और उपद्रव का होना किस प्रकार से सम्भावित है इस से जैनियों की पूर्ण असमर्थता सिद्ध होती है और प्रमाद की प्रबलता देखिये गा कि श्रीयुत चतुर्वेदी राधामोहनादि और भी प्रतिष्ठित रईसों ने उपद्रव होता जान शास्त्रार्थ होना बन्द किया इन असंगत लेखों के लिखने में जैनी महाशयों को लज्जा नहीं आती जब यह ठीक यानी सत्य ही था तो सर्व प्रकार रईसों के हस्ताक्षर क्यों न करा लिये जो पत्र शास्त्रार्थ बन्द होने के विषय में छापा है वह तो जैनी महाशयों के लेखही से अप्रमाण सिद्ध होता है जब पत्र पांच की राय से और हस्ताक्षर केवल सभापति ही के हैं कब सम्पूर्ण प्रबन्धकर्त्ताओं का माना जा सकता है जबतक दोनों पक्ष के प्रबन्धकर्त्ता अपनी राय पर हस्ताक्षर न करें कब समस्त प्रबन्धकर्त्ताओं की ओर से माननीय हो सकता है यदि यह लेख सभापति जी ने प्रबन्धकरने की अपने में असमर्थता देख दिया तो पांच की राय प्रगट करना उचित न था केवल अपनी राय प्रगट कर सकते थे मेरी अल्पबुद्धि में तो इस लेख से भी जैनियों की असमर्थता और अल्पज्ञता विदित होती है सर्व सज्जनों की सेवा में जैन आधुनिक मत की आधुनिकता प्रगट करता हूं आज-तक आर्यवर्त्त देश में प्राचीन समय से सर्व ऋषि मुनि और सम्पूर्ण

विद्वान् चार वेद उपवेद और ६ शास्त्रोंकी प्राचीनता ही (अन्य देशों तक भी यानी लन्दन और जर्मनादि) विदित करते हैं और जैनी महाशय इन सत् शास्त्रों को मानते नहीं जब प्राचीन और अनुकूल बातों ही को नहीं ग्रहण करते फिर आधुनिकता तो इन की सर्व पर विदित हो गयी इन के ग्रन्थों का किसी सत्शास्त्र में नाम तक नहीं और इन के प्रामाणिक ग्रन्थों में पुराणादिक तक के नाम और कथा लिखी हैं जब पुराण वाले भी वेद को सनातन अनादि मानते हैं फिर तो जैन मत बहुत ही नवीन और आधुनिक सिद्ध हो गया अब हम जैनियों की अविद्वता सिद्ध करते हैं यदि ये प्राचीन और विद्वान् होते तो पाणिनिऋषिकृत व्याकरण और गौतमऋषिकृत न्याय कदापि नहीं मानते जो कुछ ग्रन्थ इन के आचार्यों ने बनाये हैं इधर उधर की बातें लेकर और मनमानी बुद्धि लड़ा कर ऐसी कपोल कल्पित असत् गाथा लिख मारीं कि जिस से यह सूझा कि यह जाल शीघ्र कट जायगा इस से अपने शिष्य और मतावलम्बियों को यही शिक्षा की कि अन्य मत वालों को अपने ग्रन्थ न सुनाना न दिखाना यह आधुनिक और असङ्गत कथाओं का कारण क्या नहीं सिद्ध होता है जब इन के ग्रन्थों में अन्य मतवालों के साथ न बात चीत करना और न उन का कुछ सहाय करना और न जीवरक्षा की वस्तुयें बनाना इत्यादि निषेध लिखा है जैसा कुआ बाग तालाव आदि फिर ये पूर्ण जीव रक्षक कैसे सिद्ध हो सकते हैं हां यह हम कह सकते हैं कि और आधुनिक मतों से इन में जीवरक्षा कुछ विशेष है कहां तक इन की असङ्गत बातें और आधुनिकता लिखें इन की असत् गाथाओं का तो वारापार नहीं इस से सज्जनों के विलोकनार्थ कुछ विदित करके लेखनी को विश्राम देता हूं और सज्जनों की सेवा में प्रतिज्ञा कर के कहता हूं कि इन का सम्पूर्ण लेख जो शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद में छपा है अनेक पक्षपात और मिथ्या-भाषण की व्याधियों से ग्रस्त है इस को कोई सज्जन माननीय नहीं कह सकता है ॥

इति सर्व सज्जनों का कृपाभिलाषी

गङ्गारामवर्म्मा मन्त्री आर्य्यसमाज

फ़ीरोज़ाबाद

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इससे अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायं गे (३) डाक महसूल किसी से न लिया जायगा। (४) २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजे जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजैं ॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—८५	३१॥≡)	संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
यजुर्वेद भाष्य अं० १—८५	३१॥≡)	व्यवहारभानु	।)
ऋग्वेद भाष्य भूमिका		भ्रमोच्छेदन	।)
विना जिल्द की	५।/)	अनुभ्रमोच्छेदन	।)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)	मेलाचान्दापुर	≡)
” (डाकव्यय)	।/)	आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)॥
सन्धिविषय	/)	गोकरुणानिधि	/)॥
नामिक	/)	स्वामीनारायणमतखण्डन	
कारकीय	।/	संस्कृतगुजराती	≡)
सामासिक	/)	उक्त गुजराती	/)
स्त्रैणताद्धित	१।)	वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
अव्ययार्थ	≡)	शास्त्रार्थकाशी	≡)
सौवर	२।)	आर्य्याभिविनय	।/)
पारिभाषिक	।)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	≡)
धातुपाठ	/)	भ्रान्तिनिवारण	≡)॥
गणपाठ	।≡	पञ्चमहायज्ञविधि	।)
उणादिकोष	≡)	सत्यार्थप्रकाश	२॥)
निघण्टु	/)	” (विना कमीशन)	
अष्टाध्यायीमूल	।/)	आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।
		” (डाकव्यय अलग)	

वेदविरुद्धमतखण्डनोयङ्ग्रन्थः

———•✻•———

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीनिर्मितः

तच्छिष्यभीमसेनशर्म्मकृतभाषानुवादसहितः

प्रयागनगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

सम्मतिरत्नवेदमतानुयायिपूर्णानन्दस्वामिनः

संवत् १९४४

श्रावण शुक्ल

द्वितीयवार छपा
१०००

डाकव्ययसहित
मूल्य ।~



ओ३म्

अथ वल्लभादिमतस्थान्प्राति प्रश्नाः खण्डनंच।



१—(प्र०) कोऽयं वल्लभोनाम कश्चास्यार्थः ? ॥

२—(उ०) वल्लभोऽस्मदाचार्यः प्रियत्वगुणविशिष्टोऽस्यार्थः ॥

३—(प्र०) किमाचार्यत्वं नाम भवन्तश्च के ?

४—(उ०) गुरुराचार्यः, वयं वर्णाश्रमस्थाः ॥

५—(प्र०) किं गुरुत्वमस्ति ? ॥

६—(उ०) उपदेष्टृत्वमिति वदामः ॥

७—(प्र०) स वल्लभो धर्मात्मनां विदुषां प्रिय उताधर्मात्मनां मूर्खाणां च ? ॥

१—(प्र०) वल्लभनामक पुरुष कौन है और इस शब्द का अर्थ क्या है?

२—(उ०) वल्लभ हमारा आचार्य है इस वल्लभ शब्द का अर्थ प्रीति गुणयुक्त प्यारा है ॥

३—(प्र०) आचार्यपन क्या है और आप कौन हैं ? ॥

४—(उ०) गुरु को आचार्य्य कहते हैं और हम लोग वर्णाश्रम धर्मस्थ हैं॥

५—(प्र०) गुरुपन क्या वस्तु है ? ॥

६—(उ०) उपदेश करना इस को हम लोग गुरुपन कहते हैं ॥

७—(प्र०) वह वल्लभनामी पुरुष धर्मात्मा विद्वानों को प्रिय है अथवा अधर्मी और मूर्खों को प्रिय है ? ॥

८—(उ०) नाद्यः कुतो भवतां सर्वेषान्तु धर्माचरणविद्यावत्त्वाभावात् । किन्तु कश्चित्तादृशोऽस्ति । न चरमोऽधर्मात्मनां मूर्खाणां तत्र प्रीत्या स एवाश्रेष्ठः स्यात् स्वजातिपरत्वप्रवाहस्य विद्यमानत्वात् । अन्यच्च सजीवान्प्रति सर्वेषां प्रीतेः सत्त्वान्मृतांश्च प्रति प्रीतेरभावान्नैष्फल्याच्च तत्र वल्लभत्वमेव दुर्घटम् । मृतस्याचार्यत्वकरणासंभवात् । समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठङ्गुरुं समुपगच्छेदिति श्रुतेर्वर्त्तमानाभिप्रायत्वात् । उपनीयतु यश्शिष्यम्वेदमध्यापयेद् द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यम्प्रचक्षत इति मनुमतविरोधात्॥

८—(उ०) आद्यपक्ष अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों को वह प्रिय नहीं हो सकता क्योंकि आप सब लोगों का धर्माचरण और विद्यावान् होना संभव नहीं किन्तु कोई वैसा है । और द्वितीयपक्ष इस लिये ठीक नहीं कि वल्लभ मूर्खों को प्रिय हो तो उस में मूर्खों की प्रीति होने से वह ही अश्रेष्ठ समझा जावे क्योंकि अपने २ सजातीय में प्रीति होने का प्रवाह प्रसिद्ध है अर्थात् विद्वानों की विद्वानों में और मूर्खों की मूर्खों में प्रीति विशेष होती है । और भी देखो कि जीवतों में सब की प्रीति होने मरे हुओं में न होने और मरों में प्रीति करना भी निष्फल होने से उस पुरुष में वल्लभत्व अर्थात् प्रियपन होना ही नहीं घट सकता और मरे हुए को गुरु करना भी असम्भव है । वेद में लिखा है कि वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास हाथ में समिध ले के जावे इस से सिद्ध है कि मरे हुए के पास हाथ में समिध ले के जाना असम्भव है और "जो यज्ञोपवीत करा के कल्पसूत्र और वेदान्त सहित शिष्य को वेद पढ़ावे उस को आचार्य कहते हैं" इस मानवधर्मशास्त्र की सम्मति से भी वल्लभ का आचार्यत्व

मरणानन्तरमध्ययनाऽध्यापनयोरशक्यत्वात् शरीरमात्रसंबन्धाभावा-च्चेति युक्त्या तस्मिन्नाचार्य्यत्वमेवासङ्गतम् ॥ तथा च मृतम्प्रति प्रीतिरशक्या निष्फला च ॥ तत्र प्रियत्वगुणविशिष्टवचनत्वमप्य-सङ्गतन्तस्य भ्रान्तिनिष्ठत्वात् ॥

९—(प्रश्न) किङ्गुरुत्वं सत्योपदेष्टृत्वमाहोस्विदसत्योपदेष्टृत्वञ्च?॥

१०—(उत्तर) नादिमः कुतो भवत्सु श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठत्वासत्त्वादस्ति चेन्न सङ्गच्छते विषयसेवायां प्रीतेर्दर्शनात् ॥ अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयत इति मनुसाक्ष्यविरोधाद्भवतामर्थकामेष्वेवासक्तेः

होना विरुद्ध है मरने पश्चात् पढ़ना पढ़ाना आदि जो आत्मधर्म हैं वे नहीं हो सकते क्योंकि इन धर्मों का शरीर मात्र से सम्बन्ध नहीं है इस प्रकार की युक्तियों से वल्लभ को आचार्य मानना ही असंगत है। इसी कारण मरे से प्रीति करना अशक्य और निष्फल है और वल्लभ के भ्रान्तिग्रस्त होने से उस को प्रियत्व गुणयुक्त कहना भी सर्वथा असंगत है॥

९—(प्र०) गुरुपन क्या वस्तु है?क्या सत्योपदेश करना वा असत्य उपदेश करना भी गुरुपन कहाता है?॥

१०—(उ०) प्रथम पक्ष अर्थात् सत्योपदेश करना रूप गुरुत्व नहीं घटता क्योंकि सत्योपदेष्टा गुरु तुम में इस से नहीं हो सकते कि आप लोगों में वेदवेत्ता और ब्रह्मज्ञानी जन नहीं हैं यदि कहो कि हैं तो तुम्हारा कहना असंगत है क्योंकि तुम लोगों की प्रीति विषयों की सेवा में प्रसिद्ध दीखती है। धर्मशास्त्र में कहा है कि अर्थ और काम में जो आसक्त नहीं उन के लिये धर्मज्ञान का विधान है। इस से विरुद्ध आप लोगों की आसक्ति द्रव्य और काम चेष्टा ही में प्रसिद्ध है।

प्रत्यक्षत्वात्स्त्रीषु धनेषु चात्यन्तप्रीतेर्विद्यमानत्वान्मरणसमयेपि स्वशिष्याणां वक्षस्थलस्योपरि पादं स्थापयित्वा धनादीनां पदार्थानां संग्राहकत्वाद्यथा मृतकस्य शरीरस्य वस्त्राऽऽभूषणादीन्पदार्थान् कश्चिद्गृह्णाति भवतान्तेन तुल्यत्वाच्च ॥ नान्त्यः ॥ असत्योपदेशस्यानभिधानादद्वयोर्दुःखफलस्य प्रापकत्वाच्च ॥ स्वपुत्रादीन्प्रति पितुर्गुरुत्वाऽधिकारादन्यान्प्रतिगुरुत्वाभिमानानभिधानाद्भवत्सु गुरुत्वस्य विरहएवेत्यवगन्तव्यम् ॥ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यत इति मनुसाक्ष्यविरोधादविवाहितस्त्रियां वीर्यनिषेकस्य पापफलत्वाच्चेति ॥ भवन्तो

स्त्रियों और धनों में तुम्हारी अत्यन्त प्रीति प्रत्यक्ष विद्यमान है और मरण समय में भी अपने शिष्यों की छाती पर पग रख के धनादि पदार्थों का संग्रह करते हो और महाब्राह्मण वा चाण्डालादि के तुल्य मृतक के वस्त्र आभूषणादि पदार्थों को लेते हो इस से महाब्राह्मणादि के तुल्य हुए। और द्वितीय पक्ष असत्योपदेश करने से भी वल्लभगुरु नहीं हो सकते क्योंकि असत्योपदेश से गुरु मानना शास्त्र विरुद्ध और दोनों गुरुशिष्य दुःख फलभागी होते हैं। अपने पुत्रों के प्रति गुरु होने का मुख्य अधिकार पिता को है। अन्य किसी का स्वयमेव गुरुबन बैठने का धर्मशास्त्र में विधान न होने से आप लोगों में गुरुत्व कदापि संघटित नहीं हो सकता। धर्मशास्त्र में कहा भी है "जो विधिपूर्वक गर्भाधानादि कर्मों को करता और अन्नादि से पालन करता है वह ब्राह्मण गुरु कहाता है" इस से अन्य को गुरु मानना विरुद्ध है। और अविवाहित स्त्री में गर्भाधान करना पाप है इस से मुख्य कर पिता ही गुरु हो

वर्णाश्रमस्थाश्चेत्तर्हि वेदोक्तानि वर्णाश्रमस्थकर्त्तव्यानि कर्माणि कुतो न क्रियन्ते क्रियन्ते चेन्मूर्त्तिपूजनं कण्ठीधारणन्तिलकं समर्पणं वेदानुक्तमंत्रोपदेशञ्च त्यजन्तु नोचेद्वेदोक्तधर्माचरणविरोधाद्भवन्तो वर्णाश्रमस्था एव नेति मन्तव्यम् ॥

११–(प्र०) भवन्तो गुरवःशिष्या मध्यस्था वा ? ॥

१२–(उ०) गुरवश्चेदर्थज्ञानपूर्वकान्वेदान्पाठशालाङ्कृत्वा कुतो नाध्यापयन्ति ? शिष्याश्चेत्कथं न पठन्ति ? मध्यस्थाश्चेद्ब्राह्मणाचार्याभिमानो भवत्सु व्यर्थोऽस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥

१३–(प्र०) भवन्तो वेदमतानुयायिनस्तद्विरोधिनो वा ? ॥

सकता है ! यदि आप लोग वर्णाश्रम धर्मस्थ अपने को मानते हैं तो वर्णाश्रम के कर्तव्य वेदोक्त कर्म क्यों नहीं करते ? यदि करते हो तो पाषाणादि मूर्त्तिपूजन, कण्ठी बांधना, तिलक लगाना, समर्पण कराना और वेद में न कहे हुए मंत्रों का उपदेश करना छोड़ देवो यदि ऐसा नहीं करते तो वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म के आचरण से विरुद्ध होने से आप लोग वर्णाश्रमधर्मस्थ नहीं हो सकते यह निश्चय जानना चाहिये॥

११–(प्र०) आप लोग गुरुशिष्य वा मध्यस्थ हो ? ॥

१२–(उ०) यदि गुरु हो तो पाठशाला कर अर्थज्ञानपूर्वक वेदों को क्यों नहीं पढ़ाते ? यदि शिष्य हो तो क्यों नहीं पढ़ते ? । यदि मध्यस्थ हो तो आप में ब्राह्मण और आचार्य होने का अभिमान व्यर्थ है यह निश्चय जानना चाहिये ॥

१३ (प्र०) आप लोग वेदमतानुयायी हो वा वेदमत के विरोधी हो ?॥

१४–(उ०) यदि वेदमतानुयायिनस्तर्हि वेदोक्तविरुद्धं स्वकपोलकल्पितं वल्लभसंप्रदायमन्यं वा किमर्थं मन्यन्ते ? वेदविरोधिनश्चेन्नास्तिकत्वं शूद्रत्वञ्च किमर्थं न स्वीक्रियते ? ॥ नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वय इति मनुसाक्ष्यविरोधात् ॥ पुनर्हि जन्ममरणवतो देहधारिणः कृष्णादीञ्जीवानीश्वरत्वेन किमर्थं व्यवहरन्ति ? नो चेन्मन्दिरे जड़मूर्त्तिस्थापनङ्कृत्वा घण्टादिनादञ्चाज्ञानिनां मिथ्योपदेशव्याजेन धनादीन्पदार्थान्किमर्थमाहरन्ति? ॥

१५–(प्रश्न) भवन्तः स्वस्मिन्कृष्णत्वं मन्यंत उत मनुष्यत्वम् ? ॥

१४–(उ०) यदि वेदमतानुयायी हो तो वेदविरुद्ध अपने कपोलकल्पित वल्लभ वा अन्य संप्रदाय को क्यों मानते हो? । यदि वेदविरोधी हो तो अपने को नास्तिक और शूद्रकक्षा में क्यों नहीं मानते ? यही धर्मशास्त्र में लिखा है कि "वेदनिन्दक ही नास्तिक होता है" और "जो वेद को न पढ़ के अन्य ग्रन्थों में परिश्रम करता है वह अपने कुटुम्ब सहित जीवते ही शूद्र हो जाता है" इस से नास्तिक और शूद्रकक्षा के योग्य हो ! फिर जन्मने मरने वाले श्रीकृष्ण जी आदि देहधारी जीवों में ईश्वर भावका व्यवहार क्योंकि करते हो ? यदि कहो कि हम श्रीकृष्णादि को ईश्वर नहीं मानते तो मन्दिरों में उन की जड़ मूर्त्ति स्थापन और घण्टादि बजा कर उपदेश के छल से अज्ञानियों के धनादि पदार्थ क्यों हरते हो ? ॥

१५–(प्र०) आप लोग अपने में कृष्णपन की भावना करते हैं वा मनुष्यपन की ? ॥

१६–(उ०) कृष्णत्वं मन्यन्ते चेद्यादवक्षत्रियाभिमानित्वं कुतो न स्वीक्रियते तादृशः पराक्रमो भवत्सु कुतो न दृश्यते कृष्णस्तु परमपदं प्राप्तो भवन्तः कथञ्जीवनवन्तश्च ॥ मनुष्यत्वं चेत्तर्हि स्वोत्तमाभिमानस्त्यज्यताम् ॥

१७–(प्र०) भवन्तो वैष्णवा उतान्ये वैष्णवाश्चेत्कीदृगर्थो वैष्णवशब्दस्य स्वीक्रियते ? ॥

१८–(उ०) विष्णोरयं भक्तो वैष्णव इति वदाम इति चेन्नैवं शक्यन्तस्येदमिति सूत्रस्य सामान्यार्थे वर्त्तमानत्वाद्विष्णोरयमित्येतावानर्थो ग्रहीतुं शक्यो विशेषार्थग्रहस्य नियमाभावात् ॥ यथा भवद्भिर्भक्तशब्दो गृहीतस्तथाविष्णोरयं शत्रुः पुत्रः पिता प्रभावश्शिष्यो गुरुश्चेत्यादयोर्था अन्येनापि ग्रहीतुं शक्या अतो भवत्कृतोर्थोऽनुचितः ॥

१६–(उ०) यदि अपने को कृष्ण मानते हो तो यादव क्षत्रियों के युद्धादि सब कामों को क्यों नहीं ग्रहण करते? श्रीकृष्ण जी के सदृश पराक्रम आप लोगों में क्यों नहीं दीख पड़ता ? । श्रीकृष्ण जी तो परमपद को प्राप्त हो गये आप लोग कैसे जीवते बने हो? और यदि अपने को मनुष्य मानते हो तो अपने उत्तम मानने का अभिमान छोड़ देओ ॥

१७–(प्र०) आप लोग वैष्णव हो वा अन्य ? । यदि वैष्णव हो तो वैष्णव शब्द का अर्थ कैसा स्वीकार करते हो ? ॥

१८–(उ०) यदि कहते हो कि विष्णु का भक्त वैष्णव है तो ठीक नहीं क्यों कि व्याकरण के (तस्येदम्) इस सूत्र से विष्णु का सम्बन्धी रूप सामान्य अर्थ ग्रहण होता है भक्ति विशेषरूप अर्थ लेने में कोई नियम नहीं जैसे आप लोगों ने विष्णु का सम्बन्धी भक्तरूप अर्थ का ग्रहण किया वैसे कोई विष्णु शब्द के शत्रु, पुत्र, पिता, प्रभाव, शिष्य, गुरु आदि अर्थों का ग्रहण कर शत्रु आदि को भी वैष्णव कह सकता है। इस लिये आप लोगों का कल्पित अर्थ ठीक नहीं हो सकता ॥

१९—(प्र०) भवद्भिर्विष्णुः कीदृशो गृहीतः ॥

२०—(उ०) गोलोकवैकुण्ठवासी चतुर्भुजो द्विभुजो लक्ष्मीपतिर्देहधारीत्यादिर्वेति वदाम इति चेद् व्यापकत्वं त्यज्यताम् ॥ चतुर्भुजादिकं मन्यते चेत्सावयवत्वमनित्यत्वञ्च स्वीक्रियतामीश्वरत्वञ्च त्यज्यताम् ॥ कुतः संयोगमन्तरासावयवत्वमेव न सिध्यति संयोगश्चानित्यस्तस्माद्भिन्नएवेश्वर इति स्वीकारे मङ्गलन्नान्यथा । ईश्वरस्य सावयवत्वग्रहणं वेदविरुद्धमेव । सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्ध मपापविद्धमित्यादिश्रुतिविरोधात् ॥

२१—(प्र०) कण्ठीतिलकधारणे मूर्तिपूजने च पुण्यं भवत्युतापुण्यम् ? ॥

१९—(प्र०) आप लोगों ने विष्णु को किस प्रकार का समझा है? ॥

२०—(उ०) यदि गोलोक, वैकुण्ठ का निवासी, चतुर्भुज, द्विभुज, लक्ष्मी का पति देहधारी कहते हो तो व्यापक होना छोडो। यदि चतुर्भुजादि आकृति वाला मानते हो तो सावयव उत्पत्ति धर्म वाला अनित्य मानो और इस में ईश्वरत्व छोडो। क्योंकि संयोग के विना सावयव होना नहीं सिद्ध होता और संयोग अनित्य है इस से संयोग वियोग वाले से भिन्न को ईश्वर मानने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं । और ईश्वर को सावयव मानना वेद विरुद्ध ही है। वेद में कहा है कि ईश्वर शरीर, छेदन और नाड़ी आदि के बन्धन से रहित शुद्ध निष्पाप सर्वत्र व्यापक है इस से तुह्मारा कहना विरुद्ध है ॥

२१— (प्र०) कंठी तथा तिलकधारण और मूर्त्ति के पूजने में पुण्य होता है वा अपुण्य ? ॥

२२-(उ०) पुण्यं भवतिं न च पापमिति ब्रूमः ॥ स्वल्पकण्ठीतिलकधारणे मूर्तिपूजने च पुण्यं भवति चेत्तर्हि कण्ठीभारधारणे सर्वमुखशरीरलेपने पृथिवीपर्वतपूजने च महत्पुण्यं भवतीति मन्यताङ्क्रियताञ्च ॥ तत्र वेदविधिप्रतिष्ठाया अभावान्न क्रियत इति जल्पामः ॥ वेदेषु तु खलुकण्ठीतिलकधारणस्य पाषाणमूर्त्तिपूजनस्य च लेशमात्रोपि विधिः प्रतिष्ठा च न दृश्यते। अतो भवत्कथनं व्यर्थमेव॥

२३-(प्र०) किं प्रतिष्ठात्वन्नाम ॥

२४-(उ०) पाषाणादिमूर्त्तिषु प्राणादीनाहूय तत्र स्थापनमिति ब्रूम इति नैवं शक्यं वक्तुम्॥ कथं प्राणादीनान्तत्कर्मणान्तत्रादर्शनात्॥ यदि तत्र प्राणादयो वसेयुस्तर्हि गमनभाषणभोजनमलविसर्जनादीनि

२२-(उ०)पुण्य होता है पाप नहीं ऐसा कहते हो सो ठीक नहीं क्यों कि यदि थोड़े कंठी तथा तिलक के धारण और मूर्त्तिपूजन में पुण्य होता है तो बहुत कंठियों का भार लादने चन्दन से सब मुख और शरीर के लेपन करने तथा सम्पूर्ण पृथिवी और पर्वतों के पूजने में बड़ा पुण्य होता है ऐसा मानो और करो। यदि कहो कि पृथिवी और पहाड़ के पूजने के लिये वेद में प्रतिष्ठा का विधान न होने से नहीं करते तो वेदों में कंठी तिलकधारण और पाषाणमूर्त्तिपूजन का लेशमात्र भी विधान नहीं और न प्रतिष्ठा का कहीं नाम है इस लिये आप का कथन व्यर्थ है॥

२३-(प्र०) प्रतिष्ठा करना क्या वस्तु है ? ॥

२४-(उ०)यदि कहते हो कि पाषाण आदि की मूर्त्तियों में वेदमंत्रद्वारा प्राण आदिका आह्वान कर स्थापन करना प्रतिष्ठा है तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि प्राण आदि और उनकी क्रिया मूर्त्तियों में नहीं दीख पड़ती जो उन मूर्त्तियों में प्राण वा इन्द्रिय रहते हों तो चलना, बोलना, खाना,

कर्माणि कुतो न दृश्यन्ते ? ताश्च कथं न कुर्वन्ति ? यदि प्राणादीनां यत्र कुत्र स्थापने शक्तिरस्ति चेत्तर्हि मृतकशरीराणां मध्ये प्राणादीन् स्थापयित्वा कुतो न जीवयन्ति ? । भवतामनेनैव महान् धनलाभः प्रतिष्ठा च भविष्यति ॥ किञ्च पाषाणादिमूर्त्तीनाम्मध्ये प्राणादीनाङ्गमनागमनयोरवकाश एव नास्ति न नाड्यश्छिद्राणि च। मृतकशरीराणां मध्ये तु यथावत्सामग्री वर्त्तत एव प्राणादिभिर्विना दाहादिकाः क्रिया जनैः क्रियन्ते यदा भवन्तः प्राणादीनान्तत्र स्थापनङ्कुर्युस्तदा कस्यापि मरणमेव न भवेदनेन महत्पुण्यम्भविष्यति तस्माच्छीघ्रमेवेदङ्कर्म कर्त्तव्यमिति निश्चेतव्यम् ॥ यदि कश्चिन्मृतं शरीरञ्जीवयेत्तादृशो मनुष्यो न भूतो न भविष्यतीति वयं जानीमः॥

मलमूत्र त्याग करना आदि कर्म क्यों नहीं दीख पड़ते? और वे मूर्त्तियां उन कामों को क्यों नहीं करतीं? यदि प्राणादिकों को जहां कहीं स्थापन करने की शक्ति तुम लोगों में है तो मृतक शरीरों के बीच प्राणादि को स्थापन कर क्यों नहीं जिला देते? केवल इसी एक कर्म से तुम को बहुत धन की प्राप्ति और प्रतिष्ठा होगी। और यह भी विचारो कि पाषाणादि मूर्त्तियों में तो प्राणादि के जाने आने का अवकाश ही नहीं न नाड़ी और इन्द्रिय छिद्र हैं और मृतक शरीरों में तो सब अवकाश नाड़ी और इन्द्रियों के छिद्र आदि सामग्री विद्यमान ही रहती है केवल प्राणादि के न रहने से वे शरीर जला दिये जाते हैं सो जब आप लोग उन शरीरों में आह्वान कर प्राणादि को स्थित कर देखो तब तो किसी का मरण ही न होवे? इस से बड़ा पुण्य होगा इस लिये शीघ्र ही निश्चय कर यह कर्म करना चाहिये। हम जानते हैं कि यदि कोई मरे हुए को जिला देवे ऐसा मनुष्य न हुआ न होगा

कुत ईश्वरस्य नियमस्यान्यथाकरणे कस्यापि सामर्थ्यन्न जातन्न भविष्यतीत्यवगन्तव्यम् ॥ तद्यथा जिह्वयैव रसज्ञानम्भवति नान्यथेतीश्वरनियमोऽस्ति ॥ एतस्यान्यथाकरणे कस्यापि यथा सामर्थ्यन्नास्ति तथा सर्वेष्वीश्वरकृतेषु नियमेष्विति बोध्यम् ॥ ईश्वरेण ये जडाः पदार्था रचितास्ते कदाचिच्चेतना न भवन्ति तथा चेतना जडाः कदाचिन्नैव भवन्तीति निश्चयः ॥ ईश्वरः सर्वव्याप्यस्त्यतः पाषाणादिमूर्त्तिमध्येप्यस्ति पुनस्तत्पूजने को दोषः खण्डनञ्च किमर्थं क्रियते ?॥ एवञ्जानन्ति चेत्तर्हि पुष्पत्रोटनञ्चन्दनघर्षणन्नमस्कारञ्च किमर्थं कुर्वन्ति? कुतः सर्वत्रेश्वरस्य व्यापकत्वात् ॥ नोचेदन्यघृणितपदार्थानाञ्च पूजनङ्किमर्थं न कुर्वन्ति?॥ सर्वव्यापिनीश्वरे सिद्धे

क्योंकि ईश्वर के नियम के अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य न हुआ न होगा यह निश्चय जानना चाहिये। जैसे जीभ से ही रस का ज्ञान हो सकता है अन्य इन्द्रिय से नहीं यह ईश्वरकृत नियम है इस के अन्यथा करने में जैसे किसी का सामर्थ्य नहीं है वैसे ही ईश्वर के किये सब नियमों में जानना चाहिये। ईश्वर ने जो पदार्थ जड़ बनाये हैं वे कभी चेतन नहीं होते वैसे चेतन कभी जड नहीं हो जाते यह निश्चय है। यदि कहो कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है इस से पाषाणादि मूर्त्तियों में भी है तो पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजने में क्या दोष है? और क्यों खण्डन करते हो तो उत्तर यह है कि यदि ऐसी भावना रख पूजा करते हो तो पुष्प तोड़ना, चन्दन घिसना और हाथ जोड कर नमस्कार आदि कर्म क्यों करते हो ? क्योंकि ईश्वर पुष्प चन्दन हाथ और मुख आदि में भी व्यापक है जैसे पाषाणादि में व्यापक होने से ईश्वर पूजित होगा वैसे पुष्पादि के साथ टूटना घिसजाना भी संभव है यदि नहीं मानते तो अन्य घृणित पदार्थों का पूजन क्यों नहीं करते ?। जब ईश्वर सर्व व्यापक सिद्ध है

खल्वेकस्मिन्वस्तुनि स्वीकृते महत्पापं भवति ॥ तद्यथा चक्रवर्त्तिनं राजानम्प्रति कश्चिद्ब्रूयाद्भवान्दशहस्तप्रमितायां भूमेः राजास्तीति तम्प्रति राज्ञो महान्कोपो यथा भवति तथेश्वरस्यैवं स्वीकारे चेति वेदितव्यम् ॥

२५—(प्र०) किञ्चिन्मात्राणाम्पाषाणपित्तलादिमूर्त्तीनां पूजने पुण्यम्भवत्युत पापम् ? ॥

२६—(उ०) नाद्यः कुतः किञ्चिन्मात्रस्य पित्तलादेर्मूर्त्तिपूजने पुण्यम्भवति चेत्तर्हि महतः पित्तलादिमूर्त्तेर्दण्डप्रहारेण महत्पापं भवतीति बुध्यताम् ॥ अन्यच्च वेदानभिहितपाषाणादिमूर्त्तिपूजने महत्पापमेव भवतीति स्वीक्रियतान्नोचेन्नास्तिकत्वं स्वीकार्यम् ॥

तो एक छोटी सी किसी मूर्त्ति आदि वस्तु में उसको मानना बडापाप है। तद्यथा—जैसे चक्रवर्त्ति राजा से कोई कहै कि आप दश हाथ भूमि के राजा हैं उसके प्रति जैसे राजा का बडा कोप होता है वैसे ईश्वर को इस प्रकार स्वीकार करने में ईश्वर बडा कोप करेगा यह जानना चाहिये॥

२५—(प्र०) छोटी २ बनी हुई पाषाण पित्तलादि की मूर्त्तियों के पूजन में पुण्य होता है वा पाप ? ॥

२६—(उ०) पहिला पक्ष पुण्य होना ठीक नहीं क्योंकि यदि छोटी २ पीतल आदि की मूर्त्तियों के पूजने में पुण्य होता है तो बडी २ पीतल आदि की घंटादिरूप मूर्त्तियों में दण्डा मारने से बडा पाप होता है ऐसा जानो और भी देखो कि वेद में नहीं कहे पाषाणादि मूर्त्ति के पूजन में महापाप ही होता है ऐसा मानो यदि न मानो तो वेद विरोधी होने से नास्तिक बनो । और पाप होना रूप द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि

न चरमः कुतः पापाचरणस्य वेदेऽनभिधानात् ॥ मनुष्यजन्मानेन व्यर्थमेव गच्छतीत्यतः ॥ तत्पूजनम्मुक्तिसाधनञ्चेन्न तस्या मूर्त्ते-रपिशिल्पिना पूजारिणा वैकत्र वद्धत्वात्स्वयञ्जडत्वाच्चेति ॥

२७—(प्र०) ईदृक्कण्ठीतिलकधारणे किं मानङ्का वा युक्तिः?॥

२८—(उ०) हरिपदाकृतित्वम् ॥ कृष्णस्य ललाटे राधया कुङ्कु-मयुक्तेन चरणेन कृतं ताडनं ललाटस्य शोभार्थञ्चेति ब्रूमः ॥ हरिशब्देन कस्य ग्रहणम् ?॥ विष्णोरेवेति वदामः । नैतदेकान्ततः शक्यं ग्रहीतुम् ॥ अश्वसिंहसूर्यवानरमनुष्यादीनामपि ग्रहणाद्वेदानु-क्तत्वादयुक्तत्वादत एव पापजनकन्तिलकमिति वेद्यम् ॥ किञ्च

पाप करना भी वेदमें नहीं कहा तो मनुष्य जन्म इस से व्यर्थ जाता है यदि कहो कि मूर्त्तियों का पूजना मुक्ति का साधन है तो ठीक नहीं क्योंकि उस मूर्त्ति को कारीगर वा पूजारी ने एक स्थान में स्थिर वद्ध किया और स्वयं जड़ है तो अन्य को क्या मुक्ति दे सके गी ॥

२७—(प्र०) ऐसे विशेष चिन्ह युक्त कण्ठी और तिलक के धारण में क्या प्रमाण वा युक्ति है ?॥

२८—(उ०)श्रीकृष्णके पग के आकार तिलक इसलिये धारण करते हैं कि कृष्ण के मस्तक पर राधा जी ने लालचन्दनयुक्त लात मारी थी और वैसी लात मार ने से शोभा भी समझते हैं। (प्र०) हरि शब्द से किस को लेते हो ? हरि शब्द से विष्णु का ग्रहण करते हैं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि घोड़ा, सिंह, सूर्य, बानर और मनुष्यादि का नाम भी हरि है उन का ग्रहण क्यों नहीं होता ? वेदोक्त न होने से तिलक लगाना अयुक्त है इसी से पाप कारी है यह जानना चाहिये ॥ तिलक क्या

तिलकत्वमिति ॥ त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्ररचनत्वमिति वदामः ॥ नैवम्वक्तु-मुचितम् ॥ तिलस्य प्रतिकृतिस्तिलकमल्पस्तिलस्तिलकम्वेत्यर्थस्य जागरूकत्वादेतावतो दीर्घस्य ललाटे लिप्तस्य तिलकसंज्ञायां मतायाम्भवत्सु प्रमत्तत्वापत्तिर्भवतीति वेद्यम् ॥

२९—(प्र०) मूर्त्तिपूजनादिषु पुण्यम्भवत्युत पापम् ? ॥

३०—(उ०) मूर्त्तिपूजने कण्ठीतिलकधारणे च दोषो नास्ति कुतः यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशीत्यतः ॥

३१—(प्र०) भावना सत्यास्त्युत मिथ्या ? ॥

३२—(उ०) न प्रथमः कुतो दुःखस्य भावनाङ्कोपि न करोति सदैव सुखस्यैव च पुनः सुखं न भवति दुःखञ्च भवत्यतो भावना

वस्तु है ? । यदि त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र रचना को तिलक कहते हो तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि व्याकरण रीति से तिल के प्रतिविम्ब को तिलक वा छोटे तिल को तिलक कहना चाहिये यह सिद्ध है तो इस प्रकार के लम्बीभूत चन्दनादि ललाट पर के लेपन को तिलक संज्ञा मानने में आप लोगों में प्रमाद प्राप्त होता है यह निश्चय जानना चाहिये ॥

२९—(प्र०) मूर्त्तिपूजनादि में पाप होता है वा पुण्य ? ॥

३०—(उ०) मूर्त्तिपूजन और कण्ठी तिलक धारण करने में कुछ दोष नहीं है क्योंकि जिस की भावना जैसी होती है उस को वैसी ही सिद्धि हो जाती है ॥

३१—(प्र०) भावना सत्य है वा मिथ्या ? ।

३२—(उ०) पहिला पक्ष भावना का सत्य मानना ठीक नहीं क्योंकि दुःख की भावना कोई नहीं करता किन्तु सदैव सुख की भावना सब करते हैं फिर भी सब को सुख नहीं मिलता किन्तु दुःख होता ही है इस से

न सत्या ॥ न द्वितीयः कथं विद्याधर्मार्थकाममोक्षाणां भावनया विना सिद्धिरेव न भवतीत्यतः ॥ यदि भावना सत्यास्ति चेत्तर्हि भवच्छरीरे रेलाख्ययानभावनाङ्कृत्वोपर्य्यासीमहि यावता कालेन यावद्देशान्तरन्तद्यानङ्गच्छति तावता कालेनैव भवच्छरीरन्तावद्देशान्तरमस्मान्गमयेच्चेत्तदा तु भावना सत्या नान्यथा ॥ पुनः पाषाणादिषु हीरकादिरत्नभावनाञ्जले दधिघृतदुग्धभावनान्धूल्याङ्गोधूमपिष्टशर्कराभावनां शर्करायान्तन्दुलभावनान्तथा जडे चेतनभावनाञ्चेतने जडभावनान्दरिद्रः स्वस्मिँश्चक्रवर्त्तिभावनाञ्चक्रवर्त्ती स्वस्मिन्दरिद्रभावनाञ्च कुर्यात्सा तथैव सिद्धा भवेच्चेत्तदा तु

भावना सत्य नहीं । दूसरा पक्ष भावना का मिथ्या मानना भी ठीक नहीं क्योंकि भावना के विना विद्या, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि ही नहीं हो सकती । इस से यथा योग्य भावना करना ठीक है । यदि अन्य में अन्य की भावना करनां सत्य है तो आप के शरीर में रेल की भावना करके हम बैठें तो जितने समय में जितनी दूर रेल पहुंचती है उतने समय में उतनी दूर आप का शरीर हम को पहुंचा देवे तब तो भावना ठीक नहीं तो मिथ्या ? फिर पत्थर आदि में हीरे आदि रत्नों की भावना, जल में दूध दही घी की भावना, धूलि में आटा और शक्कर की, शक्कर में तण्डुल की, जड़ में चेतन, चेतन में जड़, निर्धनी दरिद्र अपने में चक्रवर्त्ती राजा की और चक्रवर्त्ती राजा अपने में दरिद्रता की भावना करे और वह वैसी ही ठीक २ सिद्ध हो जावे तब तो सत्य अन्यथा मिथ्या जाननी चाहिये । तो फिर भावना

सत्याऽन्यथामिथ्येति बोद्धव्यम् ॥ तर्हि भावना का नाम ॥ भावना तु पाषाणे पाषाणभावना रोटिकायां रोटिकाभावनेति यथार्थं ज्ञानमिति ब्रूमस्तास्मिँस्तद्बुद्धिरिति ॥ तथारोटिकायाम्पाषाणभावना पाषाणे रोटिकाभावनाऽयथार्थज्ञानमतस्मिँस्तद्बुद्धिर्भ्रमोह्य भावना चेति ॥

३३—(प्र०) प्रतिमाशब्देन किङ्गृह्यते ॥

३४—(उ०) पूजनार्हा चतुर्भुजादिमूर्तिरिति वदामः ॥

३५—(प्र०) प्रतिमाशब्दस्य कोऽर्थः क्रियते ॥

३६—(उ०) प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा किञ्चाऽनया प्रतिमीयते ॥ ईश्वरशिवनारायणादयश्चेति वदामः ॥ किञ्च भोरनयापाषाणादिमूर्त्येश्वरस्य शिवादिशरीराणाञ्च प्रत्यक्षतया भवद्भिस्तोलनङ्कृतङ्किमतोयमर्थः क्रियते ? ॥

किस का नाम है ? । पत्थर में पत्थर रोटी में रोटी की भावना करना यथार्थ ज्ञान कहाता है । अर्थात् जैसे को वैसा जानना भावना है । रोटी में पत्थर और पत्थर में रोटी की भावना करना मिथ्या ज्ञान अन्य में अन्य बुद्धि भ्रमरूप अभावना कहाती है ॥

३३—(प्र०) प्रतिमा शब्द से क्या लेते हो ? ।

३४—(उ०) पूजने योग्य चतुर्भुज आदि की मूर्त्ति को लेते हैं ।

३५—(प्र०) प्रतिमा शब्द का क्या अर्थ करते हो ? ।

३६—(उ०) जिस से पदार्थ का स्वरूप वा अवधि जानी जावे वह प्रतिमा है ऐसा अर्थ करते हो तो किस का स्वरूप इस से जाना जाता है यदि कहो कि ईश्वर, शिव और नारायण आदि का बोध प्रतिमा से होता है तो हम पूछते हैं कि क्या इस पाषाणादि मूर्त्ति से ईश्वर और शिवादि के शरीरों को आपने प्रत्यक्ष तोल लिया है कि जिस से ऐसा अर्थ करते हैं ?

तुलामानं प्रतीमानं सर्वञ्च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेदिति मनुसाक्ष्यम्बोध्यम् ॥ प्रतिमाशब्देन गुडघृतादीनान्तोलनसाधनानाम्पलसेटकादीनां मासादीनां च ग्रहणमिति निश्चयः ॥ न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यश इति यजुस्संहितायां द्वात्रिंशेऽध्याये ॥ ईश्वरस्य प्रतिमा तोलनसाधनमेव न भवति तस्याऽतुलत्वात् ॥ अतएव भवत्कृतोऽर्थो व्यर्थएवेति बोध्यम् ॥

३७—(प्र०) पुराणशब्देन किङ्गृह्यते ? ॥

३८—(उ०) ब्रह्मवैवर्त्तादीन्यष्टादशपुराणोपपुराणानि चेति ब्रूमः ॥ नैवं शक्यम्पुराणशब्दस्य विशेषणवाचकत्वेन व्यावर्त्तकार्थत्वात्॥यथा पुरातनप्राचीनादयश्शब्दा नवीनार्वाचीनादीञ्छब्दार्थान्व्यावर्त्तयन्ति

धर्मशास्त्रस्थ राजधर्म में लिखा है कि "तराजू और प्रतीमान—बाट सब ठीक २ रखने चाहिये और छः२ महीने में इन की परीक्षा राजा करावे" इस प्रमाण के अनुकूल प्रतिमा शब्द से गुड़ घृत आदि के तोलने के साधन सेर आदि वा मासा आदि वटखरों का ग्रहण होना निश्चय है। और यजुर्वेद के वत्तीसवें अध्याय के तीसरे मंत्र में ईश्वर की प्रतिमा अर्थात् तोलसाधन का निषेध किया है क्योंकि ईश्वर अतुल है इसी से आपका किया अर्थ व्यर्थ ही जानना चाहिये ॥

३७—(प्र०) पुराणशब्द से क्या लेते हो ? ॥

३८—(उ०) ब्रह्मवैवर्त्तादि अठारह पुराण और उपपुराण लेते हो सो ठीक नहीं क्योंकि पुराण शब्द विशेषण वाचक होने से व्यावर्त्तक अर्थ वाची होता है। जैसे पुराने प्राचीन आदि शब्द नवीन और अर्वाचीन आदि से निवृत्त करते वैसे पुराणादि शब्द नवीन आदि के वाच्य अर्थों को निवृत्त करते हैं।

तथा पुराणादयश्शब्दा नवीनाद्यर्थाश्चेति ॥ तद्यथा केनचिदुक्तम्पुराणं घृतम्पुराणो गुडः पुराणी शाटी चेत्यर्थान्न नवीनं घृतञ्चेत्यादि व्यावर्त्तते तस्मात्पुराणशब्देन वेदानान्तद्व्याख्यानब्राह्मणादीनाञ्च ग्रहणं भवति नब्रह्मवैवर्त्तादीनाञ्चेति ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति दशमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत ॥ पुराणविद्यावेदो दशमेऽहनि श्रोतव्य इत्याद्यश्वमेधस्य पूर्त्यनन्तरन्नवदिनपर्यन्तमृग्वेदादिकं श्रुत्वाऽख्याय च दशमेऽहनि ब्रह्मज्ञानप्रतिपादकमुपनिषत्पुराणं शास्त्रं यजमानादय आचक्षीरञ्छृणुयुश्चेति ब्राह्मणवेदानामेव ग्रहणन्नान्यस्येति साक्ष्यात्सर्वेभ्यो वेदानामेव पुरातनत्वाच्चेति॥ परन्तु मतमस्माकं खलु वेदा नान्यदिति सिद्धान्तः॥ब्रह्मवैवर्त्तादीनि व्यासनामव्याजेन संप्रदायस्थैर्जीविकार्थिभिर्मनुष्याणाम्भ्रान्तिकरणार्थानि रचितानीतिजानीमः।

जैसे किसी ने कहा कि पुराना घृत पुराना गुड़ पुरानी साड़ी इस से घृत आदि में नवीनपन की निवृत्ति हो गई । इस कारण पुराणशब्द से वेद और वेद के व्याख्यान ब्राह्मणग्रन्थों का ग्रहण होता है किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तादि का नहीं कल्पसूत्रकारों ने लिखा है कि ब्राह्मणग्रन्थ ही इतिहास पुराण नामक हैं। अश्वमेध यज्ञ में दशमे दिन कुछ थोड़ी पुराण की कथा कहे सुने पुराणविद्या वेद का व्याख्यान दशमें दिन सुने अर्थात् नव दिन तक यज्ञ में ऋग्वेदादि सुन कह के दशमे दिन ब्रह्म ज्ञान का प्रतिपादक ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद्भाग यजमान आदि कहें और सुनें इस प्रकार पुराणशब्द से ब्राह्मण और वेद का ही ग्रहण करना अन्य का नहीं ऐसी साक्षी है और वेद ही सब से पुराने हैं। परन्तु हमारा मत वेद है अन्य नहीं यही सिद्धान्त है ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण व्यास जी के नाम के छल से मतवादी जीविकार्थी लोगों ने मनुष्यों को भ्रांति कराने वाले बनाये हैं।

यथा शिवादिनामव्याजेन तन्त्राणि याज्ञवल्क्यादिनामव्याजेन च याज्ञवल्क्यादिस्मृतयश्च रचितास्तथैव ब्रह्मवैवर्त्तादीनीति विज्ञायताम् ॥

३९–(प्र०) देवालयशब्देन भवद्भिः किङ्गृह्यते ? ॥

४०–(उ०) मूर्त्तिस्थापनपूजनस्थानानि घण्टादिनादकरणार्थानि मन्दिराणीति प्रतिजानीमः ॥ नैवं शक्यङ्कुतोऽत्र वेदविधेरभावाद्भ्रान्तियुक्तत्वाच्चेति यत्र होमः क्रियते तदेव देवालयशब्देनोच्यते कथं होमस्य देवपूजाशब्देन गृहीतत्वात् ॥ अध्यापनम्ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ १ ॥ स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधि । पितॄञ्छ्राद्धैर्नॄनन्नैश्च भूतानि बलिकर्मणा ॥ २ ॥

जैसे शिव आदि के नाम के छल से तंत्र और याज्ञवल्क्यादि के नाम के छलसे याज्ञवल्क्यादि स्मृति रची हैं वैसे ही ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण जानो॥

३९–(प्र०) देवालय शब्द से आप क्या लेते हो? ॥

४०–(उ०) मूर्त्ति को स्थापन करने पूजने के स्थान जिन में कि घण्टानाद आर्त्ति आदि करते हैं उन को देवालय कहते हो तो ठीक नहीं क्योंकि यह कर्त्तव्य वेद से विरुद्ध और भ्रांतियुक्त होने से । इस से जिस में होम किया जाता वही स्थान देवालय शब्दवाच्य हो सकता है क्योंकि देवपूजा शब्द से होम का ग्रहण है । धर्मशास्त्र में लिखा है कि, पढ़ाना—ब्रह्मयज्ञ । तर्पण—पितृयज्ञ । होम—देवयज्ञ । वैश्वदेव-भूतयज्ञ और अतिथिपूजन, से मनुष्ययज्ञ कहाता तथा—स्वाध्याय से ऋषिपूजन, यथाविधि होम से देवपूजन, श्राद्धों से पितृपूजन, अन्नों से मनुष्य पूजन, और वैश्वदेव से प्राणिमात्र का सत्कार करना चाहिये ॥

होमेनैव देवपूजनम्भवतीति मनुनोक्तत्वाद्भवत्कृतोऽर्थोऽसंगतएवेति निश्चयः॥अतो होमस्थानं यज्ञशालैव देवालयशब्देन ग्राह्येति निश्चयः॥

४१–(प्र०) देवशब्देन किङ्गृह्यते ? ॥

४२–(उ०) ब्रह्मविष्णुमहादेवादीनत्रपूजनार्थाँस्तन्मूर्त्तींश्चेति गृह्णीमः ॥ नैवं योग्यम् ॥ यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्र इति निरुक्ते ॥ मन्त्रमयी देवतेति पूर्वमीमांसायाम् ॥ तथा मन्त्रमयी देवतेति ब्राह्मणे ॥ आत्मैव देवतास्सर्वास्सर्वमात्मन्यवस्थितमिति मनुस्मृतौ ॥ मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव इति

इस से सिद्ध हो गया कि होम ही से देवपूजा होती है यह मनु की साक्षी है इस से आप का किया अर्थ असंगत है यही निश्चय जानो । इस लिये होम का स्थान यज्ञशाला ही देवालय शब्द से लेनी चाहिये ॥

४१–(प्र०) देवशब्द से क्या लेते हो ? ॥

४२–(उ०) पूजने के लिये ब्रह्मा विष्णु और महादेवादि देवताओं को और उन की मूर्त्तियों को देव शब्द से लेते हो सो ठीक नहीं क्योंकि वेद में जहां २ देवता कहा है वहां २ उस देवता नाम वाचक शब्द युक्त मंत्र का ही नाम देवता है यह निरुक्तकार का सिद्धान्त है और पूर्वमीमांसा और ब्राह्मणभाग में मंत्रस्वरूप ही देवता माना है मनुस्मृति में आत्मा के बीच सब जगत् अवस्थित है इस लिये आत्मा ही सब देवता है तैत्तिरीय आरण्यक में माता, पिता, आचार्य और अतिथि को ही देवता माना है । इत्यादि प्रमाणों से तुम्हारा कथन

तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ इत्यादिसाक्ष्यविरोधात्कर्मकाण्डमन्त्राणाम्मात्रादीनां विदुषाञ्च देवदेवताशब्दाभ्यां सङ्ग्रहादुपासनाज्ञानकाण्डयोरीश्वरस्यैव देवताशब्देन सर्वत्र स्वीकाराद्भवत्कृतोऽर्थो मिथ्यैवेति निश्चयः ॥ एवं सति पाषाणादिमूर्तीन् देवताशब्देन यो गृह्णाति स न मनुष्योस्ति किन्तु पशुरेव च ॥ योऽन्यां देवतामुपास्ते स पशुरेव देवानाम् ॥ उत्तिष्ठत जागृत तज्जानथ अन्या वाचो विमुञ्चथ चेत्याद्युक्तत्वान्मूर्त्तयस्तु कदाचिद्देवता न भवन्तीति निश्चीयताम् ॥

४३—(प्र०) देवलदेवलकशब्दाभ्यां किङ्गृह्यते ? ॥

४४—(उ०) मूर्तिपूजारीस्तँदधीनजीविकावतश्चेति ब्रूमः ॥ नैवमुचितम्वक्तुम् ॥ कथं यद्वित्तं यज्ञशीलानान्देवस्वन्तद्विदुर्बुधाः ॥

विरुद्ध होने से कर्मकाण्ड में मंत्र स्वरूप माता आदि और विद्वानों का देव और देवता शब्द से ग्रहण तथा उपासना और ज्ञानकाण्ड में सर्वत्र देवता शब्द से ईश्वर का ही स्वीकार है इस से आप का किया अर्थ मिथ्या ही निश्चित होता है। जब ऐसा है तो जो देवता शब्द से पाषाणादि मूर्त्तियों का ग्रहण करता है वह मनुष्य नहीं किन्तु पशु ही है। और उपनिषद् में यही कहा है कि जो एक ईश्वर को छोड़ के अन्य देवता की उपासनाकरता है वह देवताओं में पशु ही है इस लिये हे मनुष्यो उठो जागो उस आत्मा को जानो अन्य की उपासना रूप वाणियों को छोडो इत्यादि प्रमाण से मूर्त्तियां कदापि देवता नहीं हो सकतीं यह निश्चय जानो ॥

४३—(प्र०) देवल और देवलक शब्दों से किसका ग्रहण करते हो ?

४४—(उ०) यदि कहते हो कि मूर्तिपूजने और मूर्त्तिपूजा से जीविका करने वाले देवल देवलक कहाते हैं तो ठीक नहीं क्योंकि धर्म शास्त्र में लिखा है कि "जो यज्ञ करने वालों का धन है वह देवस्व

अयज्वनान्तु यद्वित्तमासुरं तत्प्रचक्षत इति मनुसाक्ष्यविरोधात् ॥ यज्ञशीलानां यज्ञार्थं यद्वित्तन्तद्देवशब्देनोच्यते तल्लाति गृह्णाति स्वभोजनाद्यर्थं सोऽयन्देवलो निन्द्यः ॥ यो यज्ञार्थं यद्धनं तच्चोरयति स देवलकः ॥ कुत्सितो देवलो देवलकः कुत्सित इति सूत्रेण क प्रत्ययविधानाद्भवत्कृतोर्थोऽन्यथेति वेदितव्यम् ॥

४५—(प्र०) ईश्वरस्य जन्ममरणे भवत आहोस्विन्न ? ॥

४६—(उ०) अप्राकृते दिव्ये जन्ममरणे भवतो नान्यथेति स्वीक्रियते॥भक्तानामुद्धारार्थन्दुष्टानां विनाशार्थन्तथा धर्म्मस्थापनार्थमधर्म्मनिर्मूलनार्थञ्च ॥ नैवन्न्याय्यङ्कस्मात्सर्वशक्तिमत्त्वात्सर्वान्तर्यामित्वादखण्डत्वात्सर्वव्यापकत्वादनन्तत्वान्निष्कम्पत्वाच्चेश्वरस्येति

और यज्ञ न करने वालों का धन आसुर कहाता है, देव नाम यज्ञ के धन को अपने भोजनादि के लिये लेने वाला देवल निन्दित कहाता है यहां व्याकरण रीति से मध्यम पद स्वशब्द का लोप हो जाता है। और जो यज्ञ के धन की चोरी करता है वह देवलक अतिनिन्दित कहाता है क्योंकि व्याकरण के (कुत्सिते) सूत्र से निन्दित अर्थ में क प्रत्यय होता है इस से आप का किया अर्थ मिथ्या है यह जानना चाहिये ॥

४५—(प्र०) ईश्वर के जन्ममरण होते हैं वा नहीं ? ॥

४६—(उ०) यदि यह कहते हो कि अप्राकृत मनुष्यादि के जन्म मरण से विलक्षण दिव्य जन्ममरण होते हैं अन्यथा नहीं यह स्वीकार है क्योंकि भक्तों के उद्धार दुष्टों के विनाश धर्म की स्थापना और अधर्म की हानि निर्मूल करने के लिये अस्वाभाविक जन्म ईश्वर धारण करता है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी अखण्ड, सर्व व्यापक, अनन्त और निश्चल निष्कम्प है ।

सर्वशक्तिमान्हीश्वरोस्ति स सर्वं न्याय्यङ्कार्य्यङ्कर्त्तुं समर्थोस्त्यसहायेन यश्च शरीरधारणादिसहायेन कार्य्यङ्कर्त्तुं समर्थो भवेन्न चान्यथेति नेत्थं चेत्तर्हिं सर्वशक्तिमत्त्वमेव तस्य नश्येत् ॥ यथाखल्वसहायेन सर्वमिदञ्जगद्रचयित्वा धारयति तथैव हिरण्याक्षरावणकंसादीनां क्षणमात्रेण हननङ्कर्त्तुं समर्थोऽसहायेनोपदेशम्भक्तोद्धारन्धर्मस्थापनमधर्मदुष्टविनाशञ्च ॥ यथा सर्वशक्तिमत्त्वमीश्वरे स्वीक्रियते तथान्यायकारित्वादयोपि स्वभावा ईश्वरे स्वीकार्याः॥ अन्यथा स्वनाशाद्य धर्ममपि कर्त्तुं समर्थो भवेदतईश्वरोऽनन्तोऽजोऽविकारी च॥प्रकृत्याकाशादिकं सर्वञ्जगदीश्वरस्याऽपेक्षयास्वल्पन्तुच्छं सान्तञ्चास्ति

जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह सब न्याययुक्त कार्य बिना सहाय के करने को समर्थ है फिर जो शरीर धारणादि सहाय से कार्य कर सके अन्यथा न कर सके तो ऐसा मानने में वह सर्व शक्तिमान् ही नहीं ठहर सकता जैसे ही बिना सहायता के इस सब जगत् को रच के धारण करता है वैसे ही हिरण्याक्ष, रावण और कंसादि को मारने को बिना शरीरादि सहाय के समर्थ है तथा स्वतंत्र असहाय ही उपदेश, भक्तों का उद्धार, धर्म का स्थापन, अधर्म तथा दुष्टों का विनाश कर सकता है। जैसे ईश्वर में सब शक्तियों का होना मानते हो वैसे न्यायकारीपन आदि स्वभाव भी ईश्वर में स्वीकार करने योग्य हैं। यदि ऐसा न मानोगे तो सर्वशक्तिमान् होने से ही अपना नाश, अन्याय अधर्म करने को भी समर्थ हो जावे तो ईश्वरत्ता ही न रहे इससे ईश्वर अनन्त अजन्मा और अविकारी है। प्रकृति और आकाशादि सब जगत् ईश्वर की अपेक्षा छोटा तुच्छ और अन्त वाला है।

पुनस्तस्य का शरीरसामग्री यतो निवासार्थमाधिकरणम्भवेत्तस्माद्बृहत्किमपि न विद्यत इति सर्ववेदसिद्धान्तः ॥ सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ॥ तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तम्ब्रह्म ॥ दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषस्सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययन्तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् ॥ अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवन्निचाय्य तम्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ॥

फिर उस के शरीर बनने को कौन सामग्री है जिस में वह माय जावे उस से बड़ा कोई भी नहीं यह सब वेद शास्त्र से सिद्ध है तो कैसे एक शरीर में माय सकता है वेद और उपनिषदों के प्रमाणः—वह सब में व्याप्त प्रकाशमय, सब प्रकार के शरीर से रहित, अच्छेद्य अभेद्य नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध निर्मल, निष्पाप है। वह सब के भीतर और बाहर परिपूर्ण है। वह सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और सब से बड़ा अनन्त है। वह पुरुष पूर्ण परमात्मा दिव्यरूप सब प्रकार की मूर्त्ति से रहित सब के बाहर भीतर वर्त्तमान और अजन्मा है। वह शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध और नाश रहित, नित्य, अनादि, अनन्त, महत्त्व से परे निश्चल है उसी को ठीक २ जान के मृत्यु रूप ग्राह के मुख से छूटता है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़े से बड़ा है इस जीव के अन्तःकरण में व्याप्त उप लब्ध होने वाला है। मनुष्य को ऐसा विचार रखना उचित है कि मैं उस परमात्मा को जानूं कि जो सब से बड़ा पूर्ण सूर्य के तुल्य प्रकाश वाला अन्धकार से परे है।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति यजुर्वेदादिश्रुतिभ्यः ॥ ईश्वरस्याऽवतारोऽर्थाज्जन्ममरणे नैव भवत इति सर्वेषां वेदानां सिद्धान्तो वेदितव्यः ॥

४७—(प्र०) ईश्वरस्साकार उत निराकारः ? ॥

४८—(उ०) निराकारश्चेति वदामः ॥ निराकारश्चेत्तर्हि तस्मात्साकारञ्जगत्कथञ्जायेत तथा हस्तादिभिर्विना कथञ्जगद्रचयेदिति ॥ मैवं वाच्यङ्कुतः ॥ सर्वासां शक्तीनां सामर्थ्यानामीश्वरे नित्यं विद्यमानत्वान्निराकारादेव साकारस्योत्पन्नत्वाच्चेति ॥ तद्यथा ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशस्सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्न रसमयः ॥

क्योंकि उसी को जान कर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है अन्य कोई मार्ग मुक्ति के लिये नहीं है। इत्यादि मन्त्रों के प्रमाण से ईश्वर का अवतार अर्थात् जन्म मरण नहीं होते यही सब वेदों का सिद्धान्त जानना चाहिये॥

४७—(प्र०) ईश्वर साकार है वा निराकार ? ॥

४८—(उ०) यदि कहो कि निराकार है तो ठीक है और जो निराकार होने में तुम को शङ्का है कि जो निराकार हो तो उस से साकार जगत् उत्पन्न कैसे होसके और हाथ आदि साधन के विना कैसे जगत् को रच सके सो यह ठीक नहीं क्योंकि सब प्रकार के सामर्थ्य निराकार ईश्वर में नित्य ही विद्यमान हैं इससे निराकार से ही साकार की उत्पत्ति हो सकती है। जैसे प्रमाण उस ही इस आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है सो ही

आत्माऽऽकाशौ निराकारौ तस्माद्वायुर्द्विगुणः स्थूलोऽजायत ततस्त्रि-गुणः स्थूलोऽग्निर्जलं पृथिवी चेत्यादि निराकारात्सूक्ष्मात्स्थूलमिद-ञ्जगज्जायते तथा च स्थूलमयस्कान्तपाषाणादिकम्पिष्ट्वा चूर्णी-भूतङ्कृत्वा प्रत्यक्षतया दर्शयितुं द्रष्टुं सर्वे मनुष्याः समर्था इत्यतो निराकारादेव साकारञ्जगज्जायत इति निश्चयः ॥ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥ स वेत्ति विश्वञ्च च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यम्पुरुषम्पुराणमित्यादि श्रुतिभ्यः ॥ हस्तपा-दाद्यङ्गैर्विनाप्यनन्तानां सर्वेषां सामर्थ्यानामीश्वरे वर्त्तमानत्वात्साकार ईश्वरस्साकारात्साकारोत्पत्तिर्हस्तपादादिभिर्विना जगदुत्पादयितुम-समर्थ ईश्वर इत्यादि वाग्जालं मनुष्याणाम्प्रमादेनैवेत्यवगन्तव्यम् ॥

यह शरीर अन्नरसमय कहाता है। इस उत्पत्ति की प्रक्रिया में आत्मा और आकाश निराकार हैं। आकाश से द्विगुण स्थूल वायु, और तिगुण स्थूल अग्नि; जल और पृथिवी है। इत्यादि प्रकार निराकार सूक्ष्म से यह स्थूल जगत् उत्पन्न होता है और स्थूल चुम्बक पत्थर आदि को चूर्णरूप पीस के प्रत्यक्षता से सब मनुष्य देख दिखा सकते इस कारण निराकार से ही जगत् उत्पन्न होता है। और विना हाथ पग के शीघ्र ग्रहण करता विना चक्षु के देखता विना कान के सुनता वह सब को जानता उस का जानने वाला कोई नहीं उस को सनातन पूर्णब्रह्म कहते हैं इत्यादि श्रुति प्रमाणों से हस्त पादादि अङ्गों के विना भी सब अनन्त सामर्थ्य ईश्वर में हैं ऐसा होने पर जो मनुष्य कहते हैं कि ईश्वर साकार है साकार से साकार की उत्पत्ति होती है हस्तपादादि के विना ईश्वर जगत् को उत्पन्न नहीं कर सकता इत्यादि वाग्जाल मनुष्यों का प्रमाद से ही निश्चय होता है ॥

४९–(प्र०) ईश्वरो मायावी न वेति? ॥ माया शब्दस्य कोऽर्थः क्रियते ? ॥

५०–(उ०) मायेश्वरशक्तिरित्युच्यते ॥ नैवं योग्यम्भवितुम् ॥ कथं छलकपटयोरर्थयोर्मायाशब्दस्यापातात् ॥ कश्चिद्वदेदयम्मायावी-त्यनेन किङ्गम्यतेऽयं छली कपटी चेति ॥ ईश्वरस्य मायाऽविद्यादि दोषरहितत्वान्निर्मलो निरञ्जनो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव एवेतीश्वरो नैव कदाचिन्मायावीति निश्चेतव्यम् ॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषईश्वर इति पतञ्जलिसाक्ष्यस्य विद्यमानत्वात् ॥

५१–(प्र०) ईश्वरस्सगुणोऽस्ति निर्गुणो वा ? ॥

४९–(प्र०) ईश्वर मायावी है वा नहीं ? और मायाशब्द का क्या अर्थ करते हो ?

५०–(उ०) यदि कहते हो कि माया ईश्वर की शक्ति है तो यह ठीक नहीं हो सकता क्योंकि छल कपट अर्थ में माया शब्द प्रसिद्ध प्राप्त है । कोई कहे कि यह मायावी है इस से क्या ज्ञात होता है कि यह छली कपटी है । ईश्वर माया और अविद्यादि दोषों से रहित है इसी से निर्मल, निरञ्जन नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्तस्वभाव ही है । ऐसा कभी न निश्चय करना चाहिये कि ईश्वर मायावी है क्योंकि इस में श्रीपतञ्जलि मुनि की साक्षी भी विद्यमान है—अविद्या आदि क्लेशों और शुभाशुभ कर्मों के फलों से पृथक् मनुष्यादि की तुल्यता से रहित पूर्ण पुरुष परमेश्वर कहाता है ॥

५१–(प्र०) ईश्वर सगुण है वा निर्गुण ? ॥

५२–(उ०) उभयमिति प्रतिजानीमः ॥ तद्यथा घटः स्पर्शादिभिस्स्वकीयैर्गुणैस्सगुणस्तथा चेतनस्य ज्ञानादिभिर्गुणैः पृथक्त्वान्निर्गुणोपि स एव ॥ एवमीश्वरोपि सर्वज्ञानादिभिः स्वकीयैर्गुणैस्सगुण एवञ्जडत्वजन्ममरणाऽज्ञानादिभिर्गुणैः पृथक्त्वात्स एव निर्गुणश्चेति निश्चयः । एको देवस्सर्वभूतेषु गूढस्सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥ सर्वाध्यक्षस्सर्वभूताधिवासस्साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेति साक्ष्याद्ब्रह्मादयो देवा रामकृष्णनृसिंहादयस्सर्वे जीवा एवेति निश्चयः ॥ किञ्च सर्वेषां ब्रह्मादीनां यः स्रष्टा धारयिताऽन्तर्यामी सर्वशक्तिमान्न्यायकारी स्वामी चास्ति तैः सेव्यस्तेभ्यो भिन्न एक एवेश्वर इति वेदितव्यम् ॥

५३–(प्र०) भवद्भिर्मुक्तिर्मन्यते न वा ? ॥

५२–(उ०) ईश्वर सगुण निर्गुण दोनों प्रकार से है यह निश्चित है जैसे घट स्पर्श आदि अपने गुणों से सगुण तथा चेतन के ज्ञानादि गुणों से पृथक् होने से निर्गुण भी वही है ऐसे ही ईश्वर भी सर्वज्ञ आदि अपने गुणों से सगुण और जन्म मरण जड़पन अज्ञान आदि गुणोंसे पृथक् होने से निर्गुण भी वही है । उपनिषद् में कहा है कि:—एक ही देव ईश्वर सब भूतों में अदृष्टता से व्याप्त है सब का अन्तर्यामी सब का अध्यक्ष सब प्राणि अप्राणि जगत् का निवास स्थान सब का साक्षी चेतन केवल एक और निर्गुण है इस प्रमाण से ब्रह्मादि देवता और श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र तथा नृसिंह आदि सब जीव ही निश्चित होते हैं क्योंकि एक वही ईश्वर देव है ऐसा कहा है । किन्तु सब ब्रह्मादि का जो स्रष्टा और धारण कर्ता अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् न्यायकारी और स्वामी ब्रह्मादि को सेवने योग्य उन से भिन्न एक ही ईश्वर है ऐसा जानना चाहिये ॥

५३–(प्र०) आप लोग मुक्ति मानते हो वा नहीं ? ॥

५४-(उ०) सालोक्यसामीप्यसानुज्यसायुज्यलक्षणा चतुर्धा मुक्तिर्मन्यतेऽस्माभिः ॥ चतुर्विधाया मुक्तेः कीदृशोऽर्थो विज्ञायते ॥ ईश्वरजीवयोस्समाने लोके निवासस्सा सालोक्यमुक्तिरित्यादयोऽर्था गृह्यन्ते ॥ नैवं शक्यं विज्ञातुङ्कुतः सर्वेषाञ्जीवानामीश्वररचिताऽधिष्ठिते लोके निवासात्स्वतो गर्द्दभादीनामपि सा मुक्तिः सिद्धेति ॥ सामीप्यमुक्तिरपि सिद्धा सर्वेषु पदार्थेष्वन्तर्यामित्वेन ईश्वरस्य सामीप्ये वर्त्तमानत्वात् ॥ सानुज्यमुक्तिरपि सर्वेषाञ्जीवानां स्वतस्सिद्धा ॥ कस्मादनन्तचेतनेश्वरस्याऽपेक्षया जीवानां सान्तत्त्वचेतनापत्तेरल्पज्ञत्वादि गुणानां सत्त्वात् ॥ सायुज्यमुक्तिरपि सर्वेषाञ्जीवानां साधारणाऽस्ति ॥ कुत ईश्वरस्य सर्वत्र व्यापकत्वात्सर्वेषाञ्जीवानान्तत्र व्याप्यसम्बन्धाच्चेति ॥

५४-(उ०) सालोक्य, सामीप्य, सानुज्य और सायुज्य यह चार प्रकार की मुक्ति हम मानते हैं। प्र० चार प्रकार की मुक्ति का क्या अर्थ करते हो ? उ० एक लोक में जीव ईश्वर का निवास होना सालोक्य मुक्ति इत्यादि अर्थ लेते हैं यह मानना तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर के रचे और नियत किये लोक में सब जीवों का निवास होने से स्वयमेव गदहे आदि की भी वह मुक्ति सिद्ध है। और सब पदार्थों में अन्तर्यामी व्यापक होने से ईश्वर सब के समीप में वर्त्तमान है इस से सामीप्य मुक्ति भी स्वतः सिद्ध है। और सानुज्य मुक्ति भी सब जीवों को स्वतः सिद्ध ही है क्योंकि अनन्त चेतन ईश्वर की अपेक्षा जीवों में अन्त वाली चेतनता होने से जीव अल्पज्ञादि गुण वाले हैं। और सायुज्य मुक्ति भी सब जीवों की साधारण सिद्ध ही है। क्योंकि ईश्वर के सर्वत्र व्यापक होने और सब जीवों के उस में व्याप्य होने से व्याप्य व्यापक सम्बन्ध स्वतःसिद्ध ही है।

सा चतुर्धा मुक्तिर्व्यर्थेति मन्तव्यम् ॥ का तर्हि मुक्तिरिति वैकुण्ठगोलोककैलासादिषु निवास इत्युच्यते ॥ मैवं वाच्यन्तत्र पराधीनत्वादतएव दुःखापत्तेश्चेति ॥ वेदयुक्तिसिद्धान्त. खलुमुक्तिरेकैवास्ति नान्येति ॥ तद्यथा यथावद्विद्याविज्ञानधर्मानुष्ठानानन्तरं यन्निर्भ्रमम्ब्रह्मतत्त्वविज्ञानन्तेन सर्वज्ञस्येश्वरस्य सर्वानन्दस्य प्राप्त्या जन्ममरणादिसर्वदुःखनिवृत्तिरीश्वरानन्देन सह सदैवावस्थितिर्मुक्तिरित्यतो भवन्मता मुक्तिर्मिथ्येति निश्चयः ॥ सर्वम्परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखमिति मनुसाक्ष्यात् ॥

५५—(प्र०) विष्णुस्वामिवल्लभसम्प्रदायादयो वेदसम्मता आहोस्वित्तद्विरोधिनः ? ॥

इस लिये वह चार प्रकार की मुक्ति मानना व्यर्थ ही है। जब यह मुक्ति मानना व्यर्थ हुआ तो अब कैसी मुक्ति मानोगे?। यदि कहो कि वैकुण्ठ, गोलोक और कैलासादि के निवास को मुक्ति मानते हैं यह भी तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि वहां पराधीन होने से ही दुःख प्राप्त होगा तो दुःख को मुक्ति नहीं कहा जाता। वेद और युक्ति से सिद्धान्त है कि मुक्ति एक ही है अन्य नहीं जैसे यथावत् जो विद्या, विज्ञान और धर्म का यथावत् अनुष्ठान करने के पश्चात् निर्भ्रान्त ब्रह्म को जानना उस से सर्वज्ञ ईश्वर के सब आनन्द की प्राप्ति से जन्म मरणादि सब दुःखों की निवृत्ति और ईश्वर के आनन्द के साथ सदैव अवस्थिति मुक्ति कहाती है इस से आप की मानी मुक्ति मिथ्या ही है यह निश्चय जानो। क्योंकि परवश होना सब दुःख और स्वाधीन होना सुख है। तुम्हारी मुक्ति में सदा पराधीन रहना है ॥

५५—(प्र०) विष्णुस्वामी और वल्लभ सम्प्रदायी आदि वेदानुकूल हैं वा विरोधी ? ॥

५६—(उ०) न पूर्वः ॥ चतुर्षु देवेषु तेषामनभिधानात् ॥ वेदविरोधात्पाखण्डिन एव ते त्विति वेद्यम् ॥ पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेदिति मनूक्तत्वात्॥ एते सम्प्रदायशब्दार्थार्हा नैव सन्ति किन्तु सम्प्रदाहशब्दार्थार्हा एवेति ॥ सम्यक् प्रकृष्टतया हि दग्धधर्मज्ञाना जना भवन्ति येषु ते संप्रदाहा इति विवेकः ॥ कदाचित्केनचित्तेषां विश्वास एव न कर्त्तव्यः ॥

५७—(प्र०) श्रीकृष्णः शरणं मम। अयमक्षरसमुदायः सत्योऽस्ति मिथ्या वेति ? ॥

५६—(उ०) इस में वेदानुकूल होना प्रथम पक्ष ठीक नहीं क्यों कि चारों वेदों में उन का कहीं नाम ही नहीं है। वेदविरोधी होने से वे पाखण्डी ही हैं यह जानना चाहिये धर्मशास्त्र में कहा है कि:— पाखण्डी वेदविरुद्ध कर्म करने हारे विड़ाल के से स्वभाव से युक्त शठ स्वार्थी बगुला के तुल्य पर पदार्थ पर ध्यान रखने वालों का वाणी से भी सत्कार न करे। ये विष्णु स्वामी आदि सम्प्रदाय शब्द से कहे जाने योग्य नहीं हैं किन्तु सम्प्रदाह अर्थात् सम्यक् नाशक ही हैं अच्छे प्रकार सम्यक् रीति से धर्म और ज्ञान जिन का नष्ट हो गया ऐसे जन जिन में हों वे सम्प्रदाह कहाते हैं। कभी किसी को उन का विश्वास ही न करना चाहिये ॥

५७—(प्र०) (श्रीकृष्णः शरणं मम) यह अक्षरों का समुदायरूप मन्त्र सत्य है वा मिथ्या ? ॥

५८–(उ०) वेदानुक्तत्वात्कपोलकल्पितत्वान्मिथ्यैवेति ॥ वेदोक्त गायत्रीमन्त्रोपदेशत्यागेन मिथ्याकल्पिताऽक्षरसमुदायोपदेशेन नास्तिकत्वं नरकप्राप्तिश्च भविष्यति भवताम् ॥

५९–(प्र०) कीदृगर्थोऽस्य क्रियते ? ॥

६०–(उ०) यः श्रिया सहितः कृष्णः स ममशरणमस्त्विति ॥ नैवं शक्यं कुतः श्रीकृष्णो मम शरणम्प्राप्नोतु हिनस्त्वित्याद्यर्थस्य सम्भवादशुद्धानर्थकोयमक्षरसमुदायोऽस्मात्कारणादस्योपदेशकरणं ग्रहणं विश्वासश्च केन चिन्नैव कर्त्तव्य इत्यर्थः ॥ एवमेव 'नमोनारायणाय' 'नमश्शिवाय' 'नमो भगवते वासुदेवाय' 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इत्यादयोप्यक्षरसमुदायोपदेशा मिथ्यैव सज्जनैर्मन्तव्याः ॥

५८–(उ०) वेदोक्त न होने और कपोलकल्पित होने से मिथ्या ही है । वेदोक्त गायत्री मंत्र के उपदेश को छोड़ कर मिथ्या कल्पना किये अक्षरों के समुदायरूप मन्त्र के उपदेश से आप को नास्तिकता और नरक प्राप्ति होगी ॥

५९– (प्र०) उक्त मन्त्र का अर्थ कैसा करते हो ? ॥

६०–(उ०) श्री—लक्ष्मी के सहित जो कृष्ण हैं सो मेरे शरण हों यह अर्थ कहना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त हों वा मेरे शरण को नष्ट करें इत्यादि अर्थ भी सम्भव है अर्थात् तुह्मारे मन्त्र में "प्राप्नोतु" पद नहीं है किन्तु ऊपर से कल्पनामात्र करते हो वैसे कोई "हिनस्तु" आदि क्रिया की भी कल्पना कर सकता है उस को तुम कैसे रोक सको गे ? इस कारण तुह्मारा यह अक्षरसमुदाय रूप मन्त्र निरर्थक अशुद्ध है। इसी से इसमन्त्र का उपदेश करना वा दूसरे से उपदेश लेना और इसपर किसी को कदापि विश्वास न करना चाहिये । इसी प्रकार "नमो नारायणाय । नमः शिवाय । नमो भगवते वासुदेवाय । ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे" इत्यादि अक्षरसमुदाय रूप वना वटी मंत्रों के उपदेश भी सज्जनों को मिथ्या ही जानने चाहिये ।

अथ वल्लभसम्प्रदायस्थोपदेशोयं ब्रह्मसम्बन्धोऽर्थाद्भ्रष्टसम्बन्धोऽक्षरसमुदायः सज्जनैर्वेदितव्यः ॥ श्रीकृष्णः शरणम्मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशाऽनन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ॥ सहस्रपरिवत्सरेत्यादि सहस्रपरिगणनं व्यर्थम् ॥ कुतः वल्लभस्य युष्माकञ्च सर्वज्ञताया अभावात्प्रत्यक्षता च न विद्यते सहस्रं वत्सरा व्यतीता इत्यपि कृष्णवियोगे परिगणनमयुक्तं सन्दिग्धत्वात् ॥

६१—(प्र०) कृष्णशब्देन किङ्गृह्यते ॥

और वल्लभसंप्रदायियों के ब्रह्मसम्बन्धनामक मन्त्र का उपदेश वस्तुतः भ्रष्टसम्बन्ध रूप ही सज्जनों को समझना चाहिये जैसे ब्रह्मसम्बनध का मन्त्र "श्रीकृष्णः शरणं०" इत्यादि है । इसका अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण मेरे शरण हों । सहस्रों वर्षकाल से हुआ जो कृष्ण का वियोग उससे हुआ जो दुःख और क्लेश उनसे घेरा हुआ मैं श्रीकृष्ण भगवान् के लिये अपने देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, और स्त्री, पुत्र, घर, प्राप्त धन क्रियासहित देहादि के धर्मों को अपने आत्मा के सहित समर्पण करता हूं और हे कृष्ण मैं तुह्मारा दास हूं । सहस्र वर्ष की गणना करना व्यर्थ है क्योंकि तुह्मारा वल्लभ और तुम सर्वज्ञ नहीं कि सहस्र वर्ष से ही वियोग हुआ ऐसा निश्चय कर सको और न प्रत्यक्ष ही सहस्र वर्षों को जान सकते हो कि इतने ही वर्ष व्यतीत हुए । इस लिये कृष्ण वियोग में निश्चय न हो सकने से वर्ष गणना अयुक्त है ॥

६१—(प्र०) कृष्ण शब्द से क्या लेते हो ? ॥

६२–(उ०) परब्रह्म गोलोकवासी वेति वदामः। नैतत्सत्यमस्ति कस्माज्जन्ममरणवतो जीवस्य कृष्णस्य परब्रह्मत्वाभावात् ॥ गवां पशूनां यो लोकस्स तु दुःखरूपो दुर्गन्धरूपत्वात्तत्र ये वसन्ति तेऽप्यसभ्या विद्याहीना आभीरवन्मूर्खा विज्ञेयाः॥ किञ्च अस्मात्प्रत्यक्षभूतादाभीरपल्लेर्गोलोकात्पृथक्कश्चिद्गोलोक एव नास्तीत्यवगन्तव्यम्॥ तदुपासकास्तत्र ये गमिष्यन्ति तेऽपि तादृशा भवन्तीति विज्ञेयम्॥कृष्णवियोग जनिततापक्लेशाऽनन्ततिरोभावोऽहमित्यादि॥ इदमशुद्धम् ॥ कुतस्तापक्लेशयोः पुनरुक्तत्वादेकार्थत्वाच्च ॥ पुनरनन्तस्य क्लेशस्य तिरोभावविरहाद्देशकालवस्तुपरिच्छेद एवासम्भावनीयः ॥ कृष्णस्तु कृष्णगुणविशिष्टदेहवत्त्वाज्जन्ममरणादियुक्तत्वाद्भगवानेव भवितुमयोग्यः ॥

६२–(उ०) यदि कहते हो कि गोलोक निवासी परब्रह्म कृष्ण शब्द से लेते हैं तो यह ठीक सत्य नहीं क्योंकि जन्म मरण वाले कृष्ण जीवात्मा परब्रह्म नहीं हो सकते। गौ आदि पशुओं का लोक दुर्गन्ध के बढ़ने से दुःख रूप होगा उस में जो वसते हैं वे अहीरों के तुल्य मूर्ख विद्याहीन असभ्य जानने चाहिये और विचार के देखें तो इस प्रत्यक्ष अहीरों के ग्रामरूप गोलोक से पृथक् अन्य कोई गोलोक ही नहीं ऐसा जानना चाहिये। उस गोलोकनिवासी के उपासक जो वहां जावेंगे वे भी वैसे ही होते हैं यह जानना चाहिये। और जो कहा था कि अनन्त काल से कृष्ण के वियोग से हुए दुःख क्लेश से ढपा हुआ मैं हूं इत्यादि यह अशुद्ध है क्योंकि ताप और क्लेश दोनों के एकार्थ होने से दोनों का कहना पुनरुक्त दोष है। फिर अनन्त क्लेश की निवृत्ति न हो सकने से प्रत्येक देश काल और वस्तु से क्लेश का पृथक् होना सम्भव नहीं। काले गुण से युक्त शरीरधारी जन्म मरण वाले श्रीकृष्ण को भगवान् कहना भी योग्य नहीं होसकता। और उन

तस्मै देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्माणां समर्पणमेवाशक्यं सदैव तन्नि-ष्ठत्वात्स्वाभाविकत्वाच्च ॥ समर्पणम्भवति चेन्मलमूत्रादिपीडारा-गद्वेषाऽधर्माणामपि तस्मा एव समर्पणं स्यात्तत्फलभोगो नरकादि-प्राप्तिः कृष्णायैव भवेदिति न्यायस्य विद्यमानत्वात् ॥ दारागारपुत्रा-प्तवित्तेहानामपि समर्पणम्पापफलकमेव कुतः परदाराणां परपुरुषा-र्पणस्य पापात्मकत्वात् ॥ तद्धर्मांश्चेतिपुल्लिङ्गेन निर्देशाद्वित्तेहप-राणीति नपुंसकलिङ्गेन निर्देशाच्चाशुद्धमेव वाक्यङ्कुतो लिङ्गवै-षम्यनिर्देशात्परशब्दस्य त्रिषु लिङ्गेषु वर्त्तमानत्वाच्च ॥ आत्मना सह समर्पयामि दासोहं कृष्णतवास्मीत्यन्तोऽनर्थोऽक्षरसमुदायः ॥

कृष्ण के अर्थ शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरण और इन के धर्मों का समर्पण करना अशक्य है क्योंकि शरीर इन्द्रियादि अपने २ साथ स्वाभाविक स्थित हैं अर्थात् एक शरीर के नेत्रादि छुटा कर दूसरे को नहीं दिये जा सकते। यदि कहो कि नहीं समर्पण होता ही है तो मल मूत्रादि और पीड़ा राग द्वेष तथा अधर्मों का भी समर्पण श्रीकृष्ण के लिये ही होवे और मलादि का फल दुःख नरकादि की प्राप्ति भी श्रीकृष्ण के लिये ही होवे यही प्रकट न्याय है। और स्त्री घर पुत्र प्राप्त धन और क्रियाओं का समर्पण भी पापफल वाला ही है क्योंकि परस्त्री का परपुरुष को समर्पण करन पापरूप ही है। तथा (तद्धर्मान्) इस का पुल्लिङ्गनिर्देश और (वित्तेहपराणि) इस विशेषण के नपुंसक होने से वाक्य सम्बन्ध भी अशुद्ध ही है। क्योंकि परशब्द तीनों लिङ्गका वाचक हो सकता है। हे कृष्ण मैं तुम्हारा दास हूं। आत्मा के साथ समर्पण करता हूं यहां पर्यन्त अक्षर समुदायरूप वल्लभ का मन्त्र अनर्थक है। जब जीवात्मा एक ही वस्तु

एकैवात्मा जीवो न द्वौ, पुनरात्मना सहात्माहं देहेन्द्रियादीनि समर्पयामीत्यशुद्धमेव दासोर्थाच्छूद्र एवेति ॥ शूद्रस्य तु जुगुप्सितमिति मनुसाक्ष्यदर्शनात् ॥ अस्याभिप्रायो वल्लभेन सिद्धान्तरहस्यादिग्रंथेष्वनेकबालबुद्धिमनुष्यभ्रामणार्थः पापवृद्ध्यर्थश्च निरूपितः ॥ तद्यथा ॥ श्रावणस्याऽमले पक्ष एकादश्यां महानिशि ॥ साक्षाद्भगवता प्रोक्तन्तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥ ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषान्देहजीवयोः ॥ सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः ॥ २ ॥ सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ॥ संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥ ३ ॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न

है दो नहीं हैं तो फिर आत्मा मैं आत्मा के साथ देह और इन्द्रियादि कों का समर्पण करता हूं यह कथन अशुद्ध असम्बद्धही है । और दास अर्थात् शूद्र हूं शूद्र का नाम दासान्त निन्दित रखना चाहिये यह मनुस्मृति की साक्षी है सो धर्म शास्त्र के अनुसार तुमशूद्रवत् हो । इस उक्त ब्रह्मसम्बन्ध नामक मन्त्र का अभिप्राय वल्लभ ने सिद्धान्त रहस्यादि ग्रन्थों में अनेक बालबुद्धि मनुष्यों को भ्रम और पाप बढाने के लिये निरूपण किया है (श्रावणस्या०) श्रावण महिने के शुक्लपक्ष की एकादशी की आधी रात्रि के समय में साक्षात् भगवान् ने जो कहा है उस को ज्यों का त्यों कहते हैं । ब्रह्म सम्बन्ध रूप मन्त्र के लेने से सब के जीव और शरीर के सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है और दोष पांच प्रकार के हैं ॥ एक सहज स्वाभाविक २ देश से हुए ३ कालभेद से हुए ४—लोक वा धर्मशास्त्र में कहे और५— वेद में कहे ये पांच प्रकार के दोष लग सकते हैं इनकी निवृत्ति ब्रह्मसम्बन्ध करण रूप मन्त्र से हो सकती है । परन्तु स्त्री आदि के संयोग से और स्पर्श से होने वाले दोषों को न मानना चाहिये अन्यथा दोषों की निवृत्ति

निवृत्तिः कथञ्चन ॥ असमर्पितवस्तूनान्तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥ ४ ॥ निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ॥ न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम् ॥ ५ ॥ तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ॥ दत्तापहारवचनन्तथाच सकलं हरेः ॥ ६ ॥ न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ॥ सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥ ७ ॥ तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥ गङ्गात्वे सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम् ॥८॥ गङ्गात्वेन निरूप्यं स्यात्तद्वदत्रापि चैवहि ॥ प्रथमतस्त्वसकृदुक्तं कृष्णः भगवानेव

कभी नहीं हो सकती किन्तु समर्पण करने से ही दोषों की निवृत्ति हो सकती है इसलिये समर्पण अवश्य करना चाहिये। इससे गुसाइयों के चेले निवेदन करने के वस्तुओं सहित समर्पण करके ही सब कार्य करैं यही नियम है। देवों के देव विष्णु का यह मत नहीं कि विना समर्पण किये गुसांई के चेले किसी वस्तु को भोगें और समर्पण यही है कि स्वामी गुसांई जी चेलों के सब पदार्थों का भोग प्रथम कर लेवें ॥ इस से सब कामों के आरम्भ में सब वस्तुओं का समर्पण करना ही ठीक है वैसे ही सब पदार्थ हरि को समर्पण करके ही पीछे ग्रहण करें ॥ गुसांई जी के मत से भिन्न मार्ग के वाक्य मात्र को भी गुसांई जी के चेला चेली कभी न सुनें। जैसा सेवकों का व्यवहार प्रसिद्ध है वैसा होना चाहिये॥ वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सबके बीच में ब्रह्म बुद्धि करे। वैसेही अपने मत में गुणों का और दूसरे के मत में दोषों का वर्णन किया करें ॥ जैसे गङ्गा में अन्य घृणित वस्तु पड़कर पवित्र गङ्गारूप हो जाते हैं वैसे अपने मत के दोष भी गुणरूप समझने चाहिये ॥ हमने पहिले से कईवार कहा है कि कृष्ण भगवान्

नेति कृष्णस्य मरणे जातईषन्न्यूनानि पञ्च सहस्राणि वर्षाणि व्यतीतानि स इदानीं वल्लभस्य समीपे कथमिदमुक्तवान् किन्तु कदाचिन्नैवोक्तवानिति ॥ किञ्च वल्लभेनायं पाखण्डजालोऽधर्मकरणार्थो रचितइति जानीमः ॥ साक्षाद्भगवता प्रोक्तमिति केवलं छलमेव तस्य वल्लभस्य विज्ञेयमिति तस्मात्तदक्षरसमुदायोपदेशस्य पापाजनकत्वादसम्बन्धप्रलापत्वाच्च ॥ सर्वदोषनिवृत्तिरिति ॥ दोषा निवृत्ता भूत्वा क्व गमिष्यन्तीति वाच्यम् ॥ नष्टा भविष्यन्तीति ब्रूयुश्चेत्कदाचिन्नैव नश्येयुरन्यकृताः पापदोषा अन्यमनुष्यन्नैव गच्छन्ति किन्तु कर्त्तैव कृतं शुभाशुभफलम्भुङ्क्ते नान्यः कश्चिदिति ॥ हरिं कृष्णं समर्पणेनान्यकृताः पापदोषा गच्छेयुश्चेत्तर्हि

ही नहीं हो सकते। जिन कृष्ण जी को शरीर त्यागे कुछ न्यून पांच हजार वर्ष व्यतीत हुए सो उन्होंने अब वल्लभ के समीप आकर कैसे कहा? किन्तु कदापि नहीं कहा केवल बनावट ही है। किन्तु वल्लभ ने यह पाखण्ड जाल स्वार्थ और अधर्म करने के लिये रचा है यह जान पड़ता है। साक्षात् भगवान् ने कहा यह वल्लभ का केवल छल ही जानना चाहिये। इस लिये उस ब्रह्मसम्बन्धनामक अक्षर समुदायरूप मन्त्र का उपदेश पाप का उत्पादक होने से असम्बन्ध और अनर्थक है। और जो सब दोषों की निवृत्ति मानते हो तो निवृत्त हो कर दोष कहां जावें गे। यदि कहो कि नष्ट हो जावें गे तो कदापि नष्ट नहीं हो सकते क्योंकि अन्य मनुष्य के किये पाप दोष अन्य को नहीं प्राप्त हो सकते किन्तु कर्त्ता ही अपने शुभाशुभ कर्म फल को भोगता है अन्य कोई नहीं। यदि कहो कि समर्पण करने से अन्य के किये पाप दोष हरि कृष्ण को

तत्फलभोगार्थं नरकं दुःखं हरिरेव प्राप्नुयादिति निश्चयः ॥ कुतः स्वयं कृतानाम्पापपुण्यकर्मफलानां स्वभोगेनैव क्षयादिति न्याया-द्वल्लभकृता कल्पना व्यर्थैवेति निश्चयः ॥ सहजाइत्यादि ॥ सह-जानां दोषाणां निवृत्त्या स्वयमेव निवर्त्तेत कुतस्तेषां सहजत्वाद-ग्निदाहवत् ॥ सर्वसमर्पणे कृतेऽपि देहस्थानां कुष्ठादिदोषाणां क्षुत्पिपासाशीतोष्णसुखदुःखाऽज्ञानानाम्भवताम्भवच्छिष्याणाञ्च निवृत्तेरदर्शनात् ॥ तथा देशकालोत्था अपि वातपित्तकफज्वरादयो दोषा भवदादीनां कथन्न निवर्त्तन्ते? ॥ लोकवेदयोर्मिथ्याभाषणचौ-र्यकरणमातृदुहितृभगिनीस्नुषापरस्त्रीगमनविश्वासघातदयो दोषाः

प्राप्त होंतो उस के दुःखरूप नरकफल भोगनेवाले हरिही होवें यह निश्चय है क्योंकि स्वयं किये हुए पाप पुण्यरूप कर्म के फलों को अपने भोग से ही निवृत्ति हो सकती है इस न्याय से वल्लभकृत कल्पना व्यर्थ ही समझनी चाहिये। सहज स्वाभाविक दोषों की यदि निवृत्ति होवे तो स्वयं आत्मा की ही निवृत्ति हो जावे क्योंकि जैसे अग्नि के स्वाभाविक दाहगुण की निवृत्ति में अग्नि भी नहीं रहता वैसे आत्मा भी न रहे गा सब के समर्पण करने में भी आप तथा आप के शिष्यों के शरीरस्थ कु ष्ठादि रोग और क्षुधा, प्यास, शीत उष्ण सुख दुःख तथा अज्ञान आदि की निवृत्ति नहीं दीख पड़ती इस से तुम्हारा समर्पण ठीक नहीं और ब्रह्मसम्बनध से देशकाल केपरिवर्त्तन से हुए वात पित्त कफ और ज्वर आदि दोष आप लोगों के क्यों नहीं निवृत्त होते? और लौकिक धर्मशास्त्र तथा वेद में निरूपण किये मिथ्या बोलना, चोरीकरना, माता कन्या बहिन पुत्रवधू आदि अन्य स्त्रियों से समागम और विश्वासघात

स्तथा मातृदुहितृभगिनीस्नुषागुरुपत्न्यादिसंयोगजास्तासां स्पर्शजाश्च दोषा वल्लभाद्यैरिदानीन्तनैर्भवद्भिर्वल्लभसंप्रदायस्थैर्भगवदुपदेशेन वल्लभोपदेशेन वा कदाचन नैव मन्तव्याः किम् ? ॥ इति भगवद्वल्लभोपदेशेनानेन किङ्गम्यते भगवद्वल्लभौ वेदविरुद्धोपदेशान्नास्तिकावधर्मकारिणौ विद्याहीनौ विषयिणावधर्मप्रवर्त्तकौ धर्मनाशकौ च विज्ञायेते ॥ योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ॥ स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥१॥ इति मनुसाक्ष्यस्य विद्यमानत्वात् ॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चनेत्यादि

आदि दोष तथा माता कन्या बहिन पुत्रबधू और गुरुपत्नी आदि के संयोग और स्पर्श से उत्पन्न हुए दोष वल्लभ सम्प्रदाय के मानने वाले वल्लभ से लेके अब तक हुए आप लोगों को तथा भगवान के वा वल्लभ के उपदेश से अन्य लोगों को क्या नहीं मानने चाहिये ? इस प्रकार भगवान् और वल्लभ के उपदेश से प्रतीत होता है कि भगवान् और वल्लभ दोनों वेद विरुद्ध उपदेश से नास्तिक अधर्म करने हारे, विद्याहीन, विषयी, अधर्म के प्रवर्त्तक और धर्म के नाशक जाने जाते हैं ॥ नास्तिक का लक्षण धर्मशास्त्र में यही किया है कि जो तर्क शास्त्र के आश्रय से वेद और धर्मशास्त्र का अपमान करता अर्थात् वेद से विरुद्ध स्वार्थ का आचरण करता है श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य है कि उस को अपनी मण्डली से निकाल के बाहर कर देवें क्योंकि वह वेद निन्दक होने से नास्तिक है इससे आप लोगों में नास्तिकता प्रतीत होती है॥ और यह जो कहना है कि हमारे मत को ग्रहण किये विना दोषों की निवृत्ति अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकती यह रचना भांग पीकर

रचनम्भङ्गापानङ्कृत्वैव कृतमिति विज्ञेयम् ॥ कुतईदृगुपदेशेन सत्यधर्मगुणानां नाशएव भवत्यत ईदृशस्य भ्रष्टीकरणार्थस्य पापात्मकस्योपदेशस्योपरि केनचिदपि कदाचिद्विश्वासो नैव कर्त्तव्य इति निश्चयः ॥ अधर्मोपदेशोयमन्योऽपि वल्लभसंप्रदायस्थानां श्रोतव्यः— तस्मादादौ स्वोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तुपदेन भार्य्यापुत्रादीनामपि समर्पणं कर्त्तव्यं विवाहानन्तरं स्वोपभोगे सर्वकार्ये सर्वकार्यनिमित्तं तत्कार्योपयोगिवस्तुसमर्पणं कार्य्यं, समर्पणं कृत्वा पश्चात्तानिताानि कार्य्याणि कर्त्तव्यानीत्यर्थः ॥ १ ॥ अथाऽस्य खण्डनम् ॥ विवाहानन्तरं स्वोपभोगात्पूर्वमेव भार्य्यापुत्रादीनामपि पवित्रीकरणार्थमाचार्याय गोस्वामिने समर्पणं कृत्वैव पश्चात्

के ही की है यह जानना चाहिये क्योंकि ऐसे मत के उपदेश से सत्य धर्म और गुणों का नाश ही होता है। इस से ऐसे भ्रष्ट करने के अर्थ प्रवृत्त हुए पापरूप उपदेश के ऊपर किसी को कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये यह निश्चय है ॥

और भी थोड़ा यह वल्लभ सम्प्रदायियों का अधर्मोपदेश सुनना चाहिये—जिस कारण सर्वस्व समर्पण के विना सब दोषों की निवृत्ति नहीं हो सकती इस लिये गुसाईं जी के चेलों को उचित है कि अपने भोग करने से पहिले ही सब वस्तुओं का समर्पण अर्थात् स्त्री पुत्र आदि का भी समर्पण करें। विवाह होने पश्चात् अपने भोगने के सब काम में सब कार्यों का निमित्त उस कार्य के उपयोगि वस्तु का समर्पण करना चाहिये समर्पण करके उन २ वस्तुओं से कार्य भोग करने चाहिये ॥ इस का खण्डन—यदि आप लोग यह उपदेश करते हो कि विवाह होने पश्चात् अपने भोगने से पहिले ही पवित्र करने के अर्थ स्त्री पुत्रादि का भी आचार्य गोस्वामी के लिये समर्पण कर के ही पश्चात्

तानि कार्य्याणि कर्त्तव्यानीति भवद्भिरुपदिश्यते चेत्तर्हि स्वस्त्रीदुहितृभगिनीपुत्रादीनामपि पवित्रीकरणार्थं समर्पणं किमर्थं न क्रियते?॥ अस्माकमिच्छान्येभ्यः स्वभार्य्यादीनां समर्पणार्था नास्त्यतो न क्रियतइति ब्रूयुश्चेत्तर्ह्यन्येषां भार्य्यादीनां समर्पणं स्वार्थम्पापरूपं किमर्थं कारयन्ति तत्पुण्यात्मकञ्चेत्तर्हि स्वभार्य्यादीनामप्यन्येभ्यः पुण्यात्मकं समर्पणं किमर्थं न क्रियते?॥ सिद्धान्तस्तु येन यया सह यस्य यस्याश्च विवाहो जातस्तयोः परस्परं समर्पणञ्जातमेव नान्यथेति वेदितव्यम् ॥ तस्मादस्य व्यभिचारमयोपदेशस्य वल्लभसंप्रदायस्य केनचित्पुरुषेण कया चित्स्त्रिया च विश्वासः कदाचिन्नैव कर्त्तव्यइति निश्चयः ॥ ये विश्वासं कुर्वन्ति करिष्यन्ति वा तेषां नरकप्राप्तिरेव फलं कुतः पापाचरणोपदेशस्य दुःखफलत्वात् ॥

अपने भोग सम्बन्धी काम करने चाहिये तो अपनी स्त्री कन्या भगिनी और पुत्रादि को भी पवित्र करने के अर्थ समर्पण क्यों नहीं करते ? यदि कहो कि अपनी स्त्री आदि को औरों के लिये समर्पण करने की हमारी इच्छा नहीं इस से नहीं करते तो अन्यों की स्त्री आदि का पापरूप समर्पण अपने लिये क्यों कराते हो ? । यदि कहो कि उन का हमारे लिये समर्पण करना पुण्यरूप होता है तो अपनी स्त्री आदि का पुण्यरूप समर्पण अन्यों के लिये क्यों नहीं करते? । सिद्धान्त वस्तुतः यही है कि जिस का जिस के साथ विवाह हुआ उन का परस्पर समर्पण हो ही गया अन्यथा नहीं हो सकता यह जानो । इस से व्यभिचारमय उपदेशों वाले इस वल्लभ सम्प्रदाय का किसी पुरुष वा स्त्री को कदापि विश्वास न करना चाहिये यही निश्चय है । जो लोग विश्वास करते हैं वा करेंगे उन को नरक प्राप्ति ही फल होना सम्भव है क्योंकि पापाचरण के उपदेश का फल दुःख ही है ॥

किञ्च पुष्टिप्रवाहमार्गोपि तादृशएव मिथ्या॥ पुष्टिप्रवाहमर्यादा धर्माचरणार्था उताऽधर्माचरणार्था?॥ नाद्यः कुतो वल्लभादीनामिदानीन्तनान्तानाम्परस्त्रीगमनाद्यधर्माचरणस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यां दर्शनात् ॥ अश्ववृषभवानरगर्द्दभादयो यथा अश्विन्यादिस्त्रियो दृष्ट्वा पुष्टिप्रवाहान्मैथुनमाचरन्ति तथा भवतामपि पुष्टिप्रवाहत्वं दृश्यते नान्यथा। भवतामियमेव मर्यादा वेदविद्याधर्माचरणत्यागः परस्त्रीगमनं परधनहरणमधर्माचरणं वेदोक्तधर्मविनाशकरणञ्चेत्यत्रैव पुष्टिप्रवाहौ चेति निश्चीयेते ॥ अस्मिन्नर्थे वल्लभत्राह ॥ वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा॥ वैष्णवत्वं हि सहजन्ततोऽन्यत्रविपर्य्ययइति॥

और हमारे मत में शरीरादि की पुष्टि परम्परा से चली आती है यह भी वैसी ही मिथ्या है । पुष्टि प्रवाह की मर्यादा धर्माचरण के लिये है वा अधर्माचरण के अर्थ ?। इस में प्रथम पक्ष ठीक नहीं क्योंकि वल्लभ से ले के अब पर्यन्त हुए गुसाइयों का परस्त्री गमनादि अधर्माचरण प्रत्यक्ष और अनुमान से प्रसिद्ध दीख पड़ता है । घोड़े बैल वानर और गर्दभ आदि जैसे घोड़ी आदि अपनी सजातीय स्त्रियों को देख के पुष्टि की उन्मत्तता के प्रवाह से मैथुन को प्रवृत्त होते हैं वैसे ही आप लोगों का भी पुष्टिप्रवाह दीख पड़ता है अन्यथा नहीं । आप लोगों की यही मर्यादा है कि वेदविद्या और धर्माचरण का त्याग परस्त्रीगमन पराया धन हरना अधर्म का आचरण और वेदोक्त धर्म का नाश करना इसी में पुष्टि और प्रवाह निश्चित होते हैं ॥ इस विषय में वल्लभ कहता है कि— "लौकिक और वैदिक धर्म विषय कपटरूप होने से यथार्थ नहीं इस में सन्देह नहीं किन्तु एक वैष्णव मत ही सहज है इस से अन्य सब विपरीत हैं" इसी से वल्लभ

अतएव वल्लभे हि नास्तिकत्वं सिद्धम्भवति कुतः लौकिकवैदिकत्वस्य कपटमध्ये गणितत्वात्॥ तस्य संप्रदायस्था अपि नास्तिका गणनीया वेदविरुद्धाचरणात् ॥ यज्ञो वै विष्णुर्व्यापको वा ॥ तदनुष्ठानत्यागान्मूर्त्तिपूजनासक्तत्वाद्व्यापकभक्तिवियोगाद्भवन्तो वैष्णवा एव नेति निश्चेतव्यम् ॥ पूजा नाम सत्कारस्सज्जनानां तस्या अरिर्नामशत्रुरयम्पूजारिशब्दार्थो वेद्यः ॥ आर्त्तिर्नाम दुःखन्ताङ्करोतीत्यार्त्तिकारः ॥ गोशब्देन पशुगुणवान् साँई शब्देन यवनाऽऽचार्यः ॥ अयं गोसाँईयाख्यशब्दार्थोऽर्थाद्यस्य गम्यागम्योर्विवेको न भवेत्त्यागञ्च न कुर्याद्धर्मन्यायविरुद्धपक्षपातत्यागञ्च वेदोक्तन्धर्मम्परित्यजेत्तादृशा भवन्तो दृश्यन्त इति ॥वाजिशब्देनाऽश्वो वा गर्द्दभो

में नास्तिकता सिद्ध होगई क्योंकि वल्लभ ने लौकिक वैदिक विषय कपट में गिना है। वल्लभ के सम्प्रदाय वाले सभी विरोधी होने से नास्तिक समझने चाहिये। विष्णु शब्द का अर्थ यज्ञ वा व्यापक होना है उस यज्ञ वा व्यापक विष्णु परमेश्वर की भक्ति का अनुष्ठान छोड़ के मूर्त्तिपूजन में आसक्त होने से आप लोग वैष्णव ही नहीं हो सकते यह निश्चय जानना चाहिये। पूजा नाम सत्पुरुषों का सत्कार उस का जो अरि नाम शत्रु यह पूजारिशब्द का अर्थ है। आर्त्ति नाम दुःख को जो करे वह आर्त्तिकर्त्ता कहाता है। गो नाम पशु गुणयुक्त सांईं शब्द से मुसलमानों का आचार्य अर्थात् जिस को अगम्यागमन का विवेक न हो और त्याग भी न करे धर्मन्याय से विरुद्ध पक्षपात को भी न छोड़े और वेदोक्त धर्म का त्याग कर देवे वह गोसांईं कहाता है वैसे ही आप लोग दीख पड़ते हैं इसी से गोसांईं कहाते हो। वाजी नाम घोड़ा दूसरे वा शब्द से घोड़े का विकल्प करने से गदहा वा

मध्यस्थो वेति वावाजिशब्दार्थः॥रागोऽस्यास्तीति रागी वै इति निश्च-येन रागीति वैरागिशब्दार्थः ॥ दण्डेन तुल्यो दण्डवत् ॥ दण्डवन्नाम काष्ठवत् ॥ हिन्दुशब्दस्यार्थः कृष्णवर्णो दस्युः पाषाणादिमूर्त्तिपूजको दासईश्वरोपासनाविरहश्चेत्यादयोर्थाः ॥ इत्यादिशब्दार्थानामन्धपर-म्पराऽविद्याप्रचारेण विद्यात्यागेनार्यशब्दाभिधानार्थज्ञानेन च विनाऽ-द्यपर्यन्तमागता वल्लभादिसम्प्रदायरूपेणात्यन्तं परिणता सा सद्यस्स-ज्जनैस्त्यज्यतामिति निश्चयः ॥

अथ शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डखण्डनं लिख्यते ॥ शुद्धाद्वैतशब्दस्य कोऽर्थः क्रियते? ॥ द्विधा इतं द्वीतं द्वीतमेव द्वैतं न द्वैतमद्वैतं कार्य-कारणरूपमेकीभूतमेव॥यद्वा तदेव ब्रह्म स्त्रीपुरुषरूपेण द्विधा जातं क्रीडाकरणार्थमिति च ॥ नैवत्र्प्रुक्यं वक्तुम् ॥

मध्यस्थ खिच्चर यह "वावाजी" शब्द का अर्थ है ॥ राग जिस में हो वह रागी वै नाम निश्चय कर जो रागी हो उस को "वैरागी" कहते हैं यही वैरागी शब्द का अर्थ है दण्ड नाम काष्ठ के तुल्य अर्थात् जो जड हो उस को दण्डवत् कहते हैं यह "दण्डवत्" शब्द का अर्थ है ॥ काले वर्ण वाला, डाकू, पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजक, सेवक, गुलाम और ईश्वर की उपासना से रहित इत्यादि हिन्दु शब्द का अर्थ है॥ इत्यादि शब्दों के अर्थों की अन्धपरम्परा अविद्या के प्रचार, विद्या के त्याग और आर्य शब्द के वाच्य अर्थ के न जाने विना अब तक चली आयी और बल्लभादि सम्प्रदायों के साथ अत्यन्त परिणाम को प्राप्त है यह अन्ध परम्परा सज्जनों को शीघ्र ही त्यागने योग्य है यह निश्चित है ॥

अब शुद्धाद्वैत मार्तण्ड का खण्डन लिखते हैं—शुद्ध अद्वैत शब्द का क्या अर्थ करते हो ? दो प्रकार से प्राप्त हो वह द्वीत कहाता जो द्वीत है वही द्वैत और जो द्वैत न हो वह अद्वैत—कार्य कारण का एक रूप होना है अथवा वही एक ब्रह्म स्त्री पुरुष रूप से दो प्रकार का क्रीड़ा करने के लिये प्रकट हुआ यह कहना ठीक नहीं ॥

कुतः॥ अविद्यादिदोषरहितत्वात्सदैव विज्ञानस्वरूपत्वाद्ब्रह्मणो जगद्रूपापन्नत्वमयोग्यमेव ॥ यदि जीवादिकार्यरूपं यज्जगद्ब्रह्मैवास्ति तर्ह्यनन्तविज्ञानरचनधारणसर्वज्ञतासत्यसङ्कल्पादयो गुणा अस्मिन् जगति कथन्न दृश्यन्ते ॥ तथाच ॥ जन्ममरणहर्षशोकक्षुधातृषावृद्धिक्षयमूढत्वादयो दोषा जगत्स्था एवं सति ब्रह्मण्येव भवेयुर्बन्धनरकदुःखविषयभोगादयश्च ॥ तस्माद्वल्लभकृतोऽर्थो मिथ्यैवेति वेदितव्यम् ॥ द्वीतमिति ॥ द्वीतं तदेव द्वैतं स्याददद्वैतन्तु ततोऽन्यथा॥ सर्वं खल्विदम्ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते ॥ इति वल्लभप्रवुक्कनन्द्रष्टव्यम् ॥ द्विधाकारणकार्यरूपेण परिणतञ्चेत्तर्ह्यज्ञानदुःखबन्धननरकप्राप्त्यादयो दोषा ब्रह्मण्येव स्युः ॥ पूर्वावस्थिस्यद्रव्यस्यावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः॥

क्योंकि अविद्यादिदोषों से रहित होने और सदैव विज्ञान स्वरूप होने से ब्रह्म का जगत्रूप होना अयोग्य ही है। यदि जीव आदि कार्यरूप जो जगत् है वह ब्रह्म ही है तो अनन्त, विज्ञान, रचना धारण, सर्वज्ञता और सत्यसङ्कल्प आदि गुण इस जगत् में क्यों नहीं दीख पड़ते ? और ब्रह्मको कार्य रूप मानें तो जन्म, मरण, हर्ष, शोक, भूख, प्यास, बढ़ना, घटना और मूढ़पन आदि जगत् के प्राणियों के दोष ब्रह्म में प्राप्त होवें इस से बन्ध, नरक, दुःख और विषयभोग भी ईश्वर को ही होवें इस से वल्लभ का किया अर्थ मिथ्या ही जानना चाहिये। और द्वीत, द्वैत एकही बात है द्वैत का निषेध अद्वैत कहाता इस का प्रत्यक्ष उदाहरण "सर्वं खल्विदं०" यह श्रुति है यह वल्लभ का भूंकना है। कार्य कारण रूप ब्रह्म दो प्रकार से परिणत है तो दुःख, बन्धन, और नरक प्राप्ति होना आदिदोष ब्रह्म में ही होवें। पूर्व अवस्थित द्रव्य की अवस्थान्तरप्राप्ति परिणाम कहाता है।

तथैव भवन्मते ब्रह्मैव जगदाकारञ्जातमनेन किमागतमिति श्रूयताम्॥ ये जगत्स्था अविद्याज्वरपीडादयो दोषा अपि वल्लभेन ब्रह्मण्येव स्वीकृता अतएव भवन्मतं वेदयुक्तिविरुद्धमेवेति विज्ञेयम्। वल्लभेन सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ तज्जलानिति शान्त उपासीतेत्यादि श्रुतीनामर्थो नैव विज्ञातः॥ कुतः॥ विदुषां समाधिसंयमे विज्ञानेन यादृशं ब्रह्म विज्ञायते तत्त्योयमनुभवः॥ यथा केनचिदुक्तंसर्वं खल्विदं सुवर्णमिह नानापित्तलादिधात्वन्तरं मिलितं नास्ति॥तथैव सच्चिदानन्दाद्येकरसब्रह्मणि नाना वस्तु मिलितं नास्ति॥ किन्तु सर्वं खल्विदं ब्रह्मैकरसमिति विज्ञेयमखण्डैकरसत्वादभेद्यत्वाद्ब्रह्मणश्चेति यथायमात्मा ब्रह्मेत्यत्रेदं शब्देनात्मनो ब्रह्मणएव ग्रहणमिति निश्चेतव्यं नकस्यचिज्जगद्वस्तुनः संबन्धग्रहणञ्च॥तथा तज्जलानिति

वैसे ही आप के मत में ब्रह्म ही जगत्रूप बनगया इससे क्या आया यह सुनो जो जगत् में अविद्या ज्वर पीड़ा आदि दोष भी वल्लभने ब्रह्म में ही मान लिये इसी से आप का मत वेद और युक्ति से विरुद्ध है यह जानना चाहिये। वल्लभ ने (सर्वं खल्विदं ब्रह्म०) इत्यादि श्रुतियों का अर्थ नहीं जाना क्योंकि समाधि के संयम करने में विज्ञान के प्रकाश से जैसा ब्रह्म स्वरूप जाना जाता है उस समय का किया विद्वानों का अनुभव ही श्रुति का तात्पर्य है। जैसे किसी ने कहा कि :—सब यह सुवर्ण है इस में अनेक पीतल आदि धातु मिले नहीं हैं वैसे सच्चिदानन्द आदि स्वरूप एक रस ब्रह्म के बीच में नाना वस्तु मिली नहीं हैं किन्तु यह सब ब्रह्म ही एकरस है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि ब्रह्म एक रस अखण्ड और अभेद्य है। जैसे (अयमात्मा ब्रह्म) यह आत्मा ब्रह्म है इस वाक्य में इदम् शब्द से ब्रह्मात्मा का ही ग्रहण होता है किन्तु किसी जगत् के वस्तु का सम्बन्ध ग्रहण नहीं होता। (तज्जलान् इति ब्रह्म) "तज्ज" नाम

ब्रह्म शान्तः सन्नुपासीत तस्माद्ब्रह्मानन्तसामर्थ्यादेवास्य जगतो जननधारणप्राणादीनि भवन्तीत्येवम्ब्रह्मोपासनीयमेव नान्यदित्यर्थो वल्लभेनापि नैव विज्ञातस्तत्संप्रदायस्थानाम्भवतान्तु का कथा ॥ सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वमिदमाबाध्यते पुरः ॥ सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमदो जगत् ॥ १ ॥ बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥ कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्याद्धि कारणम् ॥ २ ॥ साकारं सर्वशक्त्येकं सर्वज्ञं सर्वकर्तृ च ॥ सच्चिदानन्दरूपं हि ब्रह्म तस्मादिदञ्जगत् ॥ ३ ॥ शुद्धाद्वैतपदे ज्ञेयः समासः कर्मधारयः ॥ अद्वैतशुद्धयोः प्राहुः षष्ठीतत्पुरुषं बुधाः ॥ ४ ॥ इत्यादयः श्लोकाः शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डे अर्थतोऽशुद्धाएवेति निश्चयः ॥

उसी से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ "तज्ज" नाम उसी में सब लय होता "तदन्" नाम उसी में सब जगत् चेष्टा कर रहा है इस प्रकार शान्त हुआ पुरुष ब्रह्म की उपासना करे। अर्थात् उस ब्रह्म के अनन्त सामर्थ्य से ही इस जगत् के जन्म मरण और चेष्टादि कर्म होते हैं इस प्रकार से ब्रह्म की उपासना करनी ही चाहिये अन्य की नहीं यह अर्थ वल्लभ ने भी नहीं जाना तो वल्लभ के सम्प्रदायी आप लोगों की तो कथा ही क्या है। यह सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है यह पहिले ही जताया है। सर्व शब्द से जितना देखा सुना यह जगत् है वह सब जानना इस से वह सब जगत् ब्रह्मरूप सनातन है क्योंकि ब्रह्म रूप कार्य जगत् का कारण ब्रह्म ही हो सकता है। वह ब्रह्म साकार, सर्वशक्तियुक्त, एक, सर्वज्ञ और सब का रचने हारा सच्चिदानन्द स्वरूप है उसी से यह जगत् हुआ है। इत्यादि वल्लभ के श्लोक शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड नामक ग्रन्थ में वस्तुतः अशुद्ध ही हैं यह निश्चय जानो

कर्मधारयसमासोऽसंगतः कुतः कार्यकारणयोस्तादात्म्यगुणादर्शनात् ॥ षष्ठी तत्पुरुषोऽप्यसङ्गतः द्वौ चेद्वस्तुतो न कदाचिदेकता अवास्तवौ द्वौ चेत्कार्यकारणकथनं व्यर्थम् ॥ शुद्धश्च शुद्धा च शुद्धे तयोस्त्रीपुंसोरद्वैतमर्थान्मैथुनसमये द्वैतं स्त्रीषु राधाभावना स्वस्मिन्कृष्णभावना च क्रियते ॥ अहं कृष्णस्त्वं राधा ह्यावयोरस्तु संगम इत्यादिपतितकारकं वल्लभादीनां मतमिति निश्चयः ॥ कुतः लक्ष्मणभट्टेन संन्यासं पूर्वङ् गृहीत्वा पुनर्गृहाश्रमः कृतः सएव प्रथमतः श्ववद्वान्ताशी जातः तत्पुत्रो वल्लभोपि पूर्वं विष्णुस्वामिसम्प्रदाये

शुद्ध नाम कार्य और अद्वैत नाम कारण जो शुद्ध है वही अद्वैत यह कर्मधारयसमास कार्य कारण के एक स्वरूप एकात्मक गुण वाले न होने से असङ्गत है। षष्ठीतत्पुरुषसमास भी ठीक नहीं क्योंकि वस्तुतः जो दो पदार्थ हैं उन की एकता क्योंकर हो सकती है? और यदि वस्तुतः दो नहीं हैं तो कार्य कारणरूप कहना व्यर्थ है इस से शुद्धपुरुष और शुद्ध स्त्री दोनों का एकशेष समास भी असङ्गत है। अर्थात् मैथुन समय में द्वैत स्त्रियों में राधाभावना और अपने में कृष्ण की भावना करते हैं। मैं कृष्ण तू राधा मेरा तेरा सङ्गम होवे इत्यादि कुकर्म से वल्लभादि का मत पतित करने वाला जानना चाहिये क्योंकि इन का पूर्व आचार्य लक्ष्मण भट्ट हुआ उस ने पहिले संन्यास ग्रहण करके पीछे गृहाश्रम धारण किया। इसलिये लक्ष्मण भट्ट ही पहिले कुत्ते के तुल्य वान्ताशी अर्थात् उगले हुए को खाने वाला हुआ। पहिले गृहाश्रम को छोड़ के संन्यास लिया पीछे उसी वान्त के तुल्य त्यागे हुए गृहाश्रम का ग्रहण और संन्यास का त्याग किया। इसी लक्ष्मण भट्ट का पुत्र वल्लभ हुआ इस ने भी पहिले विष्णुस्वामी

विरक्ताश्रमङ्गृहीत्वा पुनरभूद्गृही तथानेकविधो व्यभिचारो गोकुलनाथेन विट्ठलेन च कृतस्तत्संप्रदायग्रंथेषु प्रसिद्धः ॥ लक्ष्मणभट्टमूलपुरुषमारभ्याद्यपर्यन्तं व्यभिचारादिदुष्टङ्कर्म यथावद्वल्लभसंप्रदाये दृश्यंते येऽस्य संप्रदायस्योपरि विश्वासङ्कुर्वन्तीमान्गुरूँश्च मन्यन्ते तेपि तादृशा एवेति विज्ञातव्यम् ॥ एतादृशस्य पापकर्मकर्त्तुरधर्मात्मनो गुरोस्त्यागे हनने च पुण्यमेव भवति नैव पापञ्चेत्यत्राह-मनुः ॥ गुरुं वा वालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥ आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ १ ॥ नाततायिबधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छतीति ॥ २ ॥ धर्मं त्यक्त्वा ह्यधर्मे प्रवर्त्तेत स आततायी विज्ञेयः ॥

के सम्प्रदाय में विरक्त (संन्यास) आश्रम ग्रहण कर फिर गृहाश्रम धारण किया । और गोकुलनाथ विट्ठलने अनेक प्रकार का व्यभिचार किया इत्यादि वातें इन के मत के ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं । इनके आदि पुरुष लक्ष्मण भट्ट से लेकर अब तक वल्लभ सम्प्रदाय में व्यभिचारादि दुष्ट कर्म यथावत् दीख पड़ता है तथा जो लोग इन के मत पर विश्वास करते और इन वल्लभादि मतस्थ लोगों को गुरु मानते हैं वे भी वैसे ही जानने चाहिये । ऐसे पाप कर्म कर्त्ता अधर्मी गुरू के त्यागने और मार डालने में पुण्य ही होता है पाप नहीं इस विषय में धर्मशास्त्र का प्रमाण है:—गुरु बालक वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण ये सब आततायी धर्मनाशक अधर्म के प्रवर्त्तक हों तो राजा विना विचारे मार डाले । क्योंकि आततायि के मारने में मारने वाले को दोष नहीं लगता चाहे प्रसिद्धि में मारे वा अप्रसिद्धि में सर्वथा क्रो को क्रोध मारता है किन्तु हिंसा नहीं कहाती । धर्म को छोड़ के सर्वथा जो अधर्म में प्रवृत्त हो वह आततायी कहाता है ॥

(प्र०) शुद्धाद्वैतम्प्रकाशरूपं स्वभावत उताऽन्धकाररूपम् ? ॥

(उ०) नाद्यः कुतः स्वभावतः प्रकाशस्वरूपस्य मार्त्तण्डार्थसूर्यापेक्षाभावात् । न चरमः स्वभावतोऽन्धकारस्वरूपञ्चेत्सूर्येणापि तस्य प्रकाशासंभवात् ॥ एवमेव सत्सिद्धान्तमार्त्तण्डस्यापि खण्डनं विज्ञेयम् ॥ अतएव शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डसत्सिद्धान्तमार्त्तण्डयोर्नाममात्रमपि शुद्धं नास्ति पुनर्ग्रन्थाशुद्धेस्तु का कथा ॥ एवमेव विद्वन्मण्डनस्यापि खण्डनं विज्ञेयम् ॥ विट्ठलएव यदा विद्वान्नासीत्पुनर्विदुषां मण्डनङ्कर्त्तुं कथं समर्थः स्यात् ॥ किन्तु परस्त्रीगमनपरधनहरणव्यभिचारमण्डने च सामर्थ्यन्तस्याभून्नान्यत्रेति विज्ञेयम् ॥ तत्रदिङ्मात्रनिदर्शनं वर्ण्यते ॥

प्र०—शुद्धाद्वैत प्रकाशरूप है वा स्वभाव से अन्धकार रूप है ? ॥

उ०—प्रकाश रूप होना पहिला पक्ष इस लिये ठीक नहीं कि यदि स्वभाव से प्रकाशस्वरूप हो तो सूर्य के तुल्य स्वयं प्रकाशरूप होने से मार्त्तण्ड नामक पुस्तक देखने के अर्थ सूर्य की अपेक्षा न होवे सूर्यप्रकाश की अपेक्षा विना ही कार्य सिद्ध कर सके सो सम्भव नहीं । स्वभाव से अन्धकाररूप होना द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि स्वभाव से ही अन्धकार स्वरूप हो तो सूर्य से भी उस का प्रकाशित होना असम्भव हो जावे इसी प्रकार सत्सिद्धान्त मार्त्तण्ड का भी खण्डन जानो । इस पूर्वोक्त प्रकार शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड और सत्सिद्धान्तमार्त्तण्ड ये दोनों पुस्तक का नाम मात्र भी शुद्ध नहीं है ग्रन्थ के अशुद्ध होने का तो कहना ही क्या है ! इसीप्रकार विद्वन्मण्डन नामक ग्रन्थ का भी खण्डन जानो । जब तुम्हारा आचार्य विट्ठल ही विद्वान् नहीं था तो फिर विद्वानों का मण्डन कैसे कर सकता है । किन्तु परस्त्रीगमन पराया धन हरना और व्यभिचार के मण्डन करने में तो अवश्य उसका सामर्थ्य था अन्य किसी कार्य में नहीं सो उदाहरणमात्र दिखाते हैं

निजमुरलिकेति ॥ मुरलिकानादेन तेनागता गोकुलस्य संबन्धिन्यः सुन्दर्यः परस्त्रियः कृष्णेन स्नेहाद्भोगार्थं स्वीकृता इत्युक्तम्॥ प्रतिलक्षणे ॥ युवतिं युवतिं लक्षीकृत्य यः सम्भेदः सङ्गमः कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितइत्यादि भ्रष्टवचनस्योक्तत्वाद्विद्वन्मण्डनमित्यस्य नामायोग्यमेव ॥ कुतः ॥ मूर्खव्यभिचाराधर्माणामत्र मण्डनत्वात् ॥ एवमेवाणुभाष्यमप्यसङ्गतमेवेति वेद्यम् ॥ तथा च शतशो भाषा ग्रन्था रसभावनादयोपि भ्रष्टतरा एव ॥ तत्रत्यैकदेशनिदर्शनं लिख्यते ॥ राधायाः कुचाद्यङ्गेषु मोदकादिभावना कर्त्तव्या तथा गोलोक एक एव पुरुषः कृष्णः ॥ अन्यास्सर्वाः स्त्रियः सन्ति ॥ अहर्निशन्ताभिः सह कृष्णः क्रीडति

विट्ठलकृतविद्वन्मण्डननामकग्रन्थ में (निजमुरलिका०) इत्यादि लिखा है अभिप्राय यह है कि मुरली का शब्द सुनके गोकुल की सुन्दर २ स्त्रियां आईं कृष्ण ने उन के साथ क्रीड़ा करने के लिये प्रीति से उन का ग्रहण किया । अर्थात् युवति २ स्त्रियों को देख कर जितनी गोपों की स्त्रियां थीं उतने ही अपने एक ही प्रकार के शरीर धारण कर उन से समागम किया इत्यादिभ्रष्ट वचनों के कहने से विद्वन्मण्डन नाम अयोग्य ही है क्योंकि इस पुस्तक में मूर्ख व्यभिचार और मधर्मों का मण्डन है । इसी प्रकार अणुभाष्य भी असङ्गत ही है और ऐसे ही रस भावना आदि सैकड़ों भाषा के ग्रन्थ भी अत्यन्त भ्रष्ट हैं । इस में एक बात उदाहरण के लिये लिखते हैं ॥ राधा के कुच आदि अङ्गों में मोदक आदि की भावना करनी चाहिये ॥ तथा गोलोक में एक कृष्ण ही पुरुष अन्य सब स्त्रियां हैं कृष्ण उन स्त्रियों के साथ दिन रात क्रीड़ा करते हैं ॥

पुनः सूर्योदयसमये यावत्यः स्त्रियस्तावन्तः पुरुषाः कृष्णशरीरान्निः-सृत्यैकैकामेकैको गृहीत्वा पुष्कलं मैथुनमाचरन्ति सर्वे ॥ तथा वल्ल-भस्य महाप्रभुरिति संज्ञा कृता प्रभुरितीश्वरस्य नामास्ति॥प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत इत्यादि श्रुतिषु वर्णितम्॥ तेनेश्वरेणाद्यपर्यन्तं तुल्यः कोपि न भूतो न भविष्यतीत्यधिकस्य तु का कथा॥ पुनर्महाप्रभुशब्देन वल्लभविषये किङ्गम्यते यथा महाब्राह्मणस्तथैव महाप्रभुशब्दार्थोऽवग-न्तव्यः॥यथा वेदयुक्तिविरुद्धो वल्लभसंप्रदायोऽस्ति तथैव शैवशाक्तगाण-पत्यसौरवैष्णवादयस्संप्रदाया अपि वेदयुक्तिविरुद्धाएवसन्तीति दिक्॥

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्त्तिकस्यासिते दले ॥
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयम्पूर्त्तिमागतः ॥१॥

सूर्य उदय होते समय जितनी स्त्रियां हैं उतने ही पुरुष कृष्ण के शरीर से निकल के एक २ स्त्री को एक २ पुरुष ग्रहण कर सब अच्छे प्रकार मैथुन करते हैं॥ और वल्लभ का महाप्रभु नाम रक्खा है प्रभु नाम ईश्वर का है ॥ प्रभु सब शरीरों में व्याप्त है यह वेद में कहा है॥ जब उस ईश्वर के तुल्य अब तक न कोई हुआ न होगा तो उससे अधिक कौन हो सकता है, फिर महाप्रभु कहने से यही प्रतीत होता है कि जैसे ब्राह्मण के साथ महत् शब्द लगाने से नीच का नाम महाब्राह्मण होता वैसे ही महाप्रभु भी जानना चाहिये जैसे वेद और युक्ति से विरुद्ध वल्लभ का सम्प्रदाय है वैसे ही शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, और वैष्णवादि सम्प्रदाय भी वेद और युक्ति से विरुद्ध ही हैं ॥ इति शुभम् ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्दयानन्दसरस्वती-स्वामिनिर्मितस्तच्छिष्यभीमसेनशर्मकृतभाषानुवाद-सहितश्च वेदविरुद्धमतखण्डनो ग्रन्थः समाप्तः ॥



वैदिकयंत्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायं गे (३) डाक महसूल किसी से न लिया जायगा। (४) २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजे जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें॥

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
ऋग्वेदभाष्य अं० १—८९	२९॥≡)	संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
यजुर्वेदभाष्य अं० १-८९	२९॥≡)	व्यवहारभानु	।)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका		भ्रमोच्छेदन	/)
विना जिल्द की	५।/)	अनुभ्रमोच्छेदन	/)
जिल्द की	६)	मेलाचान्दापुर	=)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)	आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)॥
सन्धिविषय	॥)	गोकरुणानिधि	/)॥
नामिक	॥)	स्वामीनारायण मतखण्डन	
कारकीय	।=)	संस्कृतगुजराती	=)
सामासिक	॥)	उक्त गुजराती	/)
स्त्रैणताद्धित	१।)	वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
अव्ययार्थ	≡)	शास्त्रार्थकाशी	=)
आख्यातिक	२।)	आर्याभिविनय	।/)
सौवर	≡)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	=)
पारिभाषिक	।)	भ्रान्तिनिवारण	=)॥
धातुपाठ	॥)	पञ्चमहायज्ञविधि	।)
गणपाठ	।≡)	सत्यार्थप्रकाश	२॥)
उणादिकोष	॥।)	" (विना कमीशन)	
निघण्टु	॥)	आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।
अष्टाध्यायी मूल	।=)	" (डाकव्यय अलग)	

प्रबन्धकर्त्ता (मैनेजर) वैदिकयन्त्रालय प्रयाग

ओ३म्

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय

अथ

अनुभ्रमोच्छेदन

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वती जी के

शिष्य भीमसेन शर्मा ने

राजा शिवप्रशाद जी के द्वितीयं निवेदन के उत्तर में

बनाया

प्रयागनगरस्थ

वैदिकयन्त्रालय में छप कर प्रकाशित हुआ

संवत् १९४४

द्वितीयवार १००० मूल्य /)



ओ३म्

॥ अनुभ्रमोच्छेदन ॥



यस्या नरो बिभ्यति वेदबाह्यास्तया हि युक्तं जनसेनया यत् ।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति ॥ १ ॥

भूमिका ।

मैं ने विचारा था कि राजा जी और स्वामी जी ने एक २ बार लिखा है आगे इस का प्रपञ्च न बढ़े गा परन्तु वैसा न हुआ और उन के अनुगामी लोगों ने समाचार पत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैं ने यह जान भी लिया कि स्वामी जी अपने नाम से इस पर कुछ भी न लिखें और न छपवावें गे क्योंकि इस पर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्री जी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इस के प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामी जी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़ कर देखने से कुछ इस से भी तत्त्व निकले गा और जो कुछ इस में भूल चूक रहे गी उस को सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसाद जी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजा जी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उस में स्वामी जी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपातरहित होकर देखें गे तब अवश्य निश्चय करलें गे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

देखिये राजा जी के प्रिय और सुन्दर लेख को निवेदन पहिला पृष्ठ १ पंक्ति ११ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मंगा के पृष्ठ ८. से ८८ तक देखा विचित्र लीला

दिखाई दी आधे आधे वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं और शेषार्द्ध का जो प्रतिकूल पाये परित्याग उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये। पृष्ठ ४ पङ्क्ति ७ ऐसा न हो कि (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी बांधे किसी अथाह गढ़े वा घोरनरककुण्ड में जा गिरें। नि० २ पृष्ठ २। पंक्ती २४ खेदकी बातहै क्यों वृथा इतना कागज बिगाड़ा। पृष्ठ ५ पंक्ती २५ निदान जब मैंने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामी जी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेंम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस, अमरीका, अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो। इत्यादि वचन जो ये राजा शिवप्रसाद जी ने अपने दोनों निवेदनों में लिखे हैं क्या इन को सुवचन गालीप्रदान कागज बिगाड़ना आदि कोई भी मनुष्य न समझेगा?। मैंने राजा शिवप्रसाद जी के दोनों निवेदनों और स्वामी जी के भ्रमोच्छेदन को भी देखा प्रथम निवेदन में जो २ प्रश्न राजा जी के थे उस २ का उत्तर भ्रमोच्छेदन में यथायोग्य है ऐसा मैं अपनी छोटी विद्या और बुद्धि से निश्चित जानता हूं राजा जी और उन के साथियों की विशालबुद्धि है इस लिये उन के योग्य ठीक २ उत्तर न हुए होंगे। इस में क्या अद्भुत है अब मैं अपनी अल्पविद्या और बुद्धि के अनुसार द्वितीय निवेदन के उत्तर में थोड़ा सा लिखता हूं। निवेदन दूसरा पृष्ठ ४ पङ्क्ति १९ भला सूर्य्य और घड़े की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्यों कर घट सकेगी उधर सूर्य्य के सामने कोई आध घंटा भी आंख खोल के देखता रहे अन्धा नहीं तो चक्षु रोग से अवश्य पीड़ित होवे इस दृष्टान्त से राजा जी का यह अभिप्राय झलकता है कि वेद को दिन भर भी आंख खोल के देखा करे तो न अन्धा और न नेत्र रोग से युक्त होता है यहां उनका ऐसा अभिप्राय विदित होता है कि यह दृष्टान्त स्वामी जी का यहां घट नहीं सकता। जहां तक विचार के देखते हैं तो यही निश्चय होता है कि दृष्टान्त का साधर्म्य वा वैधर्म्य गुण ही दार्ष्टान्त में घटता है सब गुण कर्म स्वभाव कभी नहीं (जैसे साध्य साधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्) न्या० अ० १। आ० १। सू० ३६ (तद्विपर्य्ययाद्वा विपरीतम्) न्या० अ० १। सू० ३७। शब्दोऽनित्य इति प्रतिज्ञा उत्पत्तिधर्मकत्वादिति हेतुः। उत्पत्तिधर्मकं स्थाल्यादि द्रव्यमनित्यमिति दृष्टान्त उदाहरणम्। यह शान्त वृत्ति से देखने की बात है कि शब्द में अनित्यत्व धर्म साध्य है क्योंकि उत्पत्ति धर्म वाला होने से जो २

पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे २ सब अनित्य हैं। जैसे स्थाल्यादि द्रव्य उत्पत्ति धर्म वाले होने से अनित्य हैं वैसे कार्य्य शब्द भी अनित्य हैं यहां केवल स्थाल्यादि पदार्थों का उत्पत्ति धर्म ही कार्य शब्द में दृष्टान्त के लिये घटा के कार्य शब्दों को अनित्य ठहराया है यह तो कोई भी नहीं कह सक्ता कि घट पटादिपदार्थों में चक्षु से दीखना स्थूल कठोर और अन्धेर में दीपक की अपेक्षा रहना आदि विरुद्ध धर्म हैं इस लिये उन का दृष्टान्त शब्द में नहीं घटेगा वा शब्द में भी वे धर्म हों कि दीपक जला के शब्द देखा जावे राजा जी को अन्धेर में दीपक से शब्द देखना उस से पानी आदि लाना चाहिये वा इस दृष्टान्त ही को न माने तो ऐसा दृष्टान्त कोई न मिले गा कि जिस में दार्ष्टान्त के सब धर्म बराबर मिल जावें। और जो कोई पदार्थ ऐसे भी हों कि जिन के सब धर्म बराबर मिलें तो उन का परस्पर अभेदान्वय होने से उन में दृष्टान्त दार्ष्टान्त तथा उपमान उपमेयभाव कुछ भी न बन सके गा। अब यहां प्रकृत में यह आया कि वेद को सूर्य का दृष्टान्त दिया है तो सूर्य अपने प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं रखता वैसे वेदों से भी जो अर्थ प्रकाशित होते हैं उन में ग्रन्थान्तर की अपेक्षा नहीं है स्वयं प्रकाशत्व धर्म दोनों का समान है। और जैसे उत्पत्ति धर्म वाले न होने से आत्मादि द्रव्य नित्य हैं वैसा शब्द नहीं क्योंकि उत्पत्ति धर्म वाला है यहां केवल वैधर्म्य अर्थात् कार्य्य शब्द के अनित्यत्व धर्म से विरुद्ध आत्मा का नित्यत्व धर्म ही दृष्टान्त के लिये घटाया है किन्तु जो आत्मा और शब्द के प्रमेयत्व आदि साधर्म्य हैं वे विवक्षित नहीं। जैसा राजा जी का दृष्टान्त विषयक मत है वैसा किसी विद्वान् का नहीं कि दृष्टान्त के सब धर्म दार्ष्टान्त में घट सकते हों। निवे० २। पृष्ठ ५। पं० १६। राजा जी स्वामी जी से पूंछते हैं कि (स्वामी जी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियों ने कहां ऐसा लिखा है कि मंत्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण वेद नहीं हैं) इस का उत्तर अब यह ब्राह्मण शब्द लौकिक है वा वैदिक इस के वैदिक होने में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता लौकिक होने में प्रमाण देखो॥

तत्र लौकिकास्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये इषे त्वोर्जेत्वा। अग्निमीळेपुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति।

अब यहां अन्तःस्थ नेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक शब्द में केवल ४ मंत्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं जो ब्राह्मण भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में उन का

उदाहरण क्यों न देते? अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह नपुंसक लिङ्ग न होने से ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु पुल्लिङ्ग होने से मनुष्यों में जाति विशेष का नाम है तो उस से पूछना चाहिये कि नपुंसक लिङ्ग ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का वैदिक शब्दों में पाठ क्यों न किया?। हां प्रकरण से अर्थ की सङ्गति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है। यहां पतञ्जलि जी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध होगया कि मन्त्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण नहीं। अब स्वामी जी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतञ्जलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजा जी के ऊपर गिरता है कि राजा जी यह बतलावें कि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मन्त्र और ब्राह्मणभाग दोनों वेद हैं अस्तु तावत्। निवे० २। पृष्ठ ५। पं० १८। पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि, कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मन्त्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां 'भाषायाम्' कहा, राजा जी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्नलिखित प्रमाण पाणिनि सूत्र और वेदमन्त्रआदि का अर्थ करके अपने पक्ष में घटाना सुगम क्यों कर हो-सके गा अब देखिये। छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। अ० ४। पा० २ सू० ६६। इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येतृ वेदितृ विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येतृ वेदितृ अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो। अब राजा जी के इस लेखानुसार कि (जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा) इस से पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है। क्योंकि जो छन्द के कहने से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही ग्रहण हो जाता तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया इस से स्पष्ट ज्ञापक होता है कि छन्द से ब्राह्मण पृथक् है। निवे० २। पृष्ठ ५। पं० २२। से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्वमीमांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावें गे) तच्चोदकेषु मंत्राख्या। अ० १ पा० २ सू० ३२। शेषे ब्राह्मण शब्दः। अ० २। पाद १। सू० ३३ इस का अर्थ बहुत स्पष्ट है वेद का मन्त्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण) यह अनुभवार्थ राजा जी ने शबर स्वामी की टीका में से सुना होगा परन्तु यहां यह भी विचार करना उन को योग्य था कि इन सूत्रों के सम्बन्ध में कहीं वेदसंज्ञा निर्वचनाधिकरण है वा नहीं किन्तु यहां तो केवल मन्त्रनिर्वचनाधिकरण और ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण है इस से फिर मन्त्र और ब्राह्मण दोनों की वेदसंज्ञा है

यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ वेदनिर्वचनाधिकरणम्) तो राजा जी का अभिप्राय अवश्य सिद्ध हो जाता। परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्याभिधान कर दिया है अब इन में शेष अर्थात् बाकी पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना व्याख्या करनी करानी आदि है और थी भी जो थी सो ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनिपर्यन्त महर्षि महाशय लोगों ने कर दी है जिस से ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं इसी से इन का नाम ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् "ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति"। परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजा जी आदि को भ्रम हुआ है सो शवर स्वामी जी की इसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किंलक्षणं ब्राह्मणम्) (मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः) विचार योग्य बात है कि न जाने शवर स्वामी ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इन की अद्भुत कथा को देखिये कि (प्रश्न) ब्राह्मण का क्या लक्षण है (उत्तर) मन्त्र और ब्राह्मण वेद है विद्वान् लोग विचार लेंगे कि जैसा प्रश्न किया था वैसाही उत्तर शवर स्वामी ने दिया है वा नहीं यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं किन्तु। आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे। इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निवे० दू० २। पृष्ठ ५। पं० २५ निदान जब मैं ने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामी जी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेंम वा साहब से कोई नया तर्क और न्याय, रूस अमरिका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो, स्वामी जी ने जो भूमिका में गोतम न्याय का प्रमाण वेदब्राह्मण विषय में लिखा है उस को वही पुरुष समझ सकता है कि जिस ने उन ग्रन्थों की शैली देखी हो। विना पढ़े सब विद्या किसीको नहीं आ जाती। और जिन्हीं ने उन शास्त्रों में अभ्यास ही नहीं किया वेही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणादके तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर न पाया इत्यादि। अब राजा जी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्योंकि उन के प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता। और स्वामी जी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्क न्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते वा लिखवा लेते। इस से स्पष्ट विदित होता है कि राजा जी ने ही उन विलायतियों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था। ठीक है — यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी। इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि मुनियों

के ग्रन्थों से भी न हुआ तो सब ऋषियों से बढ़ के राजा जी हो गये इस से स्पष्ट सब महात्मा ऋषि लोगों की निन्दा आ. जाती है (निवे० २ । पृष्ठ ६ । पं० ४ । फरङ्गिस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिख लाया बहुत अचरज में आये और कहने लगे हम तो स्वामी जी महराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उन के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजा जी का पक्ष दृढ़तर सिद्ध हो गया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गम्भीर आशय युक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य माने गा कि स्वामी जी के मनुष्य होने में भी सन्देह है । निवे० २ । पृष्ठ ७ । पं० २० । डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह है देखिये चित्त धर के (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११। पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परन्तु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं) जो उक्त साहब ध्यान दे कर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते । निवे० २ पृष्ठ ७ । इसी उत्तर और इस विषय से आगे जो२ उक्त साहब ने लिखा है उस २का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेदन में लिखा है। निवे० २ । पृष्ठ ८। पं० १८ (निःसन्देह दयानन्दसरस्वती जी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिस के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेककल्पित मत से विरुद्ध पा कर प्रक्षिप्त कह दे) मुझ को अपनी अल्पबुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीबो साहब की सम्मति सत्य हो तो ऐसा हो जाय किन्तु जो केवल एक डाक्टर टीबो साहब ने ही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामी जी को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीबो साहब को सम्मति देने और खण्डन मण्डन का अधिकार किस ने दिया है ? हम भी पूछ सकते हैं अहो आश्चर्य इस सृष्टि में कैसी २ अद्भुत लीला देखने में आती है। निवे० २। पृ० ८। पं० ५। (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जमदग्नि आदि का अर्थ यों ही माना जावे तो संहिता के समान

ब्राह्मणों को भी वेद भाग अथवा माननीय, मानने में उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की युक्ति यां क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी पतञ्जलि महामुनिकृत महाभाष्य और पिङ्गलाचार्य्यकृत पिङ्गलसूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यों न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रन्थों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते हैं वैसे ही निघण्टु और निरुक्त आदि से भी वैदिकशब्दों के संज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गलसूत्रों से गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इन की वेदसंज्ञा कौन कर सकेगा। निवे० २। पृष्ठ ९। पं० १०। सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि वेद के नाम से मन्त्रभाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का ज्ञानकाण्ड मानना चाहिये) निवे० १। पृष्ठ० ११। पं० १०। (इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग«अपरा» हैं जो «परा» उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें) निवे० १। पृष्ठ १२। पं० २०। (नोट) कि चारों वेदसंहिता और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं परा उन के सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं) मुझ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहां क्यों राजा जी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी और दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मन्त्रभागसंहिता और ब्राह्मणभाग को वेदसंज्ञा मानें इसी लिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मान कर ब्राह्मणों को वेदसंज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेख ने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इस को न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चारशब्द वाच्य मन्त्रभागसंहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है ऐतरेय शतपथ छान्दोग्य ताण्ड्य आदि और गोपथ ब्राह्मण-ग्रन्थों की उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इस लिये यह पूर्वापर विरुद्ध लेख है। निवे०२। पृष्ठ ९। पं १४ (ऐसा ही आज तक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये हैं) यहां

भी मैं राजा जी से यह पूछता हूं कि पम्परा और आज तक इस वाक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से ले कर आज तक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पांच पीढ़ियों में परंपरा हो जाती है वैसी ग्रहण की जाय जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य और जो चार पांच पीढ़ी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचार से भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्षवासी मनुष्यों की हिन्दूसंज्ञा सिवाय यवनग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला में पठनपाठनसंसर्ग के विना राजा जी को कहीं न मिलेगी और ऋग्वेद से ले कर पूर्वमीमांसापर्य्यन्त संस्कृतग्रन्थों में तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त्त और इस में रहने वाले मनुष्यों का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलेंगीं परन्तु यह राजा जी को स्वात्मानुभव वा इस देशियों पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियों से शिक्षा पा कर बोध हुआ होगा। यह साधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परम्परा में आज तक पढ़ देना। सो राजा जी को विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है। निवे० २। पृष्ठ० १०। पं० ९ (भला आप के) (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से बना ही नहीं उत्तर के बदले दुर्वचनों की वृष्टि की, यदि काशी जी के पण्डित उन से शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलिका लाभ होगा इस से अतिरिक्त उस में से कुछ भी सार नहीं निकलेगा (इस पर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इतना हीं लिखता हूं कि जो श्रीयुतबालशास्त्री जी श्रीमत्पंडितवरधुरन्धरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्करविशेषणयुक्त ऐसा कहते हैं और ऐसा निश्चय हो तो स्वामी जी से उन के बड़े २ गम्भीराशय प्रश्नों के उत्तर कभी न बन सकेंगे फिर इस से मेरी और अन्य लाखह किंवा करोड़ह मनुष्यों की यह इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामीदयानन्दसरस्वती जी के पक्ष को वेदादिशास्त्रद्वारा निरस्त कर दे तो उन को क्या ही लाभ न हो पुनः उक्त महाशय इस में क्यों विलम्ब कर रहे हैं और दुर्वचन पुष्पाञ्जलि विषय में इतना ही मैं लिखता हूं कि काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्मकार भी स्वामी जी से उत्तम गाली सहस्र नाम आदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञापन समाचारों में छपवाया तथा ताली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामी जी पर किया है और स्वामी जी ने संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किस को गालीप्रदान वा दुर्वचन पुष्पाञ्जलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोधरहित होने के लिये स्वामी जी को लिखते हैं तो राजा जी ने पक्षपात और क्रोधयुक्त

स्वामी जी को कब देखा था ? भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पाञ्जलि है और स्वामी जी का लेख दुर्वचन पुष्पाञ्जलि कहा जा सकता है डाक्टर टीबोसाहब बहादुर स्वामीदयानन्दसरस्वती जी के मनुष्य होने में भी सन्देह लिखते हैं क्या डाक्टर टीबोसाहब को अपने सहीस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामी जी के मनुष्य होने में संदेह करते हैं क्या यह बात अद्भुत गंभीराशय और असङ्गत नहीं है ? अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझें गे धन्य हैं ! श्रीयुतशिवप्रसाद जी वादी और धन्य हैं ! उन के साची अर्थात् श्रीमज्जगत्पूज्यस्वामीविशुद्धानन्दसरस्वती जी श्रीमत् पण्डितवरधुरन्धरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बालशास्त्री जी महाराज आर्यजन और विद्वज्जनमण्डलीभूषणकाशीराजस्थापितपाठशालाध्यच डाक्टर टीबोसाहब बहादुर योरूपियन् कि जिन्हों ने परस्पर मिल कर अपना अभीष्टमत प्रकाशित किया है क्या भला ऐसे २ महाशयों के सामने मेरा लेख हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं को साची होने पर राजा जी के विजय होने में किसी को सन्देह भी रहा होगा वाह! वाह!! वाह !!! जो कोई परपच निषेध और स्वपच सिद्ध करे तो ऐसी ही बुद्धिमत्ता से करे क्या सहायक अनुमतिदायक भी ऐसे होने योग्य हैं जहां अर्थी ही साची और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे क्यों न हों क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहां तक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हां मैं भी तो राजा शिवप्रसाद जी और स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी वा बालशास्त्री जी और डाक्टर टीबोसाहब बहादुर साची आदि महाशयों के समान स्वामी जी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उन के प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभाव न जानता होता उन की निन्दा और अपमान करने में कमती कभी करता परन्तु वाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्) विना किसी के सङ्ग किये उस के गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामी जी का समागम रहा है जितने वर्ष वा महीने स्वामी जी का सत्सङ्ग मैं ने किया है और यथाबुद्धि थोड़े से वेद भी देखे हैं उतने दिन और उतने मुहूर्त्त भी उन का समागम राजा जी आदिने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते । देखिये के एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे स्वामी जी को अत्यन्त मानते श्रद्धा करते और उपदेश का भी स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध

भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से लोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते हुए को मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बात माननी और असत्य न माननी स्वामी जी की रीति है वैसी ही राजा जी आदि को मानने योग्य नहीं है? परन्तु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजा जी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्षासहनरूप यानारूढ़ हो कर स्वामी जी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जाने कब और कहां तक बढ़ें गे क्या इस का फल आर्य्यावर्त्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा? क्यों न यह घर की फूटरूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधनरूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अब तक न हुआ क्यों इस को परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिस से हम सब सर्वतन्त्रसिद्धान्तरूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नान कर त्रिविध ताप से छूट कर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीपद्वीपान्तर के वासी मुसलमान, जैन, ईसाई, आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उन का दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और जैसी उन की कीर्त्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजा जी और उन के अनुयायी साची स्वामी जी को अविद्वान् पशु अन्धे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामी जी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उनपर हल्ला किया संखिया मिलाकर पान बीड़ा दिया बुरी बुरी निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलन्द शहर करणवास के समीप जहां स्वामी जी रहते थे वहीं किसी ने रात के १ बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ ले कर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई क्रश्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उन का मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलि का अवतार कोई काल मरते आज ही मरजाय तो अच्छा कई मजिस्ट्रेटों के काम भर व्याख्यान बन्द करा देने में प्रयत्न कर चुके और कोई इन के बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना

कई अपने बाग बगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने, सङ्ग करने और पुंसि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते हैं और स्वामी जी का दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते हैं कई स्वामी जी और स्वामी जी के उपदेश मानने वालों को महानरक में गिरना जितलाते हैं। आप गौतम और कणादादि महाशयों से अपने को बुद्धि सागर ठहराते और स्वामी जी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नों के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चाण्डाल आदि में विद्वत्ता और मनुष्य होने की शङ्का नहीं करते और स्वामी जी में विद्वत्ता के होने और मनुष्यपन में भी शङ्का बतलाते हैं कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते हैं अब कहां तक इस लम्बी गाथा को कहूं मैं ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित हो गया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही हैं तथापि धन्य है स्वामी जी को इतने हुए पर भी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न हो कर परोपकार से अपना जन्म सुफल कर रहे हैं भला जो धर्म और परमात्मा की कृपा न होती और पर मत द्वेषी स्वमतानुरागी क्षुद्राशय लोगों का राज्य होता तो स्वामी जी का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न हो जाता क्या जो आर्य्य लोग भी मुसलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामी जी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आज तक कुशल रह सकते? और जो स्वामी जी में पक्षपात राहित्य सत्यता विद्वत्ता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमलविद्याप्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे २ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योंकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहते भी आर्य्यावर्तीय मनुष्यों की वेदोक्त धर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रह जाता क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को विना आसमानी किताब वाले बुत्परस्त नालायक इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन मुसलमान और ईसाई लाखह क्रोड़ह बहका के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हम से वाद विवाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूंठा है वे ही अब स्वामी जी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा परन्तु वाद करना भी असह्य समझते और कहते हैं कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते हैं स्वामी जी के सन्मुख तो ऐसा है परन्तु जिन्हों ने स्वामी जी के ग्रन्थ

देखे और उन का समागम यथावत् किया है उन के भी सामने वे विजयवन्त नहीं हो सकते इत्यादि जो राजा जी आदि स्वामी जी के तुल्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उन के साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार दोष परिहार वेदविद्योन्नतिरूप कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को सुस्थिर करे जिस से सब आर्य्य भाई उस को परस्पर प्रेम और उपकार रूप सुन्दर जल से सींच कर उस के आश्रय से प्राचीन आर्य्य पदवी को पाकर आनन्द में सदा रहें और सब को रक्खें ॥

राजा जी का बनाया इतिहास मैंने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती हैं इन से यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा निम्न लेख से यह बात सब को विदित हो जायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजा जी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है जो उन्हों ने इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ बनाया है उस को कोई विद्वान् पक्षपातरहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजा जी की मानस परीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य हो जावे कि इन का क्या अभीष्ट है उस में अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें हैं और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी हैं उन का स्वीकार और जो अन्यथा हैं उनके संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसा मुझ को विदित होता है इतिहासतिमिरनाशक पृष्ठ १ । पंक्ति ११ (बाप, दादा और पुरखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिस से आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूवा रखते हैं) राजा जी थोड़ासा भी शोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य कम्प जाकर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते । क्या अपने पुरखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहास ज्ञानविषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं क्या कोई भी पूर्णविद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है । यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उसकी कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है । इति० पृष्ठ १—१८ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिले गा) वाह वाह वाह ! ! ! न जाने किस

देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजा जी को अपूर्वविज्ञान हुआ क्या यूरोप अमरिका एफरीका आदि देशों के पूर्व इतिहासों से भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इतिहास बुरा है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये। इतिहा० पृष्ठ ३। पङ्क्ति २। (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते हैं) क्या ही शोक की बात है कि मनु वाल्मीकि व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजा जी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहास कर्त्ता हो कर नकली की पदवी को धारण करते हैं विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्म्मिक आप्तपुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजा जी प्रसन्न बनते हैं। इतिहा० पृष्ठ ४ पं० ३० (हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझने वाला नहीं) सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत हुए। इतिहा० पृष्ट १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहें गे कि जो बात पोथी में लिखी गई और परम्परा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्योंकर झूंठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिन्दुओं की परम्परा का तिरस्कार राजा जी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलबसिन्धु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना होता है। इतिहा० पृष्ठ १२। पं० १। से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन, हिंदुओं के मत विषयक बातें लिखी हैं इस से विदित होता है कि राजा जी का मत बौद्ध जैनी ही है। इसी लिये अपने मत की प्रशंसा वैदिकमत की निन्दा मनमानी की है। यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जानें नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामी जी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे हैं इन को अच्छा कब लग सकता है इसी लिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजा जी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है। इतिहा० पृष्ठ१५। पं० १। (हिन्दुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजा जी का है कि आर्यों को हिन्दू और पारस देश से आये हैं। पहिली बात तो इन की निर्मूल है क्योंकि वेदों से ले के महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों को हिन्दू नहीं लिखा कौन जाने राजा जी के पुरखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन की परम्परा से स्वदेश पारस का संस्कार अब तक चला आया हो क्या यह बात असम्भव है कि इस आर्य्यावर्त्त ही

से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई मद्री पाण्डुराजा से विवाही थी उसी समय वा आगे पीछे वहां से यहां और यहां से वहां आ जा रहने का सम्भव होसकता है और क्या जो पारस देश से आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ?। इतिहा० पृष्ठ० १५ पं० ५ (असुर को अहुर) नोट । पं० १३ । यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुर लिया है और उसे सूरज का नाम माना है । असुरः प्राणदाता । असुरः सर्वेषां प्राणदः । असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव, देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य ! है (सुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहें परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजा जी ने लिखी हैं सब निर्मूल हैं क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं हैं किन्तु ऐसा पाठ ऋग्वेद भर में कहीं नहीं है । क्या आश्चर्य है कि ईरान वाले जिद्द से देव को राक्षस कहते हों । इतिहा० पृष्ठ १५। पं०७। (हिन्दू अपने तईं दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहनेके निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त्त कहलाया पारस देश वाले भी आर्य्य थे वरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरान वाले तो अब तक ईरानी, पारस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए । कैसा झूंठ लिखा है कि अपने जुदा रहने के लिये आर्य्य पुकारते थे । जो ऋग्वेद की कथा भी राजा जी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः) (उत शूद्रे उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है (आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते हैं इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो ईरान से आर्य्य हो जाता है तो (आरा) और (अरि) आदि शब्दों से आर्य्य शब्द सिद्ध करने में किसी को राजा जी न अटका सकेंगे। ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूंठी खुशामद किया ही करते हैं । इतिहा० पृष्ठ १५ पं०२८ (ईरान की पुरानी पारसी भाषा में एक प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढ़े विना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राजा जी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुणों से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उस से और इस देश वालों से क्या सम्बन्ध हो सकता है जिन ने दृष्टान्त संस्कृत पुरानी पारसी के उदाहरण दिये हैं ये सब संस्कृत से पुरानी पारसी बनी है यह ठीक

है क्योंकि पारस देश का नाम निशान भी जबातब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी महाभारतयुद्ध में आया ही था इस लिये राजा जी का ऐसा अनुभव केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नहीं। इतिहा० पृष्ठ १६। पं० २। से (ये आर्य्य उस समय सूर्य्य के उपासक थे वेद में सूर्य्य की बड़ी महिमा गायी है हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री इसी सूर्य्य की वन्दना है विष्णु इसी सूर्य्य का नाम है) राजा जी का स्वभाव सब से विलक्षण है ! कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे हैं परन्तु उपासना में सूर्य्य शब्द से जिस को गायत्री मन्त्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १। (आकाश को इन्द्र ठहराया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजा जी ने अपनी कल्पना से समझा होगा। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़, और बकरी इत्यादि का बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे। नोट—ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग विरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खम्भे से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोश्त सींक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खा गये) हाय ऐसे अनर्थ लेख से वेद और आर्य्यों की निन्दा कर राजा जी ने सन्तुष्टि क्यों की क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा राजा जी ने वाममार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिस से वेदों की निन्दा हांसी हो लिखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १२। (वर्ण भेद शुरू में दो ही रहा होगा अर्थात् गोरा और काला वर्ण का अर्थ रङ्ग है) वाह क्या चतुराई की लटा-झलक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रङ्ग नहीं होता और (वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषन्न पश्यति) हां यह हो तो हो कि विना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थ सिद्ध क्यों कर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से ले के अङ्गरेज के पैर पकरने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्य्यन्त राजा जी ऐसी चाल चलन से चले हैं कि जिस से इस देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादिशास्त्रों की निन्दा और जैन-मत की इङ्गित से प्रशंसा और अङ्गरेजों की प्रशंसा में जानों सब भाटों के प्रपितामह ही बन रहे हैं। क्या ही शोक की बात है कि इतिहासतिमिरनाशक के

तीसरे खण्ड में कितनी बड़ी वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजा जी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैं ने अल्पसामर्थ्य से (स्थालीपुलाकन्याय) के समान थोड़ासा नमूना राजा जी का दिखलाया है । इतने ही से सब बुद्धिमान् राजा जी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे । जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामी जी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्वशक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को मानें और झूठ को छोड़दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी की व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति हां इतना कहता हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कह और लिख सकता है मेरी धार्मिक विद्वानों से प्रार्थना है कि जो कुछ मुझ से अन्यथा लेख हुआ हो तो क्षमा करें और अपनी प्रशंसनीय विद्यायुक्त प्रज्ञा से उस को शुद्ध कर लेवें इस पर सत्य २ परामर्श का प्रकाश कर आर्य्यों को सुभूषित करें ॥

ऋषिकालाङ्क भूवर्षे तपस्यस्याऽसिते दले ।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमच्छेत्तुमकार्य्यलम् ॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतो-
ऽनुभ्रमोच्छेदनो
ग्रन्थः पूर्णः

वैदिकयंत्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें । (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा कमीशन के पुस्तक अधिक भेजें जायं गे (३) डाक महसूल किसी से न लिया जायगा । (४) २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजें जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मूल्य
ऋग्वेदभाष्य अं० १—८६	२८॥≡)
यजुर्वेदभाष्य अं० १—८६	२८॥≡)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	
विना जिल्द की	५।/)
„ जिल्द की	६)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)
सन्धिविषय	॥)
नामिक	॥)
कारकीय	।≠)
सामासिक	॥)
स्त्रैणताद्धित	१।)
अव्ययार्थ	≡)
आख्यातिक	२।)
सौवर	≡)
पारिभाषिक	।)
धातुपाठ	॥)
गणपाठ	।≡)
उणादिकोष	॥।)
निघण्टु	॥)

पुस्तक	मूल्य
अष्टाध्यायी मूल	।≠)
संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
व्यवहारभानु	।)
भ्रमोच्छेदन	/)
अनुभ्रमोच्छेदन	/)
मेलाचान्दापुर	≠)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)॥
गोकरुणानिधि	/)॥
स्वामीनारायण मतखण्डन	
संस्कृतगुजराती	≠)
उक्त गुजराती	/)
शास्त्रार्थकाशी	≠)
आर्याभिविनय	।/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	≠)
भ्रान्तिनिवारण	≠)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	।)
सत्यार्थप्रकाश	२॥)
आर्यसमाज के नियमोपनियम	)।
„ (डाकव्यय अलग)	

प्रबन्धकर्त्ता (मैनेजर) वैदिकयंत्रालय प्रयाग

भ्रमोच्छेदन

जो

राजा शिवप्रशाद सितारे हिन्द के निवेदन के उत्तर में।

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वती जी ने

सज्जन आर्य्यों के हितार्थ।

निर्माण किया है॥

प्रयागनगरस्थ

वैदिकयन्त्रालय में मुद्रित हुआ

संवत् १९४४

द्वितीयवार १०००

मूल्य ।⁄)



ओ३म्

भ्रमोच्छेदन*

—०*०—

अविद्वानों का

मैंने राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द की बुद्धि और चतुराई की प्रशंसा सुन के चित्त में चाहा कि कभी उन से समागम होकर आनन्द होवे जैसे पूर्व समय में बहुत ऋषि मुनि विद्वानों के बीच प्रज्ञा सागर बृहस्पति महर्षि हुए थे क्या पुनरपि वेही महा अविद्यान्धकार के प्रचार से नाना प्रकार के अन्योन्य विरुद्ध मत मतान्तर के इस वर्त्तमान समय में शरीर धारण करके प्रकट तो नहीं हुए हैं? ।

देखना चाहिये कि जैसा उनको मैं सुनता हूं वैसे ही वे हैं वा नहीं ऐसी इच्छा थी । यद्यपि मैंने संवत् १९२६ से ले के पांच बार काशी में जाकर निवास भी किया परन्तु कभी उन से ऐसा समागम न हुआ † कि कुछ वार्तालाप होता, मैंने प्रस्तुत संवत् १९३६ कार्तिक सुदी १४ गुरुवार को काशी में आकर महाराजे विजयनगराधिपति के आनन्द बाग में निवास किया इतने में मार्ग शीर्ष सुदी में अकस्मात् राजा शिवप्रसाद जी सिप्रह एस् एच् करनेल ओलकाट् साहब और एच् पी मेडमब्लेवस्की को मिलने के लिये आनन्द बाग में आ उनने मुझ से मिलकर कहा कि मैं उक्त साहब और मेडम से मिला चाहता हूं । सुनकर मैंने एक मनुष्य को भेज राजा साहब की सूचना कराई और जब तक उक्त साहब के साथ राजा जी न उठगये तब तक जितनी मैं अपनेपत्र में लिख चुका हूं उनसे बातें हुईं परन्तु शोक है कि जैसा मेरा प्रथम निश्चय राजाजी पर था वैसा उनको न पाया ‡ मन में बिचारा कि जितनी दूसरे के मुख से बात सुनी जाती है सो सब सच नहीं होती ॥

राजा जी लिखते हैं कि स्वामी जी की बात सुन कर मैं भ्रम में पड़ गया यहां बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि क्या मेरी बात का सुनना ही राजा जी को

---

* जो राजा शिवप्रसाद जी अपने लेखपर स्वामी विशुद्धानन्द जी का हस्ताक्षर न कराते तो मैं इसपर एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो संस्कृत विद्या में शब्दार्थ संबंधों के समझने का सामर्थ्य ही नहीं है इस लिये जो कुछ इसपर लिखता हूं सो सब स्वामी विशुद्धानन्द जी की ओरही समझा जावे ॥

† एक बार सय्यदअहमद खां सदरसदूर जी की कोठी पर दूर से देखा था पर वार्तालाप नहीं हुआ था॥

‡ राजा जी की वाचालता बहुत बड़ी और समझ अति छोटी देखी ।

बड़े सन्देह में पड़ने का निमित्त है और उनकी कम समझ और आलस्य कारण नहीं है * जब कि उनको सन्देह ही छुड़ाना था तो मेरे पास आके उत्तर सुन के यथा शक्ति सन्देह निवृत्त कर आनन्दित होना योग्य न था ? जैसा कोमल लेख उनके पत्र में है वैसा भीतर का अभिप्राय नहीं † किन्तु इसमें प्रत्यक्ष छल ही विदित होता है। देखो मार्गशीर्ष से लेके वैशाख कृष्ण एकादशी बुधवार पर्यन्त सवाचार मास उनके मिलने के पश्चात् मैं और वे काशी में निवास करते रहे क्यों न मिल के सन्देह निवृत्त किये ? । जब मेरी यात्रा सुनी तभी पत्र भेज के प्रत्युत्तर क्यों चाहे ? मेरे चलने समय प्रश्न करना, मेरे बुलाये परभी उत्तर सुनने न आना, सवाचार महीने पर्यन्त चुप होके बैठे रहना, और मेरे काशी से चले आने पर अपनी व्यर्थ बड़ाई के लिये पुस्तक छपवा कर काशी में और जहां तहां भेजना कि काशी में कोई भी विद्वान् स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने में समर्थ न हुआ किन्तु एक राजा शिवप्रसाद जी ने किया। ऐसी प्रसिद्धि होने पर सब लोग मुझ को विद्वान् और बुद्धिमान् मानेंगे ऐसी इच्छा का विदित कराना आदि हेतुओं से क्या उनकी अयोग्यता की बात नहीं है ? ‡ भला ऐसे मनुष्यों से किसी विद्वान् को उचितहै कि बात और शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त होवे? ऐसे कपट छल के व्यवहार न करने में मनुजी की भी साक्षी अनुकूल है ॥

अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाऽधर्मेण पृच्छति ।

तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥

अर्थ—(यः) जो (अधर्मेण) अन्याय, पक्षपात, असत्य का ग्रहण सत्य का परित्याग, हठ, दुराग्रह से वा जिस भाषा का आप विद्वान् न हो उसी भाषा के विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ किया चाहे और उस भाषा के सच झूठ की परीक्षा करने में प्रवृत्त होवे और कोई प्रतिवादी सत्य कहे उस का निरादर करे इत्यादि अधर्म कर्म से युक्त हो कर छल कपट से + (पृच्छति) पूछता है (च) और

* कोई कितनाही बड़ा विद्वान् हो परन्तु अविद्वान् मनुष्य को विद्या की बातें विना पढ़ाये कभी नहीं समझा सकता न वह विना पढे समझ सकता है ।

† हाथी के खाने के दांत भीतर और दिखाने के बाहर होते हैं ।

‡ जो राजा जी प्रश्नों के उत्तर चाहते तो ऐसी अयोग्यचेष्टा क्यों करते जब मैंने उन की अन्यथा रीति जानी तभी उन से पत्र व्यवहार आगे को न चलाया क्यों कि उन से संवाद चलाना व्यर्थ देखा ।

+ जिस के आत्मा में और; और जिस के बाहर और होवे वह छली कहाता है ॥

(यः) जो (अधर्मेण) पूर्वोक्त प्रकार से (प्राह) उत्तर देता है ऐसे व्यवहार में विद्वान् मनुष्य को योग्य है कि न उस से पूछे और न उस को उत्तर देवे। जो ऐसा नहीं करता तो पूछने वा उत्तर देने वाले दोनों में से एक मर जाता है (वा) अथवा (विद्वेषम्) अत्यन्तविरोध को (अधि, गच्छति) प्राप्त हो कर दोनों दुःखित होते हैं ॥

जब इस वचनानुसार राजाजी को अयोग्य जान कर लिख के उत्तर नहीं दिये * तो फिर क्या मैं ऐसे मनुष्यों से शास्त्रार्थ करने को प्रवृत्त हो सकता हूं। हां मैं अपरिचित मनुष्यों के साथ चाहे कोई धर्म से पूछे अथवा अधर्म से उन सबों के समाधान करने को एक बार तो प्रवृत्त हो ही जाता हूं, परन्तु उस समय जिस को अयोग्य समझ लेता हूं जब तक वह अपनी अयोग्यता को छोड़ कर नहीं पूछता और न कहता है तब तक उस से सत्याऽसत्यनिर्णय के लिये कभी प्रवृत्त नहीं होता हूं। हां जो सब विद्वानों को योग्य है वह काम तो करता ही हूं, अर्थात् जब २ अयोग्यपुरुष मुझ से मिलता वा मैं उस से मिलता हूं तब २ प्रथम उस की अयोग्यता के छुड़ाने में प्रयत्न करता हूं, जब वह धर्मात्मता से योग्य होता है तब मैं उस को प्रेम से उपदेश करता हूं वह भी प्रेम से पूछ के निस्सन्देह हो कर आनन्दित होजाता है †। अब जो राजा शिवप्रसाद जी ने स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति लिखा ज्येष्ठ महीने में निवेदन पत्र छपवा के प्रसिद्ध किया है उसी के उत्तर में यह पुस्तक है॥

इस में जहां २ (रा०) चिह्न आवे वहां २ राजा शिवप्रसाद जी का और जहां २ (स्वा०) आवे वहां २ मेरा लेख जानना चाहिये।

रा० जितना महाराज जी के मुखारविन्द से सुना था बड़े सन्देह का कारण हुआ निवृत्यर्थपत्र लिखा महाराज जी ने कृपा करके उत्तर दिया उसे देख मेरा सन्देह और भी बढ़ा महाराज जी के लिखे अनुसार ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका अंग्रेज़ी के पृष्ठ ८ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी आधे २ वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं शेषार्द्ध को जो प्रतिकूल पाये परित्याग ‡ उन आधे

* जो जिस बात के समझने और जिस काम के करने में सामर्थ्य नहीं रखता वह उस का अधिकारी नहीं हो सकता॥

† कोई भी वैद्य जब तक रोगी के आखों की पीड़ा सोजा और मलीनता दूर नहीं कर देता तब तक उस को दिखला भी नहीं सकता परन्तु जिस के नेत्र ही फूट गये हैं उस को कुछ भी दिखलाने का उपाय नहीं है।

‡ देखिये राजा जी की अद्भुत लीला मैं ने जो वेदार्थ के अनुकूल लिखा है उस को मेरे अनुकूल और जो वेदार्थ प्रकरण के प्रतिकूल का त्याग किया है उस को मेरे प्रतिकूल समझते हैं इसी लिये राजाजी विद्यारहस्य को कुछ भी नहीं समझते हैं क्योंकि उन को भी ऐसाही करना पड़ता है।

अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये मनमाने लगा लिये * परन्तु आप ने याज्ञवल्क्य जी का यह वाक्य आधा ही अपना उपयोगी समझ क्यों लिखा? क्या इसी लिये कि शेषार्द्ध वादी का उपयोगी है।

स्वा॰ क्या मेरी बात ही सन्देह की बढ़ाने हारी है उन की अल्प समझ और आलस्य नहीं है और यह भी सच है कि जब २ अविद्वान् हो कर विद्वान् के बनाये ग्रंथ को देखने लगता है तब २ काच के मन्दिर में प्रविष्ट हुए श्वान के समान भूंस २ सुख के बदले दुःख ही पाया करता है ॥

विदित हो कि जहां जितने वाक्य के भाग के लिखने की योग्यता हो उतना ही लिखना उचित होता है न अधिक न न्यून, जिस लिये यह वेदभाष्य की भूमिका है इस लिये उस वाक्य समूह में से जितना वेदों का उपयोगी लिखना उचित था उतना ही लिखा है जो इतिहासादि में से जिस किसी की व्याख्या करनी होती तो वहां उस २ भाग का लिखना भी योग्य था। प्रकरण विरुद्ध लिखना विद्वानों का काम नहीं † सब विद्वान् इस बात को निश्चित जानते हैं कि पदों का पद, वाक्यों का वाक्य, प्रकरणों का प्रकरण और ग्रंथों का ग्रंथों ही के साथ सम्बन्ध होता है ॥ जब ऐसा है तब राजा जी को अपनी बात की पुष्टि के लिये सब पद, सब वाक्य, सब प्रकरण, और सब ग्रंथों का प्रमाणार्थ एकत्र लिखना उचित हुआ, क्योंकि यह उन्हीं की प्रतिज्ञा है ‡ कि आधा छोड़ना और आधा लिखना किसी को योग्य नहीं—और जो राजा जी संपूर्ण का लिखना उचित समझते हैं, सो यह बात अत्यन्त तुच्छ और असम्भव है। ऐसी बात कोई बालबुद्धि मनुष्य भी नहीं कह सकता। देखिये फिर यही उन की अविद्वत्ता उलटा उन को उन्हीं मिथ्यादोषों में पकड़कर गिराती रहती है अर्थात् जो मिथ्या दोष वे मेरे लेख पर देते हैं उन्हीं में आप डूबे हैं ॥

यहां जब कोई मनुष्य राजा जी से पूछेगा कि आप जो स्वामीदयानन्दसरस्वती जी की बनाई भूमिका में दोष देते हैं वही आप के (अन्धेनैव नीयमाना

---

* जैसी राजा जी की समझ है वैसी किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं हो सकती क्योंकि जो व्याख्येय शब्दार्थ के विरुद्ध का छोड़ना और अनुकूल का ग्रहण करना सब को योग्य होता है उस २ को वे उलटा समझते हैं और फिर कोई उदाहरण भी नहीं लिखते कि इस का अर्थ उलटा वा मनमाना किया क्या उपरयुक्त मनुष्य के लिये कुपथ्य का त्याग और सुपथ्य का ग्रहण कराना वैद्य का दोष है। और मैंने तो अपनी समझ के अनुसार जो कुछ लिखा है सो सब शास्त्रानुकूल ही है उस को उलटा वा मनमाना लगा लेना जो समझते हैं यह उन की समझ का दोष है ॥

† चेत करना चाहिये यह उलटी समझ राजा जी की है कि जो अनेक वाक्यों को एक वाक्य समझना।

‡ ऐसा असंभव वचन किसी विद्वान् के मुख से नहीं निकल सकता है और न हाथ से लिखा जा सकता है।

यथाऽन्धाः) इस लेख में भी आते हैं। इस की वाक्यावली * तो ऐसी है (अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमाना अपि यन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) फिर आप ने इस वाक्यावली में से पूर्व के तीन भाग छोड़, चौथे भाग को क्यों लिखा ? तब राजा साहब घबड़ा कर मौन ही साध जांयगे, क्योंकि वे वाक्यावली में से प्रकरणोपयोगी एक ही भाग का लिखना उचित नहीं समझते चाहे प्रकरणोपयोगी हो वा न हो, किन्तु पूरी वाक्यावली लिखना योग्य समझते हैं † जो ऐसा न समझते तो (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्श्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि) इस वाक्य समुदाय को स्वामी जी ने नहीं लिखा, यह मिथ्या दोष क्यों लगाते पर विचारे क्या करें उन्हीं ने न कभी किसी से वाक्य का लक्षण सुना और न पढ़ कर जाना है, जो सुना वा जाना होता तो (एवंवा॰) इस से ले के (निःश्वसितानि) इस अनेक वाक्य के समुदाय को एक वाक्य क्यों समझते ‡ देखिये यह "महाभाष्य में वाक्य का लक्षण लिखा है (एकतिङ्वाक्यम्) जिस के साथ एक तिङन्त के प्रयोग का सम्बन्ध हो वह वाक्य कहाता है जैसे (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य विभोः परमेश्वरस्य साक्षाद्वा परम्परा सम्बन्धादेतत्सर्वं वक्ष्यमाणमनेकवाक्यवाच्यं निःश्वसितमस्तीति। एक और (पूर्वोक्तस्य सकाशादृग्वेदो निःश्वसितोऽस्तीति) दूसरा वाक्य है इसी प्रकार इस कंडिका में २० वाक्य तो पठित हैं और आकांक्षित वाक्य (त्वं विद्धि) इत्यादि ऊपर से और चकार से इन्हीं के अविरुद्ध अपठित उपयोगी अनेक अन्य वाक्य भी अन्वित होते हैं। क्या जिन को वाक्य का बोध न हो उन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध जिन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध न हो उन को प्रकरणार्थ और ग्रंथ के पूर्व पदार्थ का बोध होने की आशा कभी हो सकती है ? ÷ इसी लिये जो राजा जी को दूसरे पत्र में मैं ने लिखा है सो बहुत ठीक है कि इस से मुझ को निश्चित हुआ कि राजा जी ने वेदों से लेके

* जैसे कोई प्रमत्त अर्थात् पागल पगड़ी पग पर और जूते शिरपर धरता है वैसा काम विद्वान् कभी नहीं कर सकता॥

† मेरी प्रतिज्ञा तो यह है कि जहां जितना लिखना योग्य हो वहां उतना ही लिखना।

‡ जो राजा जी विद्या में वास कर अविद्या से पृथक् होते तो उन के मुख से ऐसी असंभव बात कभी न निकलती।

÷ राजा जी ने समझा होगा कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूं। हां [अन्धानां मध्ये काणो राजा] यहां इस न्याय के तुल्य तो चाहे कोई समझ लेवे॥

पूर्वमीमांसा पर्यन्त विद्या पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है * इस लिये उन को मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ ॥

क्या अब जिस को थोड़ी सी भी बुद्धि हो गी वह राजासाहब को शास्त्रों के तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य जानने में कुछ भी शङ्का रख सकता है यहां चोर, कोटपाल को दंडे यह कहानी चरितार्थ होती है कि जो (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) के समान स्वयं राजा जी और उन के विचारानुकूल चलने वाले हो कर भ्रम से इस के अर्थ को मेरी बनाई भूमिका और मेरे उपदेश को मानने हारे पर झोंक देते हैं। क्या, यह उलट पलट नहीं है ? ॥ इस से मैं सब आर्यसज्जनों को विदित करता हूं कि जो अपना कल्याण चाहें वे उन के व्यर्थ वाक्याडम्बर जाल में बद्ध हो अपने मनुष्य जन्म के धर्मार्थ काम मोक्ष फलों से रहित हो कर दुःखदुर्गन्धसागररूप घोर नरक में गिर कर चिरकाल दारुण दुःख भोग न करें और सर्वानन्दप्रद वेद के सत्यार्थप्रकाश में स्थिर हो कर सर्वानन्दों का भोग न छोड़ बैठें- अब जो स्वामी विशुद्धानन्द जी की पक्षपातरहित विद्वत्ता की परीक्षा बाकी है सो करनी चाहिये॥

रा॰ श्री मत्पण्डितवर † बालशास्त्री जी तो बाहर गये हैं परम पूजनीय जगद्गुरु ‡ श्रीस्वामी विशुद्धानंद जी के चरणों में पहुंच जापत्र और उत्तरों को देख कर बहुत हंसे ÷ और पिछले उत्तर पर जिस में इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया स्वामी विशुद्धानन्द जी का लिखवाया राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानंद से नहीं बना इति।

स्वा॰ जिन का पक्षी पक्षपातान्धकार से विचारशून्य हो उन के साक्षी तत्सदृश क्यों न हों क्या यथा बुद्धि कुछ विद्वान् हो कर स्वामीविशुद्धानंद जी को योग्य था कि ऐसे अशास्त्रवित् अव्युत्पन्न व्यर्थ वैतण्डिक मनुष्य के अत्यन्त अयुक्त लेख पर विना सोचे समझे सम्मति लिख देवें और इस से सजातीयप्रवाहपतनन्यायकरके यह भी

* ईश्वरोक्त चार वेद स्वतः प्रमाण और ब्रह्मा से लेके जैमिनिपर्य्यन्त ऋषि मुनि और ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त ग्रंथों की गणना से कोई भी आर्ष पुस्तक पढ़ना बाकी नहीं रहता कि जिस का परतः प्रमाण ग्रहण न हो सके क्योंकि ग्रंथकारों में जैमिनि सब के पश्चात् हुए हैं और पुस्तकों में पूर्व मीमांसा सब से पीछे बनाया है इस लिये जो राजा जीने नोट में (स्वामी जी ने पूर्व मीमांसापर्यंत पढ़ा होगा) लिखा है सो भ्रम से ही है।

† काशी के पंडितों में तो बालशास्त्री जी किसी प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं भूगोलस्थ पंडितों में नहीं।

‡ जगत् में जो २ उनके शिष्य वर्ग में हैं उन२ के परम पूजनीय और गुरु होंगे सब के क्यों कर हो सकते हैं।

÷ जो कुछ भी पत्रों के अभिप्राय को समझते तो हास करके अयोग्यपत्र पर सम्मति क्यों लिख बैठते॥

विदित हुआ कि स्वामी विशुद्धानंद जी भी राजा जी के तुल्यत्व की उपमा के योग्य हैं। मैं स्वामीविशुद्धानंद जी को चिताता हूं कि आगे कभी ऐसा निर्बुद्धिता का काम न करें * भला मैं ने तो राजा जी को संस्कृत विद्या में अयोग्य जानकर लिख दिया है कि आप ने जिस लिये वेदादि विद्या के पुस्तकों में से एक का भी अभ्यास नहीं किया है जो आप को उत्तर ग्रहण की इच्छा हो तो मेरे पास आ के सुन समझ कर अपनी बुद्धि के योग्य ग्रहण करो—आप दूर से वेदादि विषयक प्रश्न करने और उत्तर समझने योग्य नहीं हो सकते। इसी लिये उन को लिख के यथोचित उत्तर न भेजे और न भेजूंगा यह बात भी मेरे दूसरे पत्र से प्रसिद्ध है कि जो वे वेदादिशास्त्रों में कुछ भी विद्वान् होते तो मेरी बनाई भूमिका का कुछ तो अर्थ समझ लेते † न ऐसी किसी को योग्यता है कि अंधे को दिखला सके यह भी मैं ठीक जानता हूं कि स्वामीविशुद्धानंद जी भी वेदादि शास्त्रों में विद्वान् नहीं किन्तु नवीनटीकानुसार दश उपनिषद् शारीरक और पूर्वमीमांसा सूत्र और प्राचीन आर्षग्रंथों से विरुद्ध कपोलकल्पित तर्कसंग्रहादि ग्रंथों का अभ्यास तो किया है परंतु वे भी नशा से ‡ विस्मृत हो गये होंगे तथापि उनका संस्कार मात्र तो ज्ञान रहा ही होगा इस लिये वे संस्कृत पदवाक्य प्रकरणार्थों को यथा शक्ति जान सकते हैं परन्तु न जाने उन्होंने राजा जी के अयोग्य लेख पर क्यों कर साची लिखी अस्तु। जो किया सो किया अब आगे को वे वा बालशास्त्री जी जिस के उत्तर वा प्रश्नों पर हस्ताक्षर करके मेरे पास अपनी ओर से भेज दिया करें और यह भी समझ रक्खें कि जो प्रश्नोत्तर उन के हस्ताक्षरयुक्त आवें गे वे उन्हीं की ओर से समझे जावें गे जैसा कि यह निवेदनपत्र का लेख स्वामी विशुद्धानन्द जी की ओर से समझा गया है। इसी लिये वे तीनों स्वामी सेवक मिल कर प्रश्नों को विचार शुद्ध लिख कर मुंशी बख्तावर सिंह जी के पास भेज दिया करें मुंशी जी आप की ओर से यह लेख है वा नहीं इस निश्चय के लिये पत्र द्वारा आप से संमति पत्र मंगवा के मेरे पास भेज दिया करेंगे और मेरा लेख भी मेरे हस्ताक्षर सहित अपने हस्ताक्षर करके पत्र सहित उन के पास भेजदिया करेंगे वे लोग राजा जी आदि को समझाया करें और वे आप से मेरे लेखाभिप्राय को समझ

* जो कोई विना विचारे कर बैठता है उस को बुद्धिमान् प्राज्ञ नहीं कहते।

† यह तो सच है कि जो मनुष्य योग्य होकर समझना चाहता है वह समझ भी सकता है।

‡ सुना है कि स्वामी विशुद्धानन्द जी भांग और अफीम का सेवन करते हैं जो ऐसा है तो अवश्य उन की विद्या का स्मरण न रहा होगा जो मादक द्रव्य होते हैं वे सब बुद्धिनाशक होते हैं इस से सब को योग्य है कि उन का सेवन कभी न करें।

लिया करें जो इसपर भी आप लोग परस्पर विचार करने में प्रवृत्त न होंगे तो क्या सब सज्जन लोग आप लोगों को भी अयोग्य न समझलेंगे क्योंकि जो स्वपक्ष के स्थापन और पर पक्ष के खंडन में प्रवृत्त न होकर केवल विरोधही मानते रहें वे अयोग्य कहाते हैं। इस लिये मैं सब को सूचना करता हूं कि जो मेरे पक्ष से विरुद्ध अपना पक्ष जानते हों तो प्रसिद्ध होकर शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते ? और टट्टी की आड़में स्थित होकर ईंट पत्थर फेंकने वाले के तुल्य कर्म करना क्यों नहीं छोड़ते? और जो विरुद्ध पक्ष नहीं जानते हों तो अपने पक्ष को छोड़ मेरे पक्ष में प्रवृत्त होकर प्रीति से इसी पक्ष का प्रचार करने में उद्यत क्यों नहीं होते ? * जो ऐसा नहीं करके दूर ही दूर रहकर झूठेगाल बजाने और जैसे मेरे काशी से चले आये पर राजा जी के पत्र पर व्यर्थ हस्ताक्षर करने से उनने अपनी अयोग्यता प्रसिद्ध कराई वैसे जो वे मुझसे शास्त्रार्थ करेंगे तो प्रशंसित भी हो सकते हैं। ऐसा किये विना क्या वे लोग बुद्धिमान् धार्मिक विद्वानों के सामने अमाननीय और अप्रतिष्ठित न होंगे?॥ जो इस में एक बात न्यून रही है कि बाल-शास्त्री जी भी इसपर अपनी सम्मति लिखते तो उन को भी राजा शिवप्रसाद और स्वामी विशुद्धानन्द जी के साथ दक्षिणा मिलजाती। कहिये राजा जी आप अपनी रक्षा के लिये स्वामी विशुद्धानन्द जीके चरणोंमें पहुंचकरपत्र दिखा सम्मति लिखा पुस्तक छपाकर इधर उधर भेजने से भी न बचसके तो आप केजाट, खाट, और कोल्हूः लौट कर आपही के शिरपर चढ़े वा नहीं, अब इस बोझ के उतारने के लिये आप को योग्य है कि बालशास्त्री जी के चरणों में भी गिरकर बचने का उपाय कीजिये और आप अपने विजय के लिये स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी को (प्राड्विवाक्) अर्थात् बारिष्टर करनाभी मतछोड़िये, अथवा उत्तम तो यह है कि वे दोनों आप को ढाल बनाकर न लड़ें किंतु सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करें, इसी में उन की शोभा है। अन्यथा नहीं, परन्तु मैं आप और उन को निश्चित कहता हूं कि सब मिलकर कितनाही करो जब तक कोई मनुष्य झूठ छोड़, सत्यमत का ग्रहण नहीं करता, तबतक, अपना और दूसरेका विजय कभी नहीं करसकता और न करासकता है क्या दूसरे की वृथा प्रशंसा से हर्षित होकर स्वामी विशुद्धानन्द जी का बहुत हंसना बालकों का खेल नहीं है ? और जो कोई अपनी योग्यता के सदृश वर्त्तमान न करे वह संशय में मग्न हो कर विनष्ट क्यों कर न होवे ॥

* उन को अवश्य योग्य है कि सत्य के आचरण और असत्य के छोड़ने में अति दृढोत्साह युक्त होके निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि की प्राप्ति में शोक और हर्ष कभी न करें।

अब मैं सूचना करता हूं कि बुद्धिमान् आर्य लोग पच्ची राजा जी और साची विशुद्धानन्द जी के हास्यास्पद लेख को देख उस पर विश्वास कर इस (क्वास्ताः क्व निपतिताः) महाभाष्योक्त वचनार्थ के सदृश हो कर धर्मफल आनन्द से छूटकर दुर्गन्ध गढ़े और दुःखसागर में जा न गिरें ।

रा० हम केवल वेद की संहिता मात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं । ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते हैं ॥

स्वा० जैसा यह राजा जी का लेख है वैसा मैंने नहीं कहा था किन्तु जैसा नीचे लिखा है वैसा कहा गया था । तद्यथा–

रा० आप का मत क्या है ।

स्वा० वैदिक ।

रा० आप वेद किस को मानते हैं ।

स्वा० संहिताओं को ।

रा० क्या उपनिषदों को वेद नहीं मानते ।

स्वा० मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ के अन्य उपनिषदों को नहीं मानता किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रंथों में हैं । वे ईश्वरोक्त नहीं हैं ।

रा० क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ? ।

स्वा० नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त को वेद नहीं कहते, जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत, और संहिता ईश्वर प्रणीत हैं जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होनेसे तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होताहै वैसा जीवोक्त नहीं होसकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परंतु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थहैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं । वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं इस से जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता; क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं । यह मेरे पत्र का लेख उन के भ्रमजाल निवारण का हेतु विद्यमान ही था परंतु मेरा लेख क्या कर सकता है जो राजा जी मेरे लेख को समझने की विद्याही नहीं रखते तो क्या इस में राजा जी का दोष नहीं है? ॥

रा० वादी कहता है * जो संहिता ईश्वर प्रणीत है तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत है ॥

स्वा० देखिये राजा जी की मिथ्या आडम्बर युक्त लड़कपन की बात जो जैसे कोई कहे कि जो पृथिवी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घड़ा और दीप भी ईश्वर ने रचे हैं ॥

रा० और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत हैं ॥

स्वा० यह भी ऐसी बात है कि जो कोई कहे कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका स्वामीदयानन्द सरस्वती प्रणीत है तो ऋग्यजुः साम और अथर्व चारों वेद भी उन्हीं के प्रणीत हैं ॥

रा० वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये †

स्वा० देखिये राजा जी की अविद्या के प्रकाश को, क्या प्रतिवादी का प्रतिध्वनि वादी कभी होसकता है क्योंकि जैसा शब्द और उसमें जैसे पद अक्षर और मात्रा होती हैं वैसाही प्रतिध्वनि सुनने में आता है विपरीत नहीं कोई बालबुद्धि भी नहीं कहसकता कि वादी अपने मुख से प्रतिवादी ही के शब्दों को निकाले विरुद्ध नहीं जबतक प्रतिवादी के पक्ष से विरुद्ध पक्ष प्रतिपादन नहीं करता तबतक वह उसका वादी कभी नहीं होसकता जैसे कुआ में से प्रतिध्वनि सुना जाता है क्या वह वक्ता के शब्द से विरुद्ध होता है ? ।

रा० आप ने लिखा वेदसंहिता स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं वादी कहता है कि जो ऐसा तो ब्राह्मण ही स्वतः प्रमाण हैं आप का संहिता परतः प्रमाण होगा ।

स्वा० क्या यह उपहास की बात नहीं है जैसे कोई कहे कि जो सूर्य्य और दीप स्वतः प्रकाशमान हैं तो घट पटादि भी स्वतः प्रकाशमान हैं ।

रा० आपने लिखा की मेरी बनाई हुई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नव ९ पृष्ठ से लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेदसंज्ञा

* क्या विद्या और सुशिक्षा रहित मनुष्य प्रश्न और उत्तर करना कभी जान सकता है । जब राजा जी वाद के लक्षण युक्तही नहीं हैं तो वादी क्यों कर बन सकते हैं ।

† जो मैं राजा जी के सदृश होता तो वादी को अपना प्रतिध्वनि समझता क्योंकि प्रतिध्वनि, ध्वनि से विरुद्ध कभी नहीं हो सकती और वादी प्रतिवादी से अविरुद्ध कभी नहीं हो सकता ।

विचार विषयों को देख लीजिये निश्चय होगा सो महाराज निश्चय के पलटे में तो और भी भ्रान्ति में पड़ गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आप ने संहिता को माननीय मानकर ब्राह्मण का क्यों परित्याग किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आप ने वेद के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है ॥

स्वा॰ यह सच है कि जो अविद्वान् हो कर विद्वत्ता का अभिमान करे वह अपनी अयोग्यता से छोड़ कर दुःख क्यों न पावे ॥ मैं ने वेदों को स्वतःप्रमाण मानने और ब्राह्मणों को परतःप्रमाण मानने में कारण इस भ्रमोच्छेदन के इसी पृष्ठ में आगे लिखे हैं। क्या बांचते समय अकस्मात् बुद्धि और आखें अन्धकारावृत हो गये थे परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इस से जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मणग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मणग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सब को माननीय है।

रा॰ तस्माद्यज्ञात् अजायत अर्थात् उस यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पंक्ति २९ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण दे कर यह सिद्ध कर ते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर।

स्वा॰ जो राजा जी कुछ भी संस्कृत पढ़े होते तो सन्निपाती के सदृश चेष्टा करके भ्रम जाल में न पड़ते क्योंकि तच्छब्द सर्वत्र पूर्व परामर्शक होता है इसी से मैंने (सहस्रशीर्षा पुरुषः)—यहां से लेके (ग्राम्याश्च ये) यहां तक जो छः मन्त्रों से प्रतिपादित निमित्त कारण परमात्मा पूर्वोक्त है उस का आमर्ष अर्थात् अनुवर्षण करके अन्वित किया है देखो इसी के आगे भूमिका के पृष्ठ ९ पंक्ति १७ ॥ तस्माद्यज्ञात्स॰ तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादि लक्षणात्पूर्णात्पुरुषात् सर्वहुतात् सर्वपूज्यात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम्। यह सर्वहुत और यज्ञविशेषण पूर्णपुरुष के हैं (तस्मात्) अर्थात् जो सब के पूज्य सर्वोपास्य सर्वशक्तिमान् पुरुष परमात्मा है उस से चारों वेद प्रकाशित हुए हैं इत्यादि से यहां वेदों ही के प्रमाण से चार वेदों को स्वतः प्रमाण से सिद्ध किया है यद्यपि यहां यज्ञ शब्द भी पूर्णपरमात्मा का विशेषण है तथापि जैसा मैं ने अर्थ किया है वैसा ब्राह्मण में भी है इस साक्षी के लिये (यज्ञो वै विष्णुः) यह

वचन लिखा है और जो ब्राह्मण में मूल से विरुद्ध अर्थ होता तो मैं उसका वचन साची के अर्थ कभी न लिखता जो इस प्रकार से पद, वाक्य, प्रकरण, और ग्रन्थ की साची आकांक्षा योग्यता आसक्ति और तात्पर्यार्थ को पढ़ी राजा जी और स्वामी विशुद्धानन्द जी जानते वा किसी पूर्ण विद्वान् की सेवा करके वाक्य और प्रकरण के शब्दार्थ सम्बन्धों के जानने में तन मन धन लगा के अत्यन्त पुरुषार्थ से पढ़ते तो यथावत् क्यों न जान लेते * ॥

(रा० पृष्ठों को कुछ उलट पलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है) आप पृष्ठ ८१ पंक्ति ३ में लिखते हैं कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण-ग्रन्थों का नाम वेद है पृष्ठ ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ ५३ में लिखते हैं चौथा शब्दप्रमाण आप्तों के उपदेश पांचवां ऐतिह्य सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश तो आप के निकट कात्यायन ऋषि आप्त और सत्य-वादी विद्वान् नहीं थे) † ॥

स्वा० । इस का प्रत्युत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के पृष्ठ ८० पंक्ति २८ से लेके पृष्ठ ८८ अठासी तक में लिख रहा है जो चाहे सो देख लेवे और जो वहां (एवं तेनानुक्तत्वात्) इस वचन का यही अभिप्राय है कि (मन्त्रब्राह्मण-योर्वेदनामधेयम्) यह वचन कात्यायन ऋषि का नहीं है किन्तु किसी धूर्तराट् ने कात्यायन ऋषि के नाम से बना कर प्रसिद्ध कर दिया है जो कात्यायन ऋषि का कहा होता तो सब ऋषियों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध न होता ‡ क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते हैं वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते जो न कभी आप्त मानते हो तो पाणिनि आदि आप्तों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध कात्या-यन ऋषि क्यों लिखते और जो कहो कि हम इस वचन को कात्यायन का ही मानेंगे तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि आप पाणिनि आदि अनेक ऋषियों के लेख का तिरस्कार कर एक को आप्त कैसे मान सकते हो और जो उन को भी आप्त मानते हो तो मन्त्रसंहिता ही वेद है उन के इस वचन को मान कर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेदसंज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते क्योंकि एक विषय में परस्पर विरोधी दो वचन सत्य कभी नहीं हो सकते और जो सैकड़ह

* प्रसिद्ध है कि जो कौड़ी देके पढ़ते हैं वे पदार्थों को यथावत् कभी नहीं जान सकते।

† वे तो आप्त विद्वान् थे परंतु जिस ने उन के नाम से वचन रच कर प्रसिद्ध किया है वह तो अनाप्त अविद्वान् ही था।

‡ हजारह आप्तों का एक अविरुद्ध मत होता है मूर्ख दो का भी एकमत होना कठिन है।

आप्त ऋषियों को छोड़ कर एक ही को आप्त मान कर सन्तुष्ट रहता है वह कभी विद्वान् नहीं कहा जा सकता ॥

रा० आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथब्राह्मण के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वह वेद है ॥

स्वा० ब्राह्मणों में जमदग्नि आदि देहधारियों का नाम यों है कि जहां २ ब्राह्मणग्रन्थों में उन की कथा लिखी है वहां २ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उन का भी लिखा है इस लिये वहां देहधारी का ग्रहण करना योग्य है और जहां मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं होसकती वहां इतिहास लिखने का भी सम्भव नहीं होसकता जो वेदों में इतिहास होते तो वेदादि और सब से प्राचीन नहीं हो सकते क्योंकि जिस का इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात् होता है जब कि वेदों में (त्र्यायुषं जमदग्नेः०) इत्यादि मंत्रों की व्याख्या पदार्थविद्यायुक्त होनी ही उचित है इस से उन में इतिहास का होना सर्वथा असम्भव है जिस लिये जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है वैसा ही ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है इस लिये यह मैंने अपने किये अर्थों के सत्य होने के लिये साक्ष्यर्थमात्र लिखा है। राजा जी जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रम जाल में फस कर दुःखित न होते ॥

रा० उसमें भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहासपुराणादि संज्ञा है ? अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उन का संज्ञी वा संज्ञा है ? ॥

स्वा० इस का उत्तर यह है कि एक ईशावास्य उपनिषद् तो यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय होने से वेद है और केन से ले के बृहदारण्यपर्यन्त ९ नव उपनिषद् ब्राह्मणान्तर्गत होने से उन की भी इतिहासादि संज्ञा ब्राह्मणानीतिहासान्० इस पूर्वोक्त वचन से है इस से (एवं वाअरे०) इस वचन में निमित्तकारण कार्यसम्बन्ध होने से संज्ञा संज्ञी सम्बन्ध नहीं घट सकता परन्तु राजा साहेब के सदृश अविद्वान् तो (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) ऐसा लिखने वा कहने में कुछ भी भययुक्त वा लज्जावान् नहीं होते * ॥

* विद्या वृद्धों ही को अन्यथा कहने और लिखने में शर्म वा भय होता है अविद्यायुक्त वालकों को नहीं।

रा० आप लिखते हैं कि ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं यदि आप इतना और मानलें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है ॥

स्वा० अविद्वान् को कभी विद्या रहस्य के समझने की योग्यता नहीं हो सकती क्या ऐसा कोई विद्वान् भी सिद्ध कर सकता है कि व्याख्या के अनुकूल होने से मूल का प्रमाण और प्रतिकूल होने से अप्रमाण और व्याख्या के मूल से प्रतिकूल होने से प्रमाण और अनुकूल होने से अप्रमाण होवे इस लिये मन्त्रभाग मूल होने से ब्राह्मणग्रन्थों से अनुकूल वा प्रतिकूल हो तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतःप्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकूल हो तो प्रमाण हो कर माननीय होने के कारण परतः प्रमाण हैं। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र संहिताओं के मन्त्रों को प्रतीक धर २ के पद वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है इस लिये मन्त्रभाग मूल व्याख्येय और ब्राह्मण ग्रन्थ व्याख्या है ॥

रा० आप लिखते हैं तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते । इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं जो परा उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरवट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें किमधिकमित्यलम् ।

स्वा० यहां तक आप का जो अटपटांग लेख है उस को कौन शुद्ध कर सकता है क्योंकि इसी भूमिका के पृष्ठ ४२ पंक्ति ३ में। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति। इस उपनिषद् के वचन ने आप के सीधे २ अर्थ को टेढ़ा २ कर दिया देखो यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता जिस का अभ्यास सब वेद करते हैं उस ब्रह्म का उपदेश मैं तुझ से करता हूं तू सुन कर धारण कर जब ऐसा है तो वेदों अर्थात् मन्त्रभाग में परा विद्या क्यों नहीं । देखो तमीशानं इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद । परीत्य भूतानि इत्यादि और ईशावास्य इत्यारभ्य ओं खं ब्रह्म पर्यन्त मन्त्रयुक्त ४० चालीसवां अध्याय मन्त्र युजुर्वेद। दधन्वेवायदीमनुवोचद्ब्रह्मेति वेरुत्तत् । इत्यादि मन्त्र सामवेद महद्यक्षं इत्यादि मन्त्र अथर्ववेद में हैं जब वेदों में हजारह मन्त्र ब्रह्म के प्रतिपादक हैं जिन में से थोड़े मन्त्रों का अर्थ भी मैंने भूमिका पृष्ठ ४३ पंक्ति २६ से लेके ३० पंक्ति की समाप्ति तक लिख रक्खा है जिस को देखना हो देख लेवे भला इतना भी राजा जी को बोध नहीं है कि जो वेदों में परा विद्या न होती तो केन आदि

उपनिषदों में कहां से आती । मूलं नास्ति कुतः शाखाः । क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदों में अपनी स्वरूप विद्या का प्रकाश न करता तो किसी ऋषि मुनि का सामर्थ्य ब्रह्मविद्या के कहने में कभी हो सकता था? क्योंकि कारण के विना कार्य होना सर्वथा असंभव है जो केन आदि नव उपनिषदों को पराविद्या में मानें गे तो इन से भिन्न आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद अर्थवेद और मीमांसादि छः शास्त्र आदि परा विद्या में क्यों नहीं जब न इस वचन में उपनिषद् और न किसी अन्य ग्रंथ का नाम लिखा है तो कोई उन का ग्रहण कैसे कर सकता है भला कोई राजा जी से पूछे गा कि आप ने (यया तदक्षरमधिगम्यते सा पराविद्यास्ति) इस वाक्य से कौन से ग्रन्थों का नाम निश्चित किया है क्या (यया) इस पद से कोई विशेष ग्रन्थ भी आ सकता है और जो मैं ने वेदों में परा और अपरा विद्या लिखी है उस को कोई विपरीत भी कर सकता है कभी नहीं इस लिये सब मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजा जी संस्कृत विद्या के वेदादि ग्रन्थों को न पढ़ कर उन्हों में प्रश्नोत्तर किया चाहते और जैसी स्वामी विशुद्धानन्द जी नें विना सोचें समझे सम्मति कर दी है वैसे साहस न करना चाहिये किन्तु उस २ विद्या में योग्य हो के किसी से विचारार्थ प्रवृत्त होना चाहिये ॥

प्रश्न । आप ने अपने दूसरे पत्र में राजा जी को लिख कर प्रश्न करने और उत्तर समझने में अयोग्य जानकर लिख के उत्तर देना चाहा न था फिर अब क्यों लिख के उत्तर देते हो ? ॥

उत्तर । जो राजा जी स्वामि विशुद्धानन्द जी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उन को तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं ॥

प्र० इस संवाद में आप प्रतिपक्षी राजा जी को समझते हो वा स्वामी विशुद्धानन्द जी को ? ॥

उ० स्वामी विशुद्धानन्द जी को क्योंकि राजा जी तो विचारे संस्कृत विद्या पढ़े ही नहीं उन के सामने मेरा लेख ऐसा होवे कि जैसा बधिर के सामनें अत्यन्त निपुण गाने वाले का वीणा आदि बजाना और षड्जादि स्वरों का यथायोग्य आलाप करना होता है ॥

प्र० जो तुम पक्षी राजा जी को छोड़ कर स्वामी विशुद्धानन्द जी को आगें धरते हो सो यह न्याय की बात नहीं है ? ॥

उ० यह मुझ वा किसी को योग्यता नहीं है कि संस्कृत में कुछ योग्य विद्वान् को छोड़ कर अयोग्य के साथ संवाद चलावे न राजा जी को योग्य है कि अपने साक्षी को छोड़ें और स्वामीविशुद्धानन्द जी को भी योग्य है कि अपने शरणागत आये राजा जी की रक्षा से विमुख न हो बैठें *

प्र० स्वामीविशुद्धानन्द जी वा बालशास्त्री जी आदि काशी के सब विद्वान् और बुद्धिमान् मिल कर राजा जी का पक्ष ले कर आप से शास्त्रार्थ वा लेख करें गे तो आप को बड़ा कठिन पड़े गा ? ॥

उ० मैं परमेश्वर की साक्षी से सत्य कहता हूं कि जो ऐसा वे करें तो मैं अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सब को विदित करता हूं कि यह बात कल होती हो तो आज ही होवे जो ऐसी इच्छा मेरी न होती तो मैं काशी में विज्ञापनपत्र क्यों लगवाता और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी को प्रतिपक्षी स्वीकार क्यों करता ॥

प्र० वे हैं बहुत और आप अकेले हो कैसे संवाद कर सको गे ? ॥

उ० इस के होने में कुछ असम्भव नहीं क्यों कि जब सब काशी और अन्यत्र के विद्वान् और बुद्धिमान् लोग अपना अभिप्राय पत्रस्थ कर वा सन्मुख जा के स्वामी विशुद्धानन्द जी वा बालशास्त्री जी को विदित कराते जायं गे और वे उन लेख वा वचनों को देख सुन उन में से इष्ट को ले मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा इन दो बातों में से जिस में उन को प्रसन्नता हो ग्रहण करके शास्त्रार्थ करें उसी बात में मैं भी उन से शास्त्रार्थ करने में उद्यत हूं परन्तु जैसे मैं इस पुस्तक पर अपना हस्ताक्षर प्रसिद्ध करता हूं वैसे वे भी करें तो ठीक है अन्यथा नहीं ॥

प्र० सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करने में अच्छा हो गा वा पत्रद्वारा ? ॥

उ० सर्वोत्तम तो यह है जो मैं और वे सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करें तो शीघ्र सत्य वा झूठ का सिद्धान्त हो सकता है अर्थात् १ एक महीने से ले के छः महीने तक सब बातों का निर्णय हो सकता है और दूर २ रह कर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करने में ३६ छत्तीस वर्षों में भी पूरा होना कठिन है परन्तु जिस पक्ष में वे प्रसन्न हों उसी में मैं भी प्रसन्न हूं ॥

प्र० इस शास्त्रार्थ के होने और न होने का क्या फल हो गा ।

* यह धार्मिक विद्वानों का काम नहीं है कि जिस को शरणागत लेवें उसे छोड़ कर विश्वासघात कर बैठें ।

उ० जो अविरोध होने से एक मत हो कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सब को परमानन्द होना और न होने पर जो परस्पर विरुद्ध मिथ्या मत में वर्त्तमान मनुष्यों के अधर्म अनर्थ कुकाम और बन्ध के न छूट ने से उन के दुःखों का न छूटना फल है ॥

प्र० शास्त्रार्थ हुए पर भी हठ से आप वा वे विरुद्ध मत न छोड़ें तो छुड़ा ने का क्या उपाय है ? ।

उ० शास्त्रार्थ से पूर्व में और वे जिस का पक्ष झूठा हो उस के छोड़ने और जिस का सत्य हो उस के स्वीकार करने के लिये प्रतिज्ञा का पक्के कागज़ पर लेख हो कर रजष्टरी कराकर एक दूसरे को अपने २ पत्र को देने से सम्भव है कि आप अपना २ हठ छोड़ देवें क्योंकि जो न छोड़े गा तो राजा अपनी व्यवस्था से हठ को छुड़ा सकता है ।

प्र० जब आप काशी में सबदिन निवास नहीं करते और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी वहीं बसते हैं तो सन्मुख में शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है?।

उ० मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि जब वे सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करना स्वीकार करें गे और इस को सत्य समझलूंगा तब जहां हूंगा वहांसे चलके काशी में उचित समय पर पहुंचूं गा कि जिस में उन को परदेशयात्रा का क्लेश और धन-व्यय भी न करना पड़ेगा पुनः वहां यथावत् शास्त्रार्थ हो कर सत्यासत्य निर्णय के पश्चात् सब का उपकार भी सिद्ध होगा क्या यह छोटा लाभ है ।

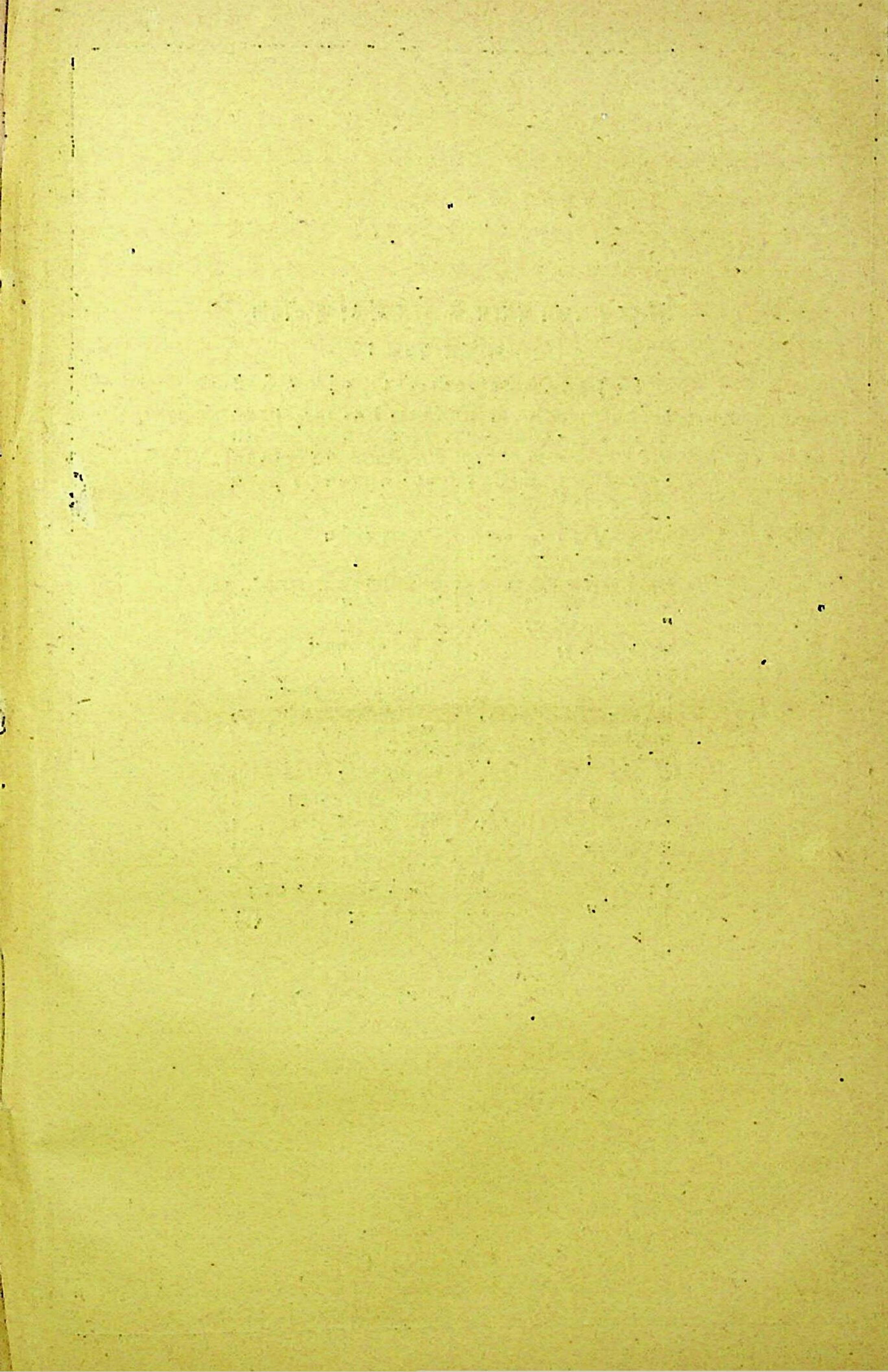
प्र० जब आप उन से शास्त्रार्थ करके अपना मत सिद्ध किया चाहते और वे नहीं किया चाहते हैं इस का क्या कारण है ? ।

उ० विदित होता है कि वे अपने मन में जानते हैं कि शास्त्रार्थ करने से हम अपने मत को सिद्ध न कर सकेंगे वा सं० १९२६ के शास्त्रार्थ को देख घबराहट होगी कि दूर ही दूर से ढोल बजाना अच्छा है जो उन को यह निश्चय होता कि हमारा वेदानुसार और स्वामी जी का मत वेदविरुद्ध है तो शास्त्रार्थ किये विना कभी नहीं रहते अथवा जो और कुछ कारण हो तो शास्त्रार्थ करने में क्यों विलम्ब करते हैं आज से पीछे जो कोई पुराण वा तन्त्र आदि मत वाले मुझसे विरुद्धपक्ष को ले कर शास्त्रार्थ किया चाहें वा लिख के प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी के द्वारा ही करें इस से अन्यथा जो करें गे तो मैं उन का मान्य कभी न करूंगा, हां सन्मुख आ के तो वे स्वयं भी पूछ सकते हैं इस से स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी ऐसा न

समझें कि हम वेदों में विद्वान् वा सर्वोत्तम पण्डित हैं और कोई अन्य मनुष्य भी ऐसा निश्चय न कर लेवे कि इन से अधिक पण्डित आर्य्यावर्त्त में दूसरा कोई भी नहीं है हां ऐसा निश्चय करना ठीक है कि काशी में इस समय आधुनिक ग्रन्था-भ्यास कर्त्ता संन्यासियों में स्वामी विशुद्धानन्द जी और गृहस्थों में बालशास्त्री जी कुछ विशिष्ट विद्वान् हैं मैं ने तो संवाद में केवल अनवस्था दोष परिहारार्थ इन दोनों को सन्मुख आर्य्यावर्त्तीय पण्डितों में माने हैं अनुमान है कि उन को अन्य भी मनुष्य ऐसा मानते होंगे इस से अन्य प्रयोजन कुछ भी नहीं सर्वशक्तिमान् सर्वा-न्तर्यामी परमेश्वर कृपा करके स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी को निर्भय निःशङ्क करे कि जिस से वे मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा पाषाणादिमूर्त्ति पूजादिमंडन विषयों में शास्त्रार्थ करने में दृढोत्साहित हों जैसे कि मैं उन के खण्डन में दृढोत्साहित हूं ॥

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले ।
द्वितीयायाङ्गुरौवारे भ्रमोच्छेदोह्यलङ्कृतः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामि-
दयानन्दसरस्वतीनिर्मित आर्यभाषाविभूषितो
भ्रमोच्छेदनोऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिमगमत् ॥



वैदिकयंत्रालय प्रयाग के पुस्तकोंका सूचीपत्र

संक्षिप्तनियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें । (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर१०) रु० १००)वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा कमीशन की पुस्तकअधिक भेजी जायंगी (३)डाकमहसूल किसी से न लियाजायगा। (४) २)या इस से अधिक की पुस्तकरजिष्टरी कर भेजी जायंगी (५) मूल्य नीचे लिखेपत्तेसे भेजें

ऋग्वेदभाष्य अं १--८९ २८॥/)
यजुर्वेदभाष्यअं १-८९ २९॥/)
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका
  विना जिल्द की ५।/)
  " जिल्द की ६)
वर्णोच्चारणशिक्षा /)
सन्धिविषय ॥)
नामिक ॥)
कारकीय ।/)
सामासिक ॥)
स्त्रैणताद्धित १)
अव्ययार्थ /)
आख्यातिक २।)
सौवर /)
पारिभाषिक ।)
धातुपाठ ॥)
गणपाठ ।/)
उणादिकोष ॥)
निघण्टु ॥)
अष्टाध्यायी मूल ।/)

संस्कृतवाक्यप्रबोध ।)
व्यवहारभानु ।)
भ्रमोच्छेदन /)
अनुभ्रमोच्छेदन /)
मेलाचान्दापुर /)
आर्योद्देश्यरत्नमाला /)॥
गोकरुणानिधि /)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन
  संस्कृतगुजराती /)
  उक्त गुजराती /)
शास्त्रार्थकाशी /)
आर्याभिविनय ।/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण /)
भ्रान्तिनिवारण /)॥
पञ्चमहायज्ञविधि ।)
आर्य्यसमाजनियमोपनियम)।
  " (डाकव्यय अलग)
सत्यार्थप्रकाश २।)

प्रबन्धकर्त्ता (मैनेजर)

ओं खम्ब्रह्म

काशीशास्त्रार्थः ॥

—०:※:※:※:०—

अर्थात्

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और
काशी के स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि
पण्डितों के बीच दुर्गाकुण्ड के समीप
आनन्द बाग में हुआ था सो

तीसरी बार

बाबू शिवदयाल सिंह के प्रबन्ध से वैदिकयन्त्रालय

प्रयाग में छप के प्रकाशित हुआ ॥

———o———

संवत् १९४६ भाद्रपद शु० १५

तीसरी बार १००० पुस्तक छपे।

मूल्य ८)　　　　　डाकव्यय ।)॥



भूमिका

—०:*:०—

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत्१९२६ मि० कार्त्तिक सुदि १२ मङ्गल वार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वती" जी का काशीस्थ "स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती" तथा "बालशास्त्री" आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं इस संवाद में स्वामी जी का पक्ष पाषाणमूर्त्तिपूजनादिखण्डनविषय और काशीवासी पण्डित जनों का मण्डन विषय था उन को वेदप्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है ऐसे हुए पश्चात् भी जिस २ ग्रन्थान्तर में से जो२ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषण वाची है इस में स्वामी जी का पक्ष विशेषण वाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था। इस में बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामी जी ने विशेषणवाची पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके ! सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है ?

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामी जी ने उस को विशेषण वाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्हीं ने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सन्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामी जी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें? और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें क्या स्वामी जी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ! और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उन को रोकने वाला न हुआ ! और क्या एक दम उठ के चुप होके बग़ीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र भूठा हल्ला करना

धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ? यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्हों ने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने में छपा कर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उन की बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामी जी उन के कर्मों पर ध्यान न दे कर वा उपेक्षा कर के पुनरपि उन को वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं और उक्त २६ के संवत् से ले के अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशी जी में आ के सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादिमूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो इस पर भी कुछ नहीं करते ! यह भी कितने निश्चय करने की बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख हो के अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामी जी के सामने न होते ! इस से यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामी जी की बात है वही ठीक है और देखो स्वामी जी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिस में सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे सत्य ठहरती है। उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था उस पर स्वामी जी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्म्मा ने छपवा कर कि जिस में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो २ स्वामी जी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिये कि स्वामी जी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं। और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि स्वामी जी ने वेद नाम से कहा है वहां २ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं स्वामी जी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्र संहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण भी हो सकते हैं और मन्त्र संहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतः प्रमाण हैं॥

प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय ।

ओ३म्

अथ काशीस्थशास्त्रार्थः ॥

—·:*:·—

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु। एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गंगातटे विहरति स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपतवैष्णवादिसंप्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति नाचरणीयं कदाचित् कुत एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्त्येवंहरद्वारमारभ्यगंगातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वतीस्वामिखंडनं कुर्वन्सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः। बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्ताकानां मध्ये विचारः कृतः परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिविधानं न लब्धं प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहोमहानस्ति ततः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्तव्यमिति तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति पुनः कार्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे १९२६ मंगलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः। तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्। वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा तदा महाराजेनोक्तम्। वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः संति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकै-

विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवत्यस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि तदा परिडतरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः परिडतो वदतु नतु युगपदिति तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तं युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति । तदा ताराचरणेनोक्तम् । सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोस्तीति तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् । वेदे पाषाणादिमूर्त्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम् । नास्ति चेद्वद नास्तीति । तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम् । वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परंतु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात् तं प्रति किं वदेत्तदा स्वामिनोक्तम् । अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योस्ति तस्मात्स एवादौ कर्तव्यः कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः । मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि संति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति । तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम् । मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति । स्वामिनोक्तम् । यद्वै किंचनमनुरवदत्तद्भेषजं भेषजताया इति सामवेदे * तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् । रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति । तदा स्वामिनोक्तमस्य प्रकरणांतरस्योपरि विचारो न कर्तव्य इति पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं वदैव त्वं यदि जानासीति । तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणांतरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् । कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति । तदा विशुद्धानंदस्वामिनोक्तम् । कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरेचेति । तदा स्वामिनोक्तम् । भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं

* इदं पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतोनेदं स्वामिनोमतमितिवेद्यम ।

मम सर्वं कण्ठस्थं वर्तत इति तदा स्वामिनोक्तम् । धर्मस्य किं स्वरूपमिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति । स्वामिनोक्तम् इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यस्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् । चोदनालक्षणोर्थो धर्म इति जैमिनिसूत्रमिति * तदा स्वामिनोक्तम् चोदना का चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् । तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् । तदा स्वामिनोक्तमस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किंच धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमेकमेव लक्षणं धर्मस्येति । तदा स्वामिनोक्तम् किंच तदिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् । तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् । धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् कानि तानि लक्षणानीति । तदा स्वामिनोक्तम् । धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणमिति । मनुस्मृतेः श्लोकोस्ति † तदा बालशास्त्रिणोक्तम् । अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति । तदा दयानन्दस्वामिनोक्तं त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति । तदा बालशास्त्रिणा किमपिनोक्तं तदा बहुभिर्युगपत्पृष्टं प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति । तदा स्वामिनोक्तम् प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति तदा तैरुक्तं क्वास्तीति । तदा स्वामिनोक्तम् सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति तदा तैरुक्तं किंच तद्वचनमिति तदा स्वामिनोक्तम् । देवतायतनानि कंपंते दैवतप्रतिमा

---

* इदन्तु सूत्रमस्ति,नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिस्सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति वेद्यम् ।

† अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम् ।

हसन्तीत्यादीति। तदा तैरुक्तम्। प्रतिमाशब्दस्तु वेदे * वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति तदा स्वामिनोक्तम् प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ॥ तदातैरुक्तम् यस्मिन् प्रकरणेऽयं मंत्रोस्ति तस्य कोऽर्थ इति तदा स्वामिनोक्तम् अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिंद्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमंत्रा लिखिता एतेषां मध्यात् प्रतिमंत्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमा शब्दोस्ति स मंत्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शांतिरुक्ता ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यांतरिक्षस्य शांतिरुक्ता ततो दिवश्च शांतिविधानमुक्तम्। ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति। तदा बालशास्त्रिणोक्तम्। यस्यां यस्यां दिशि या२ देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शांतिकरणेन दृष्टविघ्नोपशांतिर्भवतीति तदा स्वामिनोक्तमिदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोस्तीति। तदा बालशास्त्रिणोक्तमिन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति। तदा स्वामिनोक्तमिन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवंति न तु दर्शयितॄणि परंतु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र सशब्दवाच्यः कोस्तीति। तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्। तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तमन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति। तदा स्वामिनोक्तम्भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किं दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मंत्रस्यार्थं वदेति तदा शिवसहायेन मौनं कृतम्। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् वेदाः कस्माज्जाता

* अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रंथे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम्।

इति । तदा स्वामिनोक्तम् वेदा ईश्वराज्जाता इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् । कस्मादीश्वराज्जाताः किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति । तदा स्वामिनोक्तम् । ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमीश्वरस्त्वेक एव परंतु वेदाः कीदृग् लक्षणादीश्वराज्जाता इति तदा स्वामिनोक्तम् । सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् कोऽस्ति सम्बन्धः किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति । तदा स्वामिनोक्तं कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं मनो ब्रह्मेत्युपासीत । आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति । तदा स्वामिनोक्तं यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु * दृश्यते तथा पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति । तदा माधवाचार्येणोक्तम् । उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयञ्चेति । मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति तदा स्वामिनोक्तं वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति तदा माधवाचार्य्येणोक्तम् । पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति । तदा स्वामिनोक्तम् पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ततो माधवाचार्य्येणोक्तं पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति । तदा स्वामिनोक्तं पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद्ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति कुतः पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति बोध्यम् ।

सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीत्यत्रबृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते नवेति तदा स्वामिनोक्तं अस्त्येव प्रामाण्यमिति तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति । तदा स्वामिनोक्तं सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति तदा स्वामिनोक्तम् । पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य द्वे पत्रे * निस्सारितेऽत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तेति । तदा स्वामिनोक्तम् । कीदृशमास्ति वचनं पठ्यतामिति तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति । ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति । तदा स्वामिनोक्तम् पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति । तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति । तदा स्वामिनोक्तम् । नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्य चिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् । इतिहासशब्दव्यवधानेन कथम्विशेषणं भवेदिति । तदा स्वामिनोक्तम् अयं नियमोस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति । अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो नेति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति व्याकरणेपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणम्भवेन्न दूरस्थमिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति । तदा स्वामिनोक्तमन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणन्तद्यथा

* इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ॥

इतिहास पुराणः पञ्चमो वेदानां वेद इत्युक्तम् तदा वामनाचार्य्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् तदा दयनान्दस्वामिनोक्तं * यदि वेदेष्वयम्पाठो न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति तदा स्वामिनोक्तम् इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता नवेति। तदाबालशास्त्रिणोक्तमेकस्मिन् सूत्रेसंज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणापहासः कृतइति। तदा स्वामिनोक्तम्। कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति। तदा माधवाचार्य्येण द्वे पत्रे वेदस्य † निस्सार्य्य सर्वेषां पंडितानाम्मध्ये प्राक्षिप्ते अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तं तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे द्वे दत्ते तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्च क्षणमात्रं विचारं कृतवान् तत्रेदं वचनं वर्त्तते। दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः। इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति। अस्यायमर्थः पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्या वेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या कुत एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं नचोपनिषदाम्। तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् पुराणविद्यावेदोपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्येनवीनाब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति यदिह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेतिक्वाप्येवं वेदेषु ‡ पाठोनास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां

---

* इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्य-सूत्रस्य भवतामिति च

† इदमपि तन्मतमेव नैवस्वामिन इति ‡ इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिनइति

ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बोभवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वागताः । एवं च तेषामयमाशयः कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयोभविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जातइति । अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्तव्यः कस्य जयोजातः कस्यपराजयश्चेति । दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निस्सृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् । पाषाणादिमूर्त्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तं येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुंड्रोर्ध्वपुंड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोस्ति तेषामेव पराजयो जात इतितथ्यमेवेति ॥

॥ भावार्थ ॥

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं उन्हों ने संपूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि पाषाणादि मूर्त्तिपूजन शैव शाक्त गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष तुलसी माला त्रिपुंड्रादिधारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है इस से ये सब मिथ्या ही हैं। कदापि इन का आचरण न करना चाहिये क्योंकि वेद विरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है।

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरद्वार से ले कर सर्वत्र इस का खंडन करते हुए काशी में आ के दुर्गाकुंड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए उन के आने की धूम मची बहुत से पंडितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरंभ किया परन्तु पाषाणादिमूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला बहुधा करके इस के पूजन में आग्रह बहुतों को है॥

इस से काशीराज महाराज ने बहुत से पंडितों को बुला कर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके करना चाहिये।

निदान कार्त्तिक सुदि १२ सं०१९ २६ मंगल वार को महाराजा काशीनरेश बहुत से पंडितों को साथ ले कर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं।

महाराज ने कहा कि वेद संपूर्ण पंडितों को कंठस्थ हैं पुस्तकों का क्या प्रयोजन है तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि पुस्तकों के विना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक २ नहीं हो सकता भला पुस्तक तो नहीं आए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा॥

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हो हम लोग उस का मण्डन करैं गे॥

पुनः स्वामी जी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पंडित मुझ से संवाद करे।

पंडित रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने भी यह नियम किया कि स्वामी जी से एक २ पंडित विचार करे।

पुनः सब से पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार के हेतु सन्मुख प्रवृत्त हुए स्वामी जी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं उन्हों ने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण ही है* इस पर स्वामी जी ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादिमूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं यदि हो तो दिखाइये और जो नहीं हो तो कहिये कि नहीं है॥

पण्डित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उस के प्रति क्या कहना चाहिये इस पर स्वामी जी ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा वेदों का विचार मुख्य है इस निमित्त से इस का विचार पहिलेही करना चाहिये क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य हैं और मनुस्मृति आदि भी वेद मूलक हैं इस से इन का भी प्रमाण है क्योंकि जो २ वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उन का प्रमाण नहीं होता॥

पण्डित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है॥ † इस पर स्वामी जी ने कहा कि जो२ मनु जी ने कहा है सो २ औषधों का भी औषध है ऐसा साम वेद के ब्राह्मण में कहा है॥

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान प्रतिपाद्य प्रधान जगत् का कारण नहीं व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है इस पर विचार करना न चाहिये। फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो इस पर स्वामी जी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी इस से न कहा जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देख कर कहा जा सकता है। तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए। इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या आप को सब कण्ठाग्र है।

* इस से यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।

† यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हम को कण्ठस्थ है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म्म कहलाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है इस का क्या प्रमाण श्रुति स्मृति कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि जो चोदनालक्षणोऽर्थः है सो धर्म्म कहलाता है यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामी जी ने कहा कि यह तो सूत्र है यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहनाचाहिये जहां प्रेरणा होती है ।

जब इस में विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा तब स्वामी जी ने कहा कि अच्छा आप ने धर्म्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म्म के कितने लक्षण हैं कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वह कैसा है तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा । तब स्वामी जी ने कहा कि धर्म के तो दश लक्षण हैं आप एक ही क्यों कहते हैं तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन लक्षण हैं ।

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि । धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ और विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १० ये दश धर्म के लक्षण हैं फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं । तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है इस पर स्वामी जी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया । फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है इस पर स्वामी जी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह है देवता के स्थान कंपायमान और प्रतिमा हसती हैं इत्यादि * फिर उन लोगों ने कहा प्रतिमा शब्द तो

* यह वेद वचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।

वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादिमूर्ति पूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है इस लिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इस का क्या अर्थ है ।

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मंत्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह अर्थ है अथ अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये इन्द्र इत्यादि सब मूल मंत्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं इन में से प्रति मंत्र करके तीन २ हजार आहुति करनी चाहिये इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच २ आहुति करनी चाहिये ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है इस क्रम करके अद्भुतशान्ति का विधान किया है जिस मंत्र में प्रतिमा शब्द है सो मंत्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है सो ऐसा है कि जब विघ्न कर्त्ता देवता पूर्व दिशा में वर्तमान होवे इत्यादि मंत्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कह कर फिर दक्षिण दिशा पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा इस के अनन्तर भूमि की शान्ति कह कर मृत्यु लोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कह के इस के अनन्तर स्वर्गलोक फिर परम स्वर्ग अर्थात् ब्रह्म लोक की शान्ति कही है इस पर सब चुप रहे फिर बाल शास्त्री ने कहा कि जिस २ दिशा में जो २ देवता है उस २ की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है तब बाल शास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्तेऽथेत्यत्र इत्यादि मंत्रों में स शब्द का वाच्यार्थ क्या है तब बाल शास्त्री जी ने कुछ न कहा फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन शान्ति करने से फल इस मंत्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि आप ने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये तब शिवसहाय जी चुप हो रहे फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि वेद किस से उत्पन्न हुए हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से क्या न्याय शास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से इत्यादि । इस पर स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर बहुत से हैं । तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण

वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या संबन्ध है क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसंबन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्यसंबन्ध है इत्यादि। इस पर स्वामी जी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्म बुद्धि कर के प्रत्येक उपासना कही हैं वैसे ही शालिग्राम के पूजन का भी ग्रहण करना चाहिये।

इस पर स्वामी जी ने कहा जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों * में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्यों कर इस का ग्रहण हो सकता है।

तब माधवाऽऽचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते संसृजेथामयञ्चेति" इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किस का ग्रहण है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग, और आराम का ग्रहण है। माधवाचार्य्य ने कहा कि इस से पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है इस से कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये।

तब माधवाऽऽचार्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत से जगह वेदों में है परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता क्योंकि पुराण शब्द भूतकाल वाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि (एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति) यह सब जो पठित है इस का प्रमाण है वा नहीं।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि हां प्रमाण है।

* यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते।

फिर विशुद्धानन्द जी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इस का विचार हो।

माधवाचार्य्य ने वेदों के दो पत्रे † निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?।

स्वामी जी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा। ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं।

तब बाल शास्त्री जी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शंका भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि। अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी विशेषण क्या नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है इस से क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है सुनिये। इतिहास पुराणं पंचमो वेदानां वेद इत्यादि में कहा है।

† यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं क्योंकि यह गृह्यसूत्र का पाठ है।

तब वामनाचार्य्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद * में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो होतो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो तब सब चुप ही रहे।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्म संज्ञा करी है वा नहीं।

तब बालशास्त्री जी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है यदि जानते हो तो इसके उदाहरणपूर्वक समाधान कहो।

बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा माधवाचार्य्य ने दो पत्रे वेदों † के निकाल कर सब पंडितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है।

स्वामी जी ने कहा कि पढ़ो इस में किस प्रकार का पाठ है जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी के ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही इस का पाठ कीजिये तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता ऐसा कह के वे पत्रे उठा कर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे ले कर विचार करने लगे इस में अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही स्वामी जी यह उत्तर कहा चाहते थे "कि पुरानी जो विद्या है उसे पुराण विद्या कहते हैं और जो पुराण विद्या वेद है वही पुराण विद्या वेद कहाता है इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा इस लिये यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है औरोंका नहीं पुराणी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है इस से ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी

* यह उन्हीं पंडितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते
† ये पत्रे गृह्य सूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं।

नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि "ब्रह्मवैवर्त्तादि अठारह १८ ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में * कहीं ऐसा पाठ नहीं है इस लिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलंब होता है हम जाते हैं तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय † हुआ परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उन का वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्यों कर उन का पराजय हुआ ? ॥

---

* यह पंडितों के मतानुसार से कहा है यह स्वामी जी का मत नहीं है

† क्या किसी को भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पंडितों का विजय हुआ । किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशिस्थों का नहीं क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उस का विजय क्यों कर न होवे काशीस्थ पंडितों का पुराण और तंत्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजादि है उन का पराजय होना कौन रोक सकता है यह निश्चित है कि असत्य पक्ष वालों का सदा पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ।

अथ सत्यधर्मविचार

—•*•—

अर्थात्

धर्मचर्चाब्रह्मविचार

चांदापुर

स्वामी दयानन्दसरस्वती जी और मौलवी मुहम्मदक़ासम साहब और पादरी स्काट साहब के बीच हुआ था

—*—

प्रयाग

वैदिकयन्त्रालय में मुद्रित हुआ

संवत् १९४७

तृतीय वार १००० मूल्य ८)

डाकव्यय)॥

ओ३म् खम्ब्रह्म

अथ सत्यधर्मविचार ॥

—:-*-:—:*:—:-*-:—

—:मे × ला × चां × दा × पु × र:—

धर्म चर्चा मेला ब्रह्म विचार चांदापुर* कि जिस में बड़े २ विद्वान् † आर्य्यों, ईसाइयों और मुसल्मानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिये इकट्ठे हुए थे सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिस से प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे। सब सज्जनों को किसी मत के क्यों न हों उचित है कि पक्षपात रहित हो कर इस को सुहृदता से देखें।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामी जी के समीप जा कर कहा कि आर्य्य और मुसल्मान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिये किया गया है इस लिये हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़ कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं।

इस के पश्चात् विचार का समय नियत किया गया पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते और यही विज्ञापन में भी छापा गया था। इस पर स्वामी जी ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है जब इस पर वे लोग प्रसन्न न हुए तब मुन्शी इन्द्रमणि जी ने कहा कि स्वामी जी आप निश्चिन्त रहें सच्चा मत एक दिन में प्रगट हो जावेगा। फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सब ने स्वीकार किया॥

---

* यहां यह मेला मुंशी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।

† इस धर्म चर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मुंशी इन्द्रमणि जी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहेब पादरी नौबिल साहेब पादरी पार्कर साहेब और पादरी जांसन साहेब, और मुसल्मानों की ओर से मौलवी मुहम्मद कासम साहेब सैय्यद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे॥

पहिले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े हो कर सब से पहिले कहा:—

प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उस ने हम सब को ऐसे राजप्रबन्ध समय में उत्पन्न किया कि जिस में सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय हो कर मतमतान्तरों का विचार कर सकते हैं। धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे २ सज्जन पुरुष और ऐसे २ विद्वान् मतमतान्तरों के जानने वाले यहां सुशोभित हुए हैं। आशा है कि सब विद्वान् अपने २ मतों की वार्त्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे कि जिन से सत्य और असत्य का निर्णय हो कर मनुष्यों की सत्य मार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी।

इस के पश्चात् जब मुसल्मानों और ईसाइयों की ओर से पांच २ मनुष्य और आर्य्यों की ओर से स्वामी जी और मुन्शी इन्द्रमणि जी दो ही विचार के लिये नियत किये गये तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहियें। इस पर स्वामी जी ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्री जी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा तब स्वामी जी ने उन से तो यह कहा कि आप लोगों को अपनी २ ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है हमारी ओर का कुछ नहीं और पण्डित जी से यह कहा कि आप नहीं जानते ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध करा के आप तमाशा देखना चहते हैं इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डित जी का हाथ पकड़ के उन से कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो इन के कहने से क्या होता है, तिस पर स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इन का भी नाम लिखवा दो नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इन का नाम नहीं लिखा जावे गा, फिर एक मौलवी साहब उठ कर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसे आप को सिवाय फ़िर्क़े सुन्नत जमात के अहल शिया आदि फ़िर्क़ों ने सम्मति करके नहीं बिठलाया और जैसे कि पादरी साहब को रोमन कैथोलिक फ़िरक़ों ने नियत नहीं किया। ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुतसों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुतसों की असम्मति होगी परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़ बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है, मुन्शी इन्द्रमणि जी ने

कहा कि हम सब आर्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं और पण्डित जी भी इन्हीं को मानते हैं जो किसी का मत आर्य लोगों में से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा पंथ नियत करके भले ही बिठला दीजिये गा ।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें । पण्डित जी का नाम लिखना आर्य लोगों ने योग्य न समझा । फिर मौलवी लोग नमाज़ पढ़ने को चले गये और जब लौट कर आये तब उन में से मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब ने कहा कि प्रथम में एक घण्टे तक उन प्रश्नों के सिवाय और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं उस में जो किसी को कुछ शंका होगी तो उस का मैं समाधान करूंगा इस को सब ने स्वीकार किया । मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है—

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि जिस २ समय में जो २ हाकिम हो उसी की सेवा करनी उचित है जैसे कि इस समय जो गवरनर है उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं और जिस की कि आज्ञापालन का समय व्यतीत हो गया न कोई उस की सेवा करता है और न उस की आज्ञा को मानता है और जैसे जब कोई क़ानून व्यर्थ हो जाता है तो उस के अनुसार कोई नहीं चलता परन्तु जो क़ानून उस की जगह नियत किया जाता है उसी के अनुसार सब को चलना होता है तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो २ अवतार और पैग़म्बर पूर्व समय में थे और जो २ पुस्तकें तौरेत ज़बूर बाइबिल उन के समय में उतरी थीं अब उन के अनुसार न चलना चाहिये इस समय के सब से पिछले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब हैं इस लिये उन को पैग़म्बर मानना चाहिये । और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् क़ुरान उन के समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिये और हम श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते क्योंकि वे अपने२ समय में अवतार और पैग़म्बर थे परन्तु इस समय तो हज़रत मुहम्मद साहब का ही हुक्म चलता है दूसरे का नहीं । जो कोई हमारे मज़हब वा क़ुरान शरीफ़ वा हज़रत मुहम्मद साहब को बुरा कहे गा वह मारे जाने के योग्य है ।

पादरी नोबिल साहब

मुहम्मद साहब के पैग़म्बर और क़ुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है क्योंकि क़ुरान में जो२ बातें लिखी हैं सो२ बाइबिल की हैं इस लिये क़ुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता और हज़रत ईसामसीह के अवतार होने में

कुछ सन्देह नहीं क्योंकि उस के व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्य-मार्ग बतलाने वाला था । केवल उस के व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उस ने चिमत्कार भी दिखलाये थे ।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

हम हज़रत ईसा को अवतार तो मानते हैं और बाईबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं परन्तु ईसाइयों ने उस में बहुत कुछ घटत बढ़त कर दी है । इस लिये यह वही मूल नहीं है और जो कि उस का क़ुरान ने खण्डन भी कर दिया है इस लिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही और हमारे हज़रत पैग़म्बर साहब का अवतार सब से पिछला है इस लिये हमारा मत सच्चा है ।

फिर और मौलवियों ने बाईबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता ॥

पादरी नोबिल साहब

जिस मनुष्य ने यह लिखा है वह सत्यवादी था जो उस ने लेखकभूल को प्रसिद्ध कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया और हम लोग सत्य को चाहते हैं असत्य को नहीं इस लिये हमारा मत सत्य है ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

यह तो ठीक कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब कि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज़ में एक बात भी झूठ लिखी हुई विदित हो जावे तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहता और न वह दस्तावेज़ ही अदालत में स्वीकार हो सकती है॥

पादरी नोबिल साहब

क्या क़ुरान में लेखक दोष नहीं हो सकता इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही का खोज करते हैं इस कारण उस लेखकभूल को हम ने स्वीकार कर लिया और तुम्हारे क़ुरान में बहुत घटत बढ़त हुई जिस के प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा, और सूर्तों के प्रमाण दिये ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

आप बड़े सत्य के खोजी हैं ! (मुखबना कर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो ।

पादरी नोविल साहब

हम तीन ईश्वर नहीं मानते वे तीनों एक ही हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थी इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चिमत्कार दिखलाना ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

वाह वाह! एक घर में दो तलवार क्यों कर रह सकती हैं यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है उस ने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं तुम हठ से उस को ईश्वर बनाते हो।

पादरी नोविल साहब

एक आयत अंजील की पढ़ी और कहा कि यह एक आयत है जिस में मसीह ने अपने आप को ईश्वर कहा है और कई एक चिमत्कार भी दिखलाये हैं इस से उस के ईश्वर होने में कोई संदेह नहीं हो सकता ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

जो वह ईश्वर था तो अपने आप को फांसी से क्यों न बचा सका ?।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब

क़ुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है समाचार का नहीं हो सकता सो आप के क़ुरान में समाचारों का खण्डन है पहिले बैतूलमुक़द्दस की ओर शिर नमाते थे फिर काबे की ओर नमाने लगे और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती और तुम्हारे क़ुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ? ऐसी ही बातों के होते २ संध्या हो गई ॥

दूसरे दिन की सभा

प्रातः काल के साढ़े सात बजे सब लोग आये और वे पांच प्रश्न कि जो स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये। वे पांच प्रश्न ये हैं:–

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज़ से किस समय और किस लिये बनाया ?

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इस के पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहिले वह वर्णन करे। तदनन्तर पादरी स्काट साहब ने पहिले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है। परन्तु जब कि सब की सम्मति है तो मैं इस का उत्तर देता हूं

पादरी स्काट साहब

यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज़ से बनाया है परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है क्योंकि पहिले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था उस ने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उस ने कब इस संसार को रचा परन्तु उस का आदि तो है वर्षों की गणना हम को नहीं जान पड़ती और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है इस लिये इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं॥

ईश्वर ने किस लिये इस जगत् को रचा यद्यपि इस का भी उत्तर हम लोग ठीक२ नहीं जान सकते परन्तु इतना हम जानते हैं कि संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है, कि जिस में हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

उस ने अपने शरीर से प्रगट अर्थात् उत्पन्न किया, उस से हम अलग नहीं; जो अलग होते तो उस की प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि हम को रोटी खाने से काम है, न यह कि रोटी कब बनी है।

यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं और हम को अपनी भक्ति के लिये ईश्वर ने रचा है! देखो पृथिवी हमारे लिये है, हम पृथिवी के लिये नहीं, क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं, परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है ऐसे ही जल, वायु, अग्नि, आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिये रचे गये हैं मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है, उस को बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा को दी है, अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिये और इस जगत् को मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचा है॥

स्वामी दयानन्दसरस्वती जी

पहिले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिये किया गया है, और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौनसा मत सत्य है, जौन से को सत्य समझें उसी को अंगीकार करें, इस लिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहे। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह बात झूठ कही, ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवी साहब ने यह बात झूठ कही, ऐसी बातें करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने २ ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें कि जिस से सब लोग प्रीति से मिल कर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे२ वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि यह हारा और मैं जीता ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये। सब प्रकार पक्षपात छोड़ कर सत्यभाषण करना सब को उचित है और एक दूसरे से विरोध वाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है विद्वानों का नहीं मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें ॥

अब मैं इस पहिले प्रश्न का उत्तर कि ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किस लिये रचा है अपनी छोटीसी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं ॥

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिस को अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं रचा है, सो यह ही जगत् का उपादान कारण है जिस का वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है और यह सनातन है, जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है, जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उन के कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है तब कारण से कार्य रचता है। सो जैसा कि यह कार्य जगत् दीखता है, वैसा ही इस का कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिला कर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य हो कर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है उस को इसी कारण से ईश्वर ने रचा है, जब प्रलय करता है तब इस

स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् २ कर देता है क्योंकि जो २ स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आंखों से देखने में नहीं आता तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा परन्तु वह सूक्ष्म हो कर आकाश में ही रहता है, क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदर्शन को कहते हैं अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक २ परमाणु पृथक् २ हो जाते हैं तब उन का दर्शन * नहीं होता फिर जब वे ही परमाणु मिल कर स्थूल द्रव्य होते हैं तब दृष्टि में आते हैं यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायगा, इस की संख्या नहीं कि कितनी बार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और कितनी बार कर सकेगा, इस बात को कोई नहीं कह सकता। अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग नास्ति अर्थात् अभाव से अस्ति अर्थात् भाव मानते हैं और शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं उन का कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंख से देखा है, तो जो उस के पुत्र होता तो बन्ध्या क्यों कहलाती। फिर उस के पुत्र का अभाव होने से उस के पुत्र का विवाह कब हो सकता है, और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती इस में कोई प्रमाण नहीं, क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्यों कर हो सकती है, जैसे कि जो हम लोग अपने २ स्थानों में न होते तो यहां चांदापुर में कभी न आ सकते। देखो शास्त्र में भी लिखा है कि —

नासत आत्मलाभः। न सत आत्महानम् ॥

अर्थात् जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बिना भाव के भाव कभी नहीं हो सकता, क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिस का कारण कोई नहीं,

* जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी हो जाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते २ उस को इतना छोटा कर दें कि फिर उस के टुकड़ होना असम्भव हो जावे तो उस को परमाणु कहते हैं जितनी वस्तु संसार में है वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं और उस के अत्यन्त छोटे २ टुकड़ों को पृथक् २ कर देते हैं तो वे परमाणु कि जिन के इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है सदा किसी न किसी स्वरूप के बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है जब मोम की बत्ती को जलाते है तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती, न जाने कि क्या हो गई; परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती में थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं, उन में के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता।

इस से यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती यह "वदतो व्याघातः" अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है। पहिले किसी वस्तु का अन्यथा भाव कह कर फिर यह कहना कि उस का भाव हो गया पूर्वापर विरोध है। इस को कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि बिना कारण के कोई कार्य्य हो सके, इस लिये अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से वा हुकम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है, इस से यह ही जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है, अन्यथा नहीं ॥

यहां दो प्रकार का विचार स्थित होता है एक यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग, बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट, आदि सब ईश्वर ही बन गया ॥

दूसरा यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है ॥

तो उत्तर यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है—

एक उपादान, कि जिस को ग्रहण करके पदार्थ को बनावें, जैसे मिट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रुई लेकर कपड़ा बनाया जाय।

दूसरा निमित्त, जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है ॥

तीसरा साधारण, जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्‌रूप बनता है, क्योंकि मिट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता, और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मिट्टी से अपने आप बिना कुम्हार घड़ा नहीं बन सकता, इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है। इस लिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है तो उन के कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है इस से ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि जगत् का कारण अनादि है और नाना प्रकार के जगत् को बनाने वाला परमात्मा है, और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं, और स्थूल कार्य्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं, ऐसे माने बिना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता ॥

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष हो गए हैं इस का उत्तर दिया जाता है—

सुनो भाइयो ! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते क्योंकि जब आप लोगों के मतों की कोई अठारह सौ वर्ष से कोई तेरह सौ वर्ष से और कोई पांच सौ वर्ष से उत्पत्ति है तो फिर आप लोगों के मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता और हम आर्य्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई है बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है, इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्य्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से युनान और युनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इस लिये इस का इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता ॥

देखो हम आर्य्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हज़ार चतुर्युगियों का एक ब्राह्म दिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म रात्री होती है अर्थात् जगत् की उत्पत्ति हो के जब तक कि वर्त्तमान होता है उस का नाम ब्राह्म दिन है और प्रलय हो के जब तक हज़ार चतुर्युगीपर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती उस का नाम ब्राह्म रात्री है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो रहा है और इस से पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं—

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, और चाक्षुष ॥ अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि का भोग करने के बाकी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहासों में यथार्थ क्रम से सब बातें लिखी हैं और ज्योतिष् शास्त्र में भी मितीवार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं और ज्योतिष् की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उस में भी यथावत् सब को क्रम से लिखते चले आते हैं अर्थात् एक २ वर्ष घटाते और एक २ वर्ष भोग में आज तक बढ़ाते आये हैं, इस बात में सब आर्यावर्त देश के इतिहास एक हैं, किसी में कुछ विरोध नहीं ॥

फिर जब कि जैन मत वाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया, सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिस को संकल्प कहते हैं और वह यह है—

ओं तत्सत् श्री ब्रम्हणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशति में

कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तर्गतैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽचेदं कार्यं कृतं क्रियते वा ॥

जो इस को ही विचार ले तो इस से सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है ॥

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उस का उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिती वार दिन चढ़ाते चले आते हैं और जब कि इतिहासों और ज्योतिष् शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है तो फिर इस को मिथ्या कोई नहीं कह सकता जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मिती वार लिखते हैं और उस को कोई झूठ नहीं कह सकता, और जो यह कहता है उस से भी पूछना चाहिये कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं तब वह क्या तो छः हज़ार क्या सात हज़ार क्या आठ हज़ार वर्ष बतलावे गा तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है, तो इसी प्रकार उस को भी कोई नहीं मानेगा क्योंकि यह पुस्तक की बात है ॥

और देखो भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है तो उस से भी यह ही गणना ठीक २ आती है ॥

इस लिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के कदाचित् नहीं, इस लिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सब को ठीक माननी उचित है ॥

अब यह कि ईश्वर ने किस लिये सृष्टि को उत्पन्न किया इस का उत्तर दिया जाता है—

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि और जीव के कर्म तथा कार्य्य जगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं, जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो उन के भोग कराने के लिये और फल देने के लिये ईश्वर सृष्टि को रचता है और अपने पक्षपात रहित न्याय को प्रकाशित करता है, ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है उन के सफल करने के लिये उस ने सृष्टि को रचा है—जैसे आंख देखने के लिये और कान सुनने के लिये है वैसे ही रचनाशक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिये ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं ॥ इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते विद्वान् लोग आप जान लेंगे ॥

पादरी स्काट साहब

जिस की सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता, जगत् सीमा निरूपण है इस लिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आप को नहीं रच सकता, परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है! कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है और पण्डित जी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है। कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

(पादरी साहब के उत्तर में)

पादरी साहब मेरे कहे को नहीं समझे मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है सो उत्पन्न होने से पहिले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा पर इस में जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते, इस शरीर के परमाणु पृथक्२ होकर आकाश में बने रहते हैं और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग*की शक्ति है सो वह सदा उन में रहती है॥ जैसा मिट्टी से

* सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं, अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जल जाता है तो क्या हो जाता है! देखने में आता है कि लकड़ी जल कर थोड़ीसी राख रह ती है तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है वा उस का स्वरूप ही बदल जाता है! जब मोम बत्ती जलाते हैं तो देखने में वह मोम नहीं रहता, यह नहीं जान पड़ता कि कहां गया परन्तु उस मोम का स्वरूप बदल कर वायु के सदृश हो जाता है, और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता॥

इस की परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोम बत्ती जलाओ और उस का मुख बंद कर दो, तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावे गा वह बोतल से बाहर नहीं जा सके गा पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई दे गा कि वह बत्ती बुझ गई॥

अब यह सोचना चाहिये कि बत्ती क्यों बुझ गई! और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं? इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ासा चूने का पानी उस बोतल में और एक और बोतल में कि जिस में केवल वायु भरा हुआ हो और उस में कोई बत्ती न जली हो डालो, तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उस में चूने का रंग दूध सा हो जावेगा और दूसरी बोतल का जैसे का तैसा रहेगा, इस से सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि जो दृष्टि में नहीं आता। अब देखना चाहिये कि मोम बत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उन का स्वरूप भिन्न हो जाता है॥

घड़ा बनाया जो कि बनाने के पहिले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा, परन्तु उस में जो मिट्टी है वह नष्ट नहीं होती और जो गुण अर्थात् चिकनापन उस में है कि जिस से वह पिण्डाकार होता है वह भी मिट्टी में सदा से है; जैसे ही संयोग और वियोग होने की योग्यता परमाणुओं में सदा से है इस से यह समझना चाहिये कि उन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है, वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य्य द्रव्य नहीं ॥ और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं, मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है ॥

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है, तो वह अनादि हुई और जो कहो कि नहीं तो उस से आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती। और जो पादरी साहब ने यह कहा कि पण्डित जी ने यह नहीं बताया कि किस से यह जगत् बना है; कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा मैं ने तो जिस से यह कार्य्य जगत् बना है उस को प्रकृति आदि नामों से कि जिस को परमाणु भी कहते हैं कहा था ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है; क्योंकि मिट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाय। जो कारण होता है वह आप कार्य्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उस में बनने का ज्ञान नहीं होता और कोई जीव भी उस को नहीं बना सकता आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है, ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उन से ऐसी वस्तु बना सके, कोई दो त्रसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता; इस से यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर को ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे ॥

देखो एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है, आज तक बड़े २ वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है कोई नहीं जानता कि किस २ प्रकार और क्या २ गुण ईश्वर ने उस में रक्खे हैं। इस लिये सूर्य्य चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है, तथा जीवों के कर्मों के फल का पहुंचाना यह भी परमात्मा ही का काम है किसी दूसरे का नहीं इस से ईश्वर को मानना अवश्य है ॥

एक हिंदुस्तानी पादरी साहब

जब दो वस्तु हैं एक कार्य्य दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते इस से ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

गुण दो प्रकार के होते हैं एक अंतस्थ दूसरा बाह्य अंतस्थ तो अपने में होते हैं और बाह्य दूसरे से अपने में आते हैं। और अंतस्थ गुण दूसरे में जा कर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिस के गुण होते हैं वह उन से पृथक् होता है जैसे सूर्य्य का प्रतिबिम्ब जिस वर्त्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य्य नहीं हो जाता, वैसे ही ईश्वर ने हम को अपनी इच्छा से बनाया है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

(ईसाई साहब के उत्तर में)

आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं उन सब का कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि है और जीव भी अनादि हैं कि जिन की संख्या कोई नहीं बता सकता, और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती सो मैं पहिले कह चुका हूं परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है ? जो कहो कि कोई वस्तु है; तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम गुण कर्म सब अनादि हैं कोई अब नहीं बने ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि गुण द्रव्य के बिना अलग नहीं रह सकते और गुण से द्रव्य बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है तो जगत् भी ईश्वर हुआ, जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के सिवाय आप को भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ें गे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण है ? जो वस्तु कहो गे तो वह अनादि ठहर जायगी, और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता परन्तु मिट्टी से बनता है तो वैसे ही इच्छा से हम लोग भी नहीं बन सकते ॥

पादरी स्काट साहब

हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया, यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया; इस को ईश्वर ही जानता है, मनुष्य कोई नहीं जान सकता ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

(पादरी साहब के उत्तर में)

कार्य्य को देख कर कारण को देखना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उस का कारण होता है, जैसे घड़े को देख कर उस का कारण मिट्टी जान लिया जाता है; कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मिट्टी है। आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा सो मेरा यह प्रश्न है कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है ? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उस को मान लो, तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये ॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता; परन्तु वह नूर मूर्त्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के बिना अलग नहीं रह सकता। इस से जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उस को माने बिना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता, और हम लोग भी कार्य्य को अनादि नहीं मानते परन्तु जिस से कार्य्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं

एक हिंदुस्तानी ईसाई साहब

जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा तो उस की प्रकृति में सब संसार सनातन था, और वह उस की प्रकृति में अनादि था तो ईश्वर ही की सीमा हो गई

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

जब कि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था तब ही तो वह अनादि हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई अर्थात् लम्बा, चौड़ा, बड़ा, छोटा, आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उस में से बनाया। इस लिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई ईश्वर की नहीं ॥

अब देखिये मैंने जो पहिले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण अनादि है ॥

ईसाई साहब

सुनो भाई मौलवी साहबो ! कि पण्डित जी इस का उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं हम और तुम हजारों मिल कर भी इन से बात करें तो भी पण्डित जी बराबर उत्तर दे सकते हैं, इस लिये इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं॥

ग्यारह बजे तक यह वार्त्ता हुई, फिर सब लोग अपने २ डेरों को चले गये और सब जगह मेले में यही बात चीत होती थी कि जैसा पण्डित जी को सुनते थे उस से सहस्र गुणा पाया ॥

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाकी हैं इस लिये केवल मुक्तिविषय पर विचार करना उचित है । प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहिले कौन वर्णन करे, एक दूसरे पर टालता था । तब स्वामी जी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये अर्थात् पहिले पादरी साहब फिर मौलवी साहब और फिर मैं; परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहिले न बोलें गे, तब स्वामी जी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया ॥

स्वामी दयानन्दसरस्वती जी

मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उन से सब छूट कर एक सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर को प्राप्त हो कर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना इसी का नाम मुक्ति है ।

वह जिस प्रकार से होती है इस का पहिला साधन सत्य का आचरण है, और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये अर्थात् जिस में आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो वह असत्य है, जैसे किसी ने चोरी की जब वह पकड़ा गया उस से राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं? तब तक वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की परन्तु उस का आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है, तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उस को चिता देता है कि यह बुरी बात है इस को तू मत कर और लज्जा शंका और भय आदि उस के आत्मा में उत्पन्न कर देता है, और

जब सत्य की इच्छा करता है तब उस के आत्मा में आनन्द कर देता है और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है। वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़ कर बुरा काम कर लेता है तब उस की मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती और उसी को असुर दुष्ट दैत्य और नीच कहते हैं, इस में वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजुर्वेदे। अध्याये ४०। मंत्र ३॥

आत्मा का हिंसन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध बोलता करता और मानता है उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है॥

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं—

१—सत्य का आचरण ... ...

२—सत्य विद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़ कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना ... ...

३—सत्पुरुष ज्ञानियों का संग करना ... ...

४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियां और आत्मा को असत्य से हटा कर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना ... ...

५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उस के गुणों की कथा सुनना और विचारना

६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि हे जगदीश्वर! हे कृपानिधे! हे अस्मत् पितः! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर और हे भगवन्! हम को अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग कर के विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर, और हे ब्रह्म! हम को जन्ममरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ा कर अपनी कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर।

जब सत्य मन से अपने आत्मा प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उस को अपने आनन्द में स्थिर कर देता है, जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उन के पास जाना, तब हज़ारों आवश्यकता के कामों को भी माता पिता छोड़ कर और दौड़ कर अपने लड़के को उठा कर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़े गा तो उस के चोट लगने से उस को दुःख होगा और जैसे माता पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब

कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठा कर अपनी गोद में सदा के लिये रखता है, फिर उस को किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है। पक्षपात को छोड़ कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके अर्थ को सिद्ध करना चाहिये। देखो सब अन्याय अधर्म और पक्षपात से होता है जैसे कि यह मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है मुझ को मिले तो मैं उस को ओढ़ कर सुख पाऊं, इस में अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख और दुःख का कुछ विचार न किया। इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है। अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं, और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इस को काम कहते हैं, और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्ध करना इस को कुकाम कहते हैं, इस लिये इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ, और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इस में यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इस को धर्म और उस की आज्ञा का तोड़ना इसको अधर्म कहते हैं, सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं और कोई नहीं और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है अन्यथा नहीं॥

पादरी स्काट साहब

पण्डित जी ने कहा कि सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है। कारण यह है कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उस को बहका के उस से पाप करा दिया, इस से उस की सब सन्तान भी पापी है, जैसे घड़ी बनाने वाले ने उस की चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आपही चलती है, ऐसे ही मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं तो फिर अपने ऐश्वर्य्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इस लिये प्रभु ईसामसीह पर विश्वास बिना किये मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप करा के बिगाड़ता है इस से उन की मुक्ति नहीं हो सकती परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं।

प्रभु ईसामसीह जिस २ देश में गये अर्थात् उस की शिक्षा जहां २ गई है वहां २ मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नति है? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डित जी बलवान् हैं ऐसे ही इङ्गलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था परन्तु वह मद्यपान चोरी व्यभिचार आदि बुरे काम करता था जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास

किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया, सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती, इस लिये सब को ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिये, उसी से मुक्ति हो सकती है और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब

हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डित जी ने जो मुक्ति के साधन कहे केवल उन से ही मुक्ति हो सकती है क्योंकि ईश्वर की इच्छा है जिस को चाहे उस को मुक्ति दे और जिस को न चाहे न दे; जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे और जिस से अप्रसन्न हो उस को क़ैद में डाल दे। उस की इच्छा है जो चाहे सो करे, उस पर हमारा ऐश्वर्य्य नहीं है, न जाने ईश्वर क्या करेगा, पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिये, इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हां यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

(पादरी साहब के उत्तर में)

आप ने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं, पापों से छूटने का नाम मुक्ति है सो मेरे अभिप्राय को न समझ कर यह बात कही है क्योंकि मैं तो पहिले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं, और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता। इस के अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़ कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है, जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते।

दूसरे जो आप यह कहते हैं कि ईश्वरने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहका कर पाप करा दिया तो उस की संतान भी इसी कारण से पापी हो गई सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते हो हैं सो जब कि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो इस से ईश्वर सर्वश-क्तिमान् नहीं रह सकता, और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है। और एक आदम ने पाप किया तो उस की सारी संतान पापी हो गई यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है जो पाप करता है वही दुःख पाता है दूसरा कोई नहीं पा सकता और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं माने गा। और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती

क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है, इस लिये ऐसी व्यवस्था मानना चाहिये कि सृष्टि के आदि में बहुत से पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सब को बहकाया तो फिर शैतान को किस ने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से ही आप बहक गया तो सब जीव भी आप से ही आप बहक गये होंगे, फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है; जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकाने वाला शैतान को नहीं है, तो फिर जब ईश्वर ने ही सब को बहकाया तब मुक्ति देने वाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पाने वाला, क्योंकि जब परमात्मा ही बहकाने वाला ठहरा तो बचाने वाला कोई भी नहीं हो सकता; और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है, वह किसी को दुःख देने वाला और बहकाने वाला नहीं ॥

और देखो कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उस को न दण्ड देता है न मारता है न कारागृह में डालता है, इस से स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पाई जाती है और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है, इस से यह बात ठीक नहीं और न शैतान कोई मनुष्य है, जब तक शैतान के मानने वाले शैतान का मानना न छोड़ेंगे तब तक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं जैसा शैतान ने आदम को और उस की संतान को बहका के पापी किया वैसा ही परमात्मा ने आदम की संतान के पाप के बदले में अपने एकलौते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया फिर हम को क्या डर है और जो हम से कुछ पाप भी होता है तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है वह आप क्षमा करा देगा क्योंकि उस ने हमारे पापों के बदले में जान दी है, इस लिये ऐसी व्यवस्था मानने वाले पापों से नहीं बच सकते ॥

और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है क्योंकि सब अपने २ काम करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है बुरे के लिये नहीं और जो आप ने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूट कर मुक्ति पा सकें—यह बात भी ठीक नहीं क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो आप दोषों से बच कर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं; और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया और यह ही आदम का पाप हुआ

कि गेहूं खाया तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया, आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावें गे ! तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इस से यह बात भी ठीक नहीं होसकती ॥

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आपने परमात्मा को भी माना होगा कि जिस से आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं ! परन्तु आप के ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है, उस को गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है; और उस को किसी की सिफारिश की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि सिफ़ारिश न जानने वाले से की जाती है। और देखिये आप के कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है क्योंकि बिना ईसामसीह की गवाही वा सिफ़ारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता इस से परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिस से वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो जब कि वह न्यायकारी है तो किसी की सिफ़ारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता, जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में भी फ़रिश्तों का होना मानो गे तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवें गे, इस से ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीर वाला न होना चाहिये और जो सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य है कि शरीर वाला हो और शरीर वाला होने से उस की शक्ति सब पर घिरने वाली न हुई, शरीर वाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उस को पकड़ और मार नहीं सकता।

और जो शरीर वाला होगा उस का जन्म और मरण भी अवश्य होगा, इस लिये ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उस के दरबार में होना ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता, नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायगी देखो हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े बिना लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है, जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा सो ठीक नहीं क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते, इस में ऐतरेयब्राह्मण का प्रमाण है किः—

कलिश्शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥
ऐत०। पञ्चिका ७। कण्डिका १५॥

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उस को कलि और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उस को द्वापर और जो एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उस को त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उस को सत्युग कहते हैं ॥

इस के जाने विना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती ॥

इस से जो कोई बुरा काम करता है वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता और जो कोई अच्छा काम करता है वह दुःख पाने से बच जाता है किसी ही देश में क्या क्यों न हो ॥

क्या ईसामसीह के विना ईश्वर अपने सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सकता ! वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है उस को किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं। हां यह सच है कि जब जिस २ देश में शिक्षा करने वाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं, उस २ देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है यह भी सब लोगों के लिये सुधार है इस का कुछ मत से प्रयोजन नहीं देखो आर्य्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी इस से उस समय में वे सुधरे हुए इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का विगाड़ हो तो इस से आर्य्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता, क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ले के आज तक आर्य्यों ही का मत चला आता है वह कुछ बहुत नहीं बिगड़ा !

देखो जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपुस के विरोध से फिरके हो गये हैं उन के सामने जो १९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्य्यों के मत में बिगाड़ हुआ तो वह बहुत ही कम है। और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं किन्तु पार्लिमेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है जो ये न रहें मत से कुछ भी सुधार न हो और पादरी साहब ने जो इङ्गलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिला कर दिया सो इस प्रकार कहना उन को योग्य न था परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उन के मुख से निकली !

(मोलवी साहब के उत्तर में)

ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्णविद्या और ठीक २ न्याय पर सदा रहता है, किसी का पक्षपात नहीं करता ।

इस कहने से कि जो चाहे सो करे यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है यह कहना ईश्वर में नहीं बनता ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है मुक्ति के

काम के बिना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता जो बिना पाप पुण्य के देखे जिस को चाहे दुःख देवे और जिस को चाहे सुख, तो ईश्वर में अन्याय आदि प्रमाद लगता है, सो वह ऐसा कभी नहीं करता, जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है इन के विरुद्ध नहीं कर सकता वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिये परमेश्वर ही है दूसरा कोई नहीं और जो कोई दूसरे को माने उस का मानना व्यर्थ है।

मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरे के आधीन है वा दूसरे के कहने से दे सकता है तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है ॥

मैं जानता हूं कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है ॥

इस में मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं और फिर पैग़म्बरों को भी मुक्ति देने में उस के साथ मिला देते हैं। यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा।

इस से यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है, किसी की सहायता के आधीन नहीं; मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है ईश्वर को नहीं; न वह मिथ्या प्रसन्न होने वाला है जो मिथ्या प्रसन्न हो कर अन्याय करे; वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है, और अपने सत्य प्रेम के भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति दे कर और सब दुःखों से बचा कर सदा के लिये आनन्द में रखता है, इस में कुछ संदेह नहीं ॥

इतने में चार बज गये। स्वामी जी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाकी है, मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज़ का समय आ गया। पादरी स्काट साहब ने स्वामी जी से कहा कि हम को आप से एकान्त में कुछ कहना है; सो वे दोनों तो उधर गये, इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज़ पर जूता पहने हुए खड़े हो कर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे ॥

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका, तब स्वामी जी ने पादरी और आर्य्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रहा है मौलवी लोग नमाज़ पढ़ कर आये वा नहीं? उन्हों ने उत्तर दिया कि मेला तो हो चुका! इस पर स्वामी जी बोले कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया, न किसी की

सम्मति ली गई न किसी से पूछा गया अब आगे कुछ बात चीत होगी वा नहीं? जब वहां बहुत गड़बड़ देखा और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी तो लोगों ने स्वामी जी से कहा कि आप भी चलिये मेला तो पूरा हो ही गया, इस पर स्वामी जी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता, इस के उत्तर में पादरी साहबों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते। फिर स्वामी जी आ कर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे। उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामी जी के डेरे पर आये, स्वामी जी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उन को बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपस में बात चीत होने लगीं पादरी साहबों ने पूछा कि आवागमन सत्य है वा असत्य, और इस का क्या प्रमाण है? स्वामी जी ने कहा कि आवागमन सत्य है और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है; जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे करता है तो पची आदि का शरीर पाता है, और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। देखो जब बालक उत्पन्न होता है। तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है, कारण यह ही है कि उस को पहिले जन्म का अभ्यास बना रहता है यह भी एक प्रमाण है। और धनाढ्य, कंगाल, सुखी, दुःखी, अनेक प्रकार के ऊंच नीच देखने से विदित होता है कि कर्मों का फल है। कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है, जीव अनादि हैं कि जिन का आदि और अन्त नहीं। जिस योनि से जीव जन्म लेता है उस का कुछ स्वभाव भी बना रहता है इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं; इस से भी आवागमन सिद्ध है।

इसी प्रकार और बहुत से प्रमाण आवागमन के हैं, परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना इस का कुछ प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि जो मैंने कहा उस के विरुद्ध होना चाहिये था सो ऐसा होना असम्भव है, और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब क़यामत होगी तब उस का हिसाब किताब होगा तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं। फिर पादरी साहब चले गये॥

मौलवियों ने शाहजहांपुर जा कर मुन्शी इन्द्रमणि जी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, परन्तु जब स्वामी जी और मुन्शी जी वहां पहुंचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया॥

ऋषि (७) काला (३) ङ्क (९) ब्रह्मा (१) ब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मङ्गले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया॥

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टीक भेज कर मंगावें (२) टीक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक		
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१३५		४५)
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण		२८)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	३)	।)
" जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	-)॥
सन्धिविषय	।=)॥	-)॥
नामिक	।=)॥	-)॥
कारकीय	।-)॥	-)॥
सामासिक	।=)॥	-)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	-)
अव्ययार्थ	=)॥	)॥
सौवर	=)॥	-)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	-)॥
धातुपाठ	।=)	-)॥
गणपाठ	।-)	-)॥
उणादिकोष	॥=)	-)
निघण्टु	।=)	-)॥
अष्टाध्यायी मूल	।-)॥	-)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	-)॥
व्यवहारभानु	=)	-)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
मेलाचांदापुर	-)	-)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	-)॥
गोकरुणानिधि	-)	-)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	-)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	-)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	-)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	-)॥
शास्त्रार्थकाशी	-)	-)॥
आर्याभिविनय	।)	-)
" जिल्द की	।=)	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)।	-)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	-)॥
" जिल्द की	।-)॥	-)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	-)।	-)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि "		

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

अर्थात्

श्री १०८ स्वामीदयानन्द सरस्वती जी

महाराज का

मुख्य सिद्धान्त

अजमेर नगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

सन् १८९१

द्वितीयबार २०००

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजें जायंगे (३) डांक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा। ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजें जाँय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१४७	४९)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	२९)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
बिना जिल्द की	२)	≡)
जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	)॥
सन्धिविषय	।≡)॥	)॥
नामिक	।≡)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।≡)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१≡)	/)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	≠)॥
पारिभाषिक	≡)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।/)	)॥
उणादिकोष	॥≠)	≠)
निघण्टु	।≠)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≡)	)॥
हवनमन्त्र	)॥	)॥
व्यवहारभानु	≡)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
मेलाचांदापुर	/)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	≡)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
" जिल्द की	।≡)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≡)॥	)॥
" जिल्द की	।≠)॥	/)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
सत्यार्थप्रकाश	२।)॥।	≡)॥
संस्कारविधि	१।)	≠)

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—अजमेर

ओ३म्

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः ॥

—ः श्रीः—

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये मानते हैं और मानेंगे भी इसी लिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादिसत्यशास्त्र और ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनिपर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिन को कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उस को मानना, मनवाना और जो असत्य है उस को छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो २ आर्य्यावर्त्त वा अन्यदेशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उसका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे

वे महाअनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उन की रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उस का नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे इस में श्रीमान् महाराजा भर्तृहरि जी आदि ने श्लोक कहे हैं उन का लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा, यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ भर्तृहरिः

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्-
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।

धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥ महाभारते ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥३॥ मनुः ।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥४॥

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥ उ० नि० ॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेप से यहां करता हूं कि जिन का विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने२ प्रकरण में कर दिया है इन में से:—

१—प्रथम "ईश्वर" कि जिस के ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त है जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं॥

२—चारों "वेदों" (विद्याधर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूं वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन का प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारो वेद हैं और चारो वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उन को परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेद विरुद्ध वचन हैं उन का अप्रमाण करता हूं ॥

३—जो पक्षपात रहित, न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को "धर्म" और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा भङ्ग वेदविरुद्ध है उस को "अधर्म" मानता हूं॥

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूं ॥

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था न है न होगा और न कभी एक था, न है न होगा इसी

प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूं ॥

६—"अनादि पदार्थ" तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्ही को नित्य भी कहते हैं जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं ॥

७—"प्रवाह से अनादि" जो संयोग से द्रव्य गुण कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिस से प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उन में अनादि है और उस से पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूं ॥

८—"सृष्टि" उस को कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्ति पूर्वक मेल हो कर नानारूप बनना ॥

९—"सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिस में ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण कर्म स्वभाव का साफल्य होना जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं? उसने कहा देखने के लिये, वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी ॥

१०—"सृष्टि सकर्तृक" है इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का "कर्त्ता" अवश्य है ॥

११—"बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है जो २ पापकर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसी लिये यह "बन्ध" है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है ॥

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखों से छूट कर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना ॥

१३—"मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ॥

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उस को अनर्थ कहते हैं ॥

१५—"काम" वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय ॥

१६—"वर्णाश्रम" गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं ॥

१७—"राजा" उसी को कहते हैं जो शुभगुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान् पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ॥

१८—"प्रजा" उस को कहते हैं कि जो पवित्र गुण कर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते ॥

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो "न्यायकारी" है उस को मैं भी ठीक मानता हूं ॥

२०—"देव" विद्वानों को और अविद्वानों को "असुर" पापियों को "राक्षस" अनाचारियों को "पिशाच" मानता हूं ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी, राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री, और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है इस से विपरीत अदेवपूजा, इन की मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूं ॥

२२—"शिक्षा" जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं ॥

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूं अन्य भागवतादि को नहीं ॥

२४—"तीर्थ" जिस से दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म है उसी को तीर्थ समझता हूं इतर जलस्थलादि को नहीं ॥

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इस लिये है कि जिस से संचित प्रारब्ध बनते जिस के सुधरने से सब सुधरते और जिस के बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूं ॥

२७—"संस्कार" उस को कहते हैं कि जिस से शरीर मन और आत्मा उत्तम होवे वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है इस को कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ॥

२८—"यज्ञ" उस को कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उस से उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान अग्निहोत्रादि जिन से वायु वृष्टि जल ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उस को उत्तम समझता हूं ॥

२९— जैसे "आर्य्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं ॥

३०—"आर्य्यावर्त्त" देश इस भूमि का नाम इस लिये है कि इस में आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इस की अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्याचल पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा

नदी है इन चारों के बीच में जितना देश है उस को "आर्य्यावर्त्त" कहते और जो इन में सदा रहते हैं उन को भी आर्य कहते हैं ॥

३१—जो सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है ॥

३२—"शिष्य" उस को कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा विद्या ग्रहण की इच्छा और आचार्य्य का प्रिय करने वाला है ॥

३३—"गुरु" माता पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४—"पुरोहित" जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे ॥

३५—"उपाध्याय" जो वेदों का एक देश वा अङ्गों को पढ़ाता हो ॥

३६—"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इस को करता है वह शिष्ट कहाता है ॥

३७—प्रत्यक्षादि "आठ प्रमाणों" को भी मानता हूं ॥

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को "आप्त" कहता हूं ॥

३९—"परीक्षा" पांच प्रकार की है इस में से प्रथम जो ईश्वर उस के गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण तीसरी सृष्टिक्रम चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये ॥

४०—"परोपकार" जिस से सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उस के करने को परोपकार कहता हूं ॥

४१—"स्वतन्त्र" "परतन्त्र" जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ॥

४२—"स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उस की सामग्री की प्राप्ति का है ॥

४३—"नरक" जो दुःखविशेष भोग और उस की सामग्री को प्राप्त होना है ॥

४४—"जन्म" जो शरीरधारण कर प्रकट होना सो पूर्व पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूं ॥

४५—शरीर के संयोग का नाम "जन्म" और वियोगमात्र को मृत्यु कहते हैं ॥

४६—"विवाह" जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा कर के पाणिग्रहण करना वह "विवाह" कहाता है ॥

४७—"नियोग" विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री, वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—"स्तुति" गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इस का फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उन के लिये ईश्वर से याचना करना और इस का फल निरभिमान आदि होता है ॥

५०—"उपासना" जैसे ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है ॥

५१—"सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो २ गुण परमेश्वर में हैं उन से युक्त और जो २ गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मान कर प्रशंसा करना सगुण निर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुण निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उस के और उस की आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना कहाती है ॥

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं इन की विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थप्रकाश" के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो२ बात सब के सामने माननीय है उस को मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उन को मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे" जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहैं यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्यमा ॥ शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां
श्री विरजानन्दसरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्री-
मद्दयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचितः
सिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः
सुभाषाविभूषितः स्वम-
न्तव्यामन्तव्यप्रकाशः
सम्पूर्तिमगमत् ॥

ओ३म् ॥

व्यवहारभानुः ॥

—•—:•:—•—

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः ॥

मुंशी दरियाव सिंह जी के प्रबन्ध से

प्रयाग

वैदिकयन्त्रालय

में मुद्रित हुआ

संवत् १९४७ भाद्र

तृतीयावृत्ती
१०००

मूल्य
)

भूमिका

—०❋०—

मैंने इस संसार में परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो मनुष्य धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक २ वर्त्तता है उस को सर्वत्र सुखलाभ और जो विपरीत वर्त्तता है वह सदा दुःखी हो कर अपनी हानि कर लेता है देखिये जब कोई सभ्य मनुष्य विद्वानों की सभा में वा किसी के पास जा कर अपनी योग्यता के अनुसार नम्रता पूर्वक नमस्ते आदिकरके बैठ के दूसरे की बात ध्यान दे सुन उस का सिद्धान्त जान निरभिमानी हो कर युक्त प्रत्युत्तर करता है। तब सज्जन लोग प्रसन्न हो के उस का सत्कार और अंड बंड बकता है उस का तिरस्कार करते हैं जब मनुष्य धार्म्मिक होता है तब उस का विश्वास और मान्य शत्रु भी करते और जब अधर्म्मी होता है तब उस का विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते इस से जो थोड़ी विद्या वा लोभी मनुष्य श्रेष्ठ शिक्षा पा कर सुशील होता है उस का कोई भी कार्य नहीं बिगड़ता इस लिये मैं मनुष्यों को उत्तम शिक्षा के अर्थ सब वेदादि शास्त्र और सत्याचारी विद्वानों की रीति युक्त इस व्यवहारभानु ग्रन्थ को बना कर प्रसिद्ध करता हूं कि जिस को देख देखा पढ़ पढ़ा कर मनुष्य अपने और अपने २ सन्तान तथा विद्यार्थियों का आचार अत्युत्तम करें कि जिस से आप और वे सब दिन सुखी रहें। इस ग्रन्थ में कहीं २ प्रमाण के लिये संस्कृत और सुगम भाषा लिखी और अनेक उपयुक्त दृष्टान्त दे कर सुधार का अभिप्राय प्रकाशित किया है कि जिस को सब कोई सुख से समझ के अपना २ स्वभाव सुधार के सब उत्तम व्यवहारों को सिद्ध किया करें ॥

सं० १९३९ फाल्गुन शुक्ला १५ } दयानन्द सरस्वती काशी

ओ३म्

॥ व्यवहारभानुः ॥

—:०*०:—

ऐसा किस मनुष्य का आत्मा होगा कि जो सुखों को सिद्ध करने-वाले व्यवहारों को छोड़ कर उलटे आचरण करने में प्रसन्न होगा। क्या यथायोग्य व्यवहार किये विना किसी को सर्व सुख हो सकता है क्या मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नहीं कर सकता और इस के विना पशु के समान हो कर दुःखी नहीं रहता है जिस लिये सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना अवश्य है इस लिये यह बालक से ले के वृद्ध पर्य्यन्त मनुष्यों के सुधार के अर्थ व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया जाता है।

(प्रश्न) कैसे पुरुष पढ़ाने और शिक्षा करने हारे होने चाहिये

(उत्तर) पढ़ाने वालों के लक्षण।

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्म्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥

जिस को परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान जो आलस्य को छोड़ कर सदा उद्योगी सुखदुःखादि का सहन धर्म्म का नित्य सेवन करने वाला जिस को कोई पदार्थ धर्म से छुड़ा अधर्म की ओर न खींच सके वह पण्डित कहाता है ॥ १ ॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥ २ ॥

जो सदा प्रशस्त धर्मयुक्त कर्म्मों को करने और निन्दित अधर्मयुक्त कर्म्मों को कभी न सेवने हारा न कदापि ईश्वर वेद और धर्म का विरोधी और परमात्मा सत्य विद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है वही मनुष्य पण्डित के लक्षणयुक्त होता है ॥ २ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासंपृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥३॥

जो वेदादि शास्त्र और दूसरे के कहे अभिप्राय को शीघ्र ही जानने दीर्घकाल पर्य्यन्त वेदादि शास्त्र और धार्म्मिक विद्वानों के वचनों को ध्यान दे कर सुन के ठीक २ समझ निरभिमानी शान्त हो कर दूसरों से प्रत्युत्तर करने परमेश्वर से ले के पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को जान के उन से उपकार लेने में तन, मन, धन से प्रवृत्त हो कर, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भयशोकादि दुष्ट गुणों से पृथक् वर्त्तमान किसी के पूछने वा दोनों के संवाद में विना प्रसङ्ग के अयुक्त भाषणादि व्यवहार न करने वाला मनुष्य है यही पण्डित की बुद्धिमत्ता का प्रथम लक्षण है ॥ ३ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करते अदृष्ट वा किसी पदार्थ के नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर शोक करने की अभिलाषा नहीं करते और बड़े २ दुःखों से युक्त व्यवहारों की प्राप्ति में भी मूढ़ हो कर नहीं घबराते हैं वे मनुष्य पण्डितों की बुद्धि से युक्त कहाते हैं॥४॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥

जिस की वाणी सब विद्याओं में चलने वाली अत्यन्त अद्भुत वि-द्याओं की कथाओं को करने विना जाने पदार्थों को तर्क से शीघ्र जानने

जानाने सुनी विचारी विद्याओं को सदा उपस्थित रखने और जो सब विद्याओं के ग्रन्थों को अन्य मनुष्यों को शीघ्र पढ़ाने वाला मनुष्य है वही पण्डित कहाता है ॥ ५ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्य्यमर्य्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ ३ ॥

जिस की सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा अनुकूल और बुद्धि और क्रिया सुनी पढ़ी हुई विद्याओं के अनुसार जो धार्म्मिक श्रेष्ठ पुरुषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्ट डाकुओं की रीति को विदीर्ण करने हारा मनुष्य है वही पण्डित नाम धराने के योग्य होता है ॥ ६ ॥ जहां ऐसे २ सत्पुरुष पढ़ाने और बुद्धिमान् पढ़ने वाले होते हैं वहां विद्या और धर्म्म की वृद्धि हो कर सदा आनन्द ही बढ़ता जाता है और जहां निम्नलिखित मूढ़ पढ़ने पढ़ाने हारे होते हैं वहां अविद्या और अधर्म्म की उन्नति हो कर दुःख ही बढ़ता जाता है ॥

(प्र०) कैसे मनुष्य पढ़ाने और उपदेश करने वाले न होने चाहिये ।

मूर्ख के लक्षण—

(उ०) अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्म्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान् का उपदेश न सुन कर बड़ा घमंडी, दरिद्र हो कर धनसम्बन्धी बड़े २ कामों की इच्छा वाला और विना किये बड़े २ फलों की इच्छा करने हारा ॥ दृष्टान्त—

जैसे—एक कोई दरिद्र शेखसेली नामक किसी ग्राम में था वहां किसी नगर का बनिया दश रुपये उधार ले कर घी लेने आया था वह घी ले कर घड़े में भर किसी मजूर के खोज में था वहां शेखसेली आ निकला उस से पूछा कि इस घड़े को तीन कोस पर ले जाने की क्या

मजूरी लेगा उस ने कहा कि आठ आना उठा आगें बनिये ने कहा कि चार आना लेना हो तो ले उस ने कहा अच्छा शेखसेली घड़ा लेचला और बनियां पीछे २ चलता हुआ मन में मनोरथ करने लगा कि दश रुपयें के घी के ग्यारह रुपये आवें गे दश रुपये सेठ को दूंगा और एक रुपया घर की पूंजी रहे गी वैसे ही दश फेरे में दश रुपये हो जांय गे इसी प्रकार दश से सौ सौ से सहस्र सहस्र से लक्ष लक्ष से करोड़ फिर सब जगह कोठियां करूं गा और सब राजा लोग मेरे कर्जदार हो जांय गे इत्यादि बड़े २ मनोरथ करने लगा और शेखसेली ने विचारा कि चार आने की रुई ले सूत कात कर बेचूं गा आठ आना मिले गा फिर आठ आना से एक रुपैया हो जाय गा फिर वैसे ही एक से दो रुपये हों गे उस से एक बकरी लूंगा जब उस के कच्चे बच्चे होंगे तब उन को बेंच एक गाय लूं गा उस के कच्चे बच्चे बेंच भैंस लूं गा उस के कच्चे बच्चे बेंच एक घोड़ी लूंगा उस के कच्चे बच्चे बेंच एक हथिनी लूंगा और उस के कच्चे बच्चे बेंच दो बीबियां व्याहूं गा एक का नाम प्यारी और दूसरी का नाम बेप्यारी रक्खूं गा जब प्यारी के लड़के गोद में बैठने आवें गे तब कहूं गा बच्चे आओ बैठो और जब बेप्यारी के लड़के आ कर कहें गे कि हम भी बैठें तब कहूं गा नहीं २ ऐसा कह कर शिर हिला दिया· घड़ा गिर पड़ा फूट गया और घी, भूमि पर फैल के धूर में मिल गया बनिया रोने लगा और शेखसेली भी रोने लगा, बनियां ने शेखसेली को धमकाया कि, घी क्यों गिरा दिया और रोता क्यों है तेरा क्या नुकसान हुआ। (शेखसेली) तेरा क्या बिगाड़ हुआ तूं क्यों रोता है (बनियां) मैंने दश रुपये उधार ले कर प्रथम ही घी खरीदा था उस पर बड़े २ लाभ का विचार किया था वह मेरा सब बिगड़ गया मैं क्यों न रोऊं। (शेखसेली) तेरी तो दश रुपये आदि की ही हानि हुई मेरा तो घर ही बना बनाया बिगड़ गया। मैं क्यों न रोऊं (बनिया) क्या तेरे रोने से

मेरा घी आ जायगा (शेखसेली) अच्छा तो तेरे रोने से मेरा घर भी न बन जायगा । तूं बड़ा मूर्ख है (बनिया) तू मूर्ख तेरा बाप । दोनों आपस में एक दूसरे को मारने लगे फिर मार पीट कर शेखसेली अपने घर की ओर भाग गया और उस बनिये ने धूर मिले हुए घी को ठिकरे में उठा कर अपने घर की राह ली ऐसे ही स्वसामर्थ्य के विना अशक्य मनोरथ क्रिया करना मूर्खों का काम है और जो विना परिश्रम के पदार्थों की प्राप्ति में उत्साही होता है उसी मनुष्य को विद्वान् लोग मूर्ख कहते हैं ॥ १ ॥

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ॥
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढ़चेता नराधमः ॥ २ ॥
महाभारत उद्योगपर्वविदुरप्रजागर ॥ अ० ३२ ॥

जो बिना बुलाये जहां तहां सभादि स्थानों में प्रवेश कर सत्कार और उच्चासन को चाहे वा ऐसी रीति से बैठे कि सब सत्पुरुषों को उस का आचरण अप्रिय विदित हो बिना पूछे बहुत अंडबंड बके अविश्वासियों में विश्वासी हो कर सुख की हानि कर लेवे वही मनुष्य मूढ़बुद्धि और मनुष्यों में नीच कहाता है ॥ २ ॥ जहां ऐसे २ मूढ़ मनुष्य पठन पाठन आदि व्यवहारों को करने हारे होते हैं वहां सुखों का तो दर्शन कहां किन्तु दुःखों की भरमार तो हुआ ही करती है इस लिये बुद्धिमान् लोग ऐसे २ मूढ़ों का प्रसंग वा इन के साथ पठन पाठन क्रिया को व्यर्थ समझ कर पूर्वोक्त धार्मिक विद्वानों का प्रसंग और उन ही से विद्या का अभ्यास और सुशील बुद्धिमान् विद्यार्थियों ही को पढ़ाया करें ये विद्वान् और मूर्ख के लक्षण विधायक श्लोक विदुरप्रजागर के३२ अध्याय मेंएक ही ठिकाने लिखे हैं॥

(प्र०) जो विद्या पढ़े और पढ़ावें वे निम्नलिखित दोषयुक्त न हों ॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ॥
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेव च ॥

एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥
सुखार्थिनां कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ॥
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥ ३ ॥

आलस्य अभिमान नशा करना, मूढ़ता चपलता, व्यर्थ इधर उधर की अंडबंड बातें करना, जड़ता, कभी पढ़ना कभी न पढ़ना अभिमान और लोभ लालच ॥ ये सात ७ विद्यार्थियों के लिये विद्या के विरोधी दोष हैं क्योंकि जिस को सुख चैन करने की इच्छा है उस को विद्या कहां और जिस का चित्त विद्याग्रहण करने कराने में लगा है उस को विषयसम्बन्धी सुख चैन कहां ? ॥ इस लिये विषयसुखार्थी विद्या को छोड़े और विद्यार्थी विषयसुख से अवश्य अलग रहें नहीं तो परमधर्म्मरूप विद्या का पढ़ना पढ़ाना कभी नहीं हो सकेगा ॥ ये दो श्लोक भी महाभारत विदुर प्रजागर अध्याय ३६ में लिखे हैं ॥

(प्र०) कैसे २ मनुष्य सब विद्याओं की प्राप्ति कर और करा सकते हैं ॥

ब्रह्मचर्यस्य च गुणं शृणु त्वं वसुधाधिप ॥
आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ॥ १ ॥
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ॥
बह्वयः कोट्यस्त्वृषीणां च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ॥ २ ॥
सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ॥ ३ ॥

भीष्म जी युधिष्ठिर से कहते हैं कि हे राजन् तूं ब्रह्मचर्य के गुण सुन जो मनुष्य इस संसार में जन्म से ले के मरणपर्य्यन्त ब्रह्मचारी होता है ॥१॥ उस को कोई शुभ गुण अप्राप्त नहीं रहता ऐसा तूं जान कि जिस के प्रताप से ऋषियों के अनेक क्रोड़ह मनुष्य ब्रह्मलोक अर्थात् सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों को प्राप्त होते

हैं ॥ २ ॥ जो निरन्तर सत्य में रमण, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा उत्कृष्ट शुभ-गुण स्वभावयुक्त और रोगरहित पराक्रम सहित शरीर ब्रह्मचर्य्य अर्थात् वेदादि सत्य शास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यास कर्म्मादि करते हैं उन के वे सब उत्तम गुण बुरे काम और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्म्मयुक्त कर्म्म और सब सुखों की प्राप्ति कराने हारे होते हैं और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं ॥

(प्र०) शूरवीर किन को कहते हैं ॥

> वेदाऽध्ययनशूराश्च शूराश्चाऽध्ययने रताः ॥
> गुरुशुश्रूषया शूराः पितृशुश्रूषयाऽपरे ॥ १ ॥
> मातृशुश्रूषया शूरा भैक्ष्यशूरास्तथाऽपरे ॥
> अरण्ये गृहवासे च शूराश्चाऽतिथिपूजने ॥ २ ॥

जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने में शूरवीर जो दुष्टों के दलन और श्रेष्ठों के पालन में शूरवीर अर्थात् दृढ़ोत्साही उद्योगी जो निष्कपट परोपकारक अध्यापकों की सेवा करके शूरवीर जो अपने जनक (पिता) की सेवा करके शूरवीर ॥१॥ जो माता की परिचर्या से शूर जो संन्यासाश्रम से युक्त अतिथिरूप हो कर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने में शूर जो वानप्रस्थाश्रम के कर्म्म और जो गृहाश्रम के व्यवहार में शूर होते हैं वे ही सब सुखों के लाभ करने कराने में अत्युत्तम हो के धन्यवाद के पात्र होते हैं कि जो अपना तन मन धन विद्या और धर्मादि शुभ गुण ग्रहण में सदा उपयुक्त करते हैं ॥

(प्र०) शिक्षा किस को कहते हैं ॥

(उ०) जिस से मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सकें वह शिक्षा कहाती है ॥

(प्र०) विद्या और अविद्या किस को कहते हैं ॥

(उ०) जिस से पदार्थ का स्वरूप यथावत् जान कर उस से उपकार ले के अपने और दूसरों के लिये सब सुखों को सिद्ध कर सकें वह विद्या और जिस से पदार्थों के स्वरूप को उलटा जान कर अपना और पराया अनुपकार कर लेवें वह अविद्या कहाती है ॥

(प्र०) मनुष्यों को विद्या की प्राप्ति और अविद्या के नाश के लिये क्या २ कर्म करना चाहिये ॥

(उ०) वर्णोच्चारण से ले के वेदार्थज्ञान के लिये ब्रह्मचर्य आदि कर्म करना योग्य है ॥

(प्र०) ब्रह्मचारी किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो जितेन्द्रिय हो के ब्रह्म अर्थात् वेदविद्या के लिये तथा आचार्य कुल में जा कर विद्याग्रहण के लिये प्रयत्न करे वह ब्रह्मचारी कहाता है॥

(प्र०) आचार्य किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या होने के लिये तन मन और धन से प्रयत्न करे उस को आचार्य कहते हैं ॥

(प्र०) अपने सन्तानों के लिये माता पिता और आचार्य क्या २ शिक्षा करें ॥

(उ०)—मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद॥ शतपथब्राह्मण

अहोभाग्य उस मनुष्य का है कि जिस का जन्म धार्मिक विद्वान् माता पिता और आचार्य के सम्बन्ध में हो क्योंकि इन तीनों ही की शिक्षा से मनुष्य उत्तम होता है। ये अपने सन्तान और विद्यार्थियों को अच्छी भाषा बोलने खाने पीने बैठने उठने वस्त्र धारणे माता पिता आदि का मान्य करने उन के सामने यथेष्टाचारी न होने विरुद्ध चेष्टा न करने

आदि के लिये प्रयत्न से नित्यप्रति उदेश किया करें और जैसा २ उस का सामर्थ्य बढ़ता जाय वैसी २ उत्तम २ बातें सिखलाते जांय इसी प्रकार लड़के और लड़कियों को पांच वा आठ वर्ष की अवस्था पर्यन्त माता पिता और इस के उपरान्त आचार्य की शिक्षा होनी चाहिये ॥

(प्र०) क्या जैसी चाहें वैसी शिक्षा करें ॥

(उ०) नहीं जो अपने पुत्र पुत्री और विद्यार्थियों को सुनावें कि सुन मेरे बेटे बिटिया और विद्यार्थी तेरा शीघ्र विवाह करेंगे तूं इस की डाढ़ी मूंछ पकड़ ले, इस की जटा पकड़ के ओढ़नी फेंक दे, धौल मार,गाली दे, इस का कपड़ा छीन ले,पगड़ी वा टोपी फेंक दे,खेल, कूद, हंस,रो तुम्हारे विवाह में फुलवारी निकालें-गे इत्यादि कुशिक्षा करते हैं उन को माता पिता और आचार्य न समझने चाहिये किन्तु सन्तान और शिष्यों के पक्के शत्रु और दुःखदायक हैं क्योंकि जो बुरी चेष्टा देख कर लड़कों को न घुड़कते और न दंड देते हैं वे क्यों कर माता पिता और आचार्य हो सकते हैं क्योंकि जो अपने सामने यथातथा बकने निर्लज्ज होने व्यर्थ चेष्टा करने आदि बुरे कर्म्मों से हटा कर विद्या आदि शुभ गुणों के लिये उपदेश नहीं करते न तन, मन, धन लगा के उत्तम विद्या व्यवहार का सेवन करा कर अपने सन्तानों को सदा श्रेष्ठ करते जाते हैं वे माता, पिता और आचार्य कहा कर धन्यवाद के पात्र कभी नहीं हो सकते और जो अपने २ सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना,धर्म्म,अधर्म्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या,पाखण्ड वेद शास्त्र आदि के लक्षण और उन के स्वरूप का यथावत् बोध करा और सामर्थ्य के अनुकूल उन को वेद शास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ करा कर विद्या पढ़ने आचार्य के अनुकूल रहने की रीति भी जना देवें कि जिस से विद्या प्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों वे ही माता पिता और आचार्य्य कहाते हैं ॥

(प्र०) विद्या किस २ प्रकार और किन कर्मों में होती है ? ॥

(उ०) चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति ॥ महा० अ० ।१।१।१। आ० १ ॥

विद्या चार प्रकार में काम आती है। आगम। स्वाध्याय। प्रवचन। और व्यवहारकाल आगमकाल उस को कहते हैं कि जिस से मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान हो कर ध्यान दे के विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सकें। स्वाध्यायकाल उस को कहते हैं कि जो पठन समय में आचार्य के मुख से शब्द अर्थ और सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों उन को एकान्त में स्वस्थ चित्त हो कर पूर्वापर विचार के ठीक २ हृदय में दृढ़ कर सकें। प्रवचनकाल उस को कहते हैं कि जिस से दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना। व्यवहारकाल उस को कहते हैं, कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है तब यह करना यह न करना है वही ठीक २ सिद्ध हो के वैसा ही आचरण करना हो सके ये चार प्रयोजन हैं तथा अन्य भी चार कर्म विद्याप्राप्ति के लिये हैं। श्रवण। मनन। निदिध्यासन। और साक्षात्कार। श्रवण उस को कहते हैं कि आत्मा मन के और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो २ अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें उन को श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना। मनन उस को कहते हैं कि जो २ शब्द अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुये हैं उन का एकान्त में स्वस्थ चित्त होकर विचार करना कि कौन अर्थ किस के साथ कौन अर्थ किस शब्द के साथ और किस किस शब्द और अर्थ के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और इन के मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उलटे होने में क्या २ हानि होती है इत्यादि। निदिध्यासन उस को कहते हैं कि जो २ शब्द अर्थ और सम्बन्ध सुने विचारे हैं वे ठीक २ हैं वा नहीं इस बात को विशेष परीक्षा

करके दृढ़ निश्चय करना और साक्षात्कार उस को कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने विचारे और निश्चय किये हैं उन को यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं॥ (प्र०) आचार्य के साथ विद्यार्थी कैसा २ वर्त्तमान करें और कैसा २ न करें । (उ०) मिथ्या को छोड़ के सत्य बोलें, सरल रहें, अभिमान न करें, आज्ञा पालन करें, स्तुति करें, निन्दा न करें, नीच आसन पर बैठें, ऊंचे न बैठें, शान्त रहें, चपलता न करें, आचार्य की ताड़ना पर प्रसन्न रहें, क्रोध कभी न करें, जब कुछ पूछें तो हाथ जोड़ के नम्र हो कर उत्तर देवें, घमण्ड से न बोलें, जब वे शिक्षा करें चित्त दे कर सुनें, ठट्ठे में न उड़ावें, शरीर और वस्त्र शुद्ध रक्खें, मैले कभी न रक्खें, जो कुछ प्रतिज्ञा करें, उस को पूरी करें, जितेन्द्रिय होवें, लम्पटपन व्यभिचार कभी न करें, उत्तमों का सदा मान करें, अपमान कभी न करें, उपकार मान के कृतज्ञ होवें, किसी के अनुपकारी होकर कृतघ्न न होवें, पुरुषार्थी रहें, आलसी कभी न हों, जिस २ कर्म से विद्या प्राप्ति हो उस २ को करते जांय, जो २ बुरे काम क्रोध लोभ मोह भय शोक आदि विद्या विरोधी हों उन को छोड़ कर सदा उत्तम गुणों की कामना करें, बुरे कामों पर क्रोध, विद्या ग्रहण में लोभ, सज्जनों में मोह, बुरे कामों से भय, अच्छे काम न होने में शोक करके विद्यादि शुभ गुणों से आत्मा और जितेन्द्रिय वीर्य आदि धातुओं की रक्षा से शरीर का बल सदा बढ़ाते जांय।

(प्र०) आचार्य विद्यार्थिओं के साथ कैसे वर्त्तें ॥

(उ०) जिस प्रकार से विद्यार्थी विद्वान् सुशील निरभिमानी सत्यवादी धर्मात्मा आस्तिक निरालस्य उद्योगी परोपकारी वीर, धीर, गम्भीर, पवित्राचरण शान्तियुक्त दमनशील जितेन्द्रिय ऋजु प्रसन्नवदन

होकर माता, पिता, आचार्य, अतिथि, बन्धु, मित्र, राजा प्रजा आदि के प्रियकारी हों जब किसी से बात चीत करें तब जो २ उसके मुख से अक्षर पद वाक्य निकलें उन को शान्त हो कर सुन के प्रत्युत्तर देवें जब कभी कोई बुरी चेष्टा मलीनता मैले वस्त्रधारण बैठने उठने में विपरीताचरण, निन्दा, ईर्ष्या, द्रोह, विवाद, लड़ाई, बखेड़ा, चुगली, किसी पर मिथ्या दोष लगाना, चोरी, जारी, अनभ्यास, आलस्य, अतिनिद्रा, अतिभोजन, अतिजागरण, व्यर्थ खेलना, इधर, उधर, अट्ट सट्ट मारना, विषयसेवन, बुरे व्यवहारों की कथा करना, वा सुनना दुष्टों के संग बैठना आदि दुष्ट व्यवहार करे तो उस को यथाऽपराध कठिन दण्ड देवे इस में प्रमाण—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः ॥
लालनाश्रयिणो दोषास्ताड़नाश्रयिणो गुणाः ॥ १ ॥
महाभाष्य । अ० ८ । पा० १ । सू० ८ । आ० १ ।

आचार्य लोग अपने विद्यार्थियों को विद्या और सुशिक्षा होने के लिये प्रेमभाव से अपने हाथों से ताड़ना करते हैं क्योंकि सन्तान और विद्यार्थियों का जितना लाड़न कराना है उतना ही उन के लिये बिगाड़ और जितनी ताड़ना करनी है उतना उन के लिये सुधार है। परन्तु ऐसी ताड़ना न करे कि जिस से अंग भंग वा मर्म में लगने से विद्यार्थी वा लड़के लड़की लोग व्यथा को प्राप्त हो जांय ॥

(प्र०) पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम् ॥

हुड़दङ्ग उवाच । हुड़दंगा कहता है कि जो पढ़ता है वह भी मरता और जो नहीं पढ़ता वह भी मरता है फिर पढ़ने पढ़ाने में दांत कटाकट क्यों करना ॥

(उ०) न विद्यया विना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम् ॥
अतो धर्म्मार्थमोक्षेभ्यो विद्याभ्यासं समाचरेत् ॥१॥

सज्जन उवाच। सज्जन कहता है कि सुन भाई हुड़दङ्गे जो तू जानता है सो विद्या का फल नहीं कि विद्या के पढ़ने से जन्ममरण आंख से देखना कान से सुनना आदि ये ईश्वरीय नियम अन्यथा हो जांय किन्तु विद्या से यथार्थ ज्ञान हो कर यथायोग्य व्यवहार करने कराने से आप और दूसरों को आनन्दयुक्त करना विद्या का फल है क्योंकि विना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चल सुख नहीं हो सकता क्या भया किसी को क्षण भर सुख हुआ न हुआ सा है किसी का सामर्थ्य नहीं है कि जो अविद्वान् होकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष के स्वरूप को यथावत् जान कर सिद्ध कर सके। इस लिये सब को उचित है कि इन की सिद्धि के लिये विद्या का अभ्यास तन, मन, धन से किया और कराया करें (हुड़दङ्गा०) हम देखते हैं कि बहुत से मनुष्य विद्या पढ़े हुए दरिद्र और भीख मांगते तथा विना पढ़े हुये राज्य धन का आनन्द भोगते हैं (सज्जन०) सुनो प्रिय ! सुख दुःख का योग आत्मा में हुआ करता है जहां विद्यारूप सूर्य्य का अभाव और अविद्यान्धकार का भाव है वहां दुःखों की तो भर मार सुख की क्या ही कथा कहना है और जहां विद्यार्क प्रकाशित हो कर अविद्यान्धकार को नष्ट कर देता है उस आत्मा में सदा आनन्द का योग और दुःख को ठिकाना भी नहीं मिलता है। हुड़दङ्गा शिर धुन कर चुप हो गया ॥

(प्र०) आचार्य किस रीति से विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करावें और विद्यार्थी लोग करें ॥

(उ०) आचार्य समाहित हो कर ऐसी रीति से विद्या और सुशिक्षा करें कि जिस से उस के आत्मा के भीतर सुनिश्चित अर्थ हो कर उत्साह ही बढ़ता जाय ऐसी चेष्टा वा कर्म कभी न करें कि जिस को देख वा करके विद्यार्थी अधर्मयुक्त हो जावें। दृष्टान्त, हस्त क्रिया-यन्त्र, कला, कौशल विचार आदि से विद्यार्थियों के आत्मा में पदार्थ

इस प्रकार साक्षात् करावें कि एक के जानने से हजारह पदार्थ यथावत् जानते जांय। अपने आत्मा में इस बात का ध्यान रक्खें कि जिस २ प्रकार से संसार में विद्या धर्माचरण की बढ़ती और मेरे पढ़ाये मनुष्य अविद्वान् और कुशिक्षित हो कर मेरी निन्दा का कारण न होजांय कि मैं ही विद्या के रोकने और अविद्या की वृद्धि का निमित्त गिना जाऊं ऐसा न हो कि सर्वात्मा परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से मेरे गुण कर्म स्वभाव विरुद्ध होने से मुझ को महा दुःख भोगना हो परम धन्य वे मनुष्य हैं कि जो अपने आत्मा के समान सुख में सुख और दुःख में दुःख अन्य मनुष्यों का जान कर धार्मिकता को कदापि नहीं छोड़ते इत्यादि उत्तम व्यवहार आचार्य लोग नित्य करते जांय विद्यार्थी लोग भी जिन कर्मों से आचार्य की प्रसन्नता होती जाय वैसे कर्म करें जिस से उस का आत्मा संतुष्ट हो कर चाहे कि येलोग विद्या से युक्त होकर सदा प्रसन्न रहें रात दिन विद्या ही के विचार में लग कर एक दूसरे के साथ प्रेम से परस्पर विद्या को पढ़ाते जावें। जहां विषय वा अधर्म की चर्चा भी होती हो वहां कभी खड़े भी न रहें। जहां २ विद्यादि व्यवहार और धर्म का व्याख्यान होता हो वहां से अलग कभी न रहें भोजनछादनऐसी रीति से करें कि जिस से कभी रोग वीर्य हानि वा प्रमाद न बढ़े। जो बुद्धि के नाश करने हारे नशा के पदार्थ हों उन को ग्रहण कभी न करें किन्तु जो २ ज्ञान बढ़ाने और रोग नाश करने हारे पदार्थ हों उन्हीं का सेवन सदा किया करें। नित्यप्रति परमेश्वर का ध्यान योगाभ्यास बुद्धि का बढ़ाना सत्य धर्म की निष्ठा और अधर्म का सर्वथा त्याग करते रहें। जो २ पढ़ने में विघ्नरूप कर्म हों उन को छोड़ कर पूर्ण विद्या को प्राप्त करें इत्यादि दोनों के गुण कर्म हैं॥

(प्र०) सत्य और असत्य का निश्चय किस प्रकार से होता है क्यों कि जिस को एक सत्य कहता है दूसरा उसी को मिथ्या बतलाता है उस का निर्णय करने में क्या २ निश्चित साधन है॥

(उ०) पांच हैं। उन में प्रथम ईश्वर उस के गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या दूसरा सृष्टिक्रम तीसरा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण चौथा आप्तों का आचार उपदेश ग्रन्थ और सिद्धान्त और पांचवां अपने आत्मा की साक्षी अनुकूलता जिज्ञासुता पवित्रता और विज्ञान। ईश्वरादि से परीक्षा करना उस को कहते हैं कि जो २ ईश्वर ईश्वर के न्याय आदि गुण पक्षपात रहित सृष्टि बनाने का कर्म और सत्य न्याय दयालुता परोपकारता आदि स्वभाव और वेदोपदेश से सत्य और धर्म ठहरे वही सत्य और धर्म। और जो २ असत्य और अधर्म ठहरे वही असत्य और अधर्म है जैसे कोई कहे कि विना कारण और कर्त्ता के कार्य्य होता है सो सर्वथा मिथ्या जानना इस से यह सिद्ध होता है कि जो सृष्टि की रचना करने हारा पदार्थ है वही ईश्वर, और उस के गुण कर्म स्वभाव वेद और सृष्टि क्रम से ही निश्चित जाने जाते हैं। दूसरा। सृष्टिक्रम उस को कहते हैं कि जो २ सृष्टिक्रम अर्थात् सृष्टि के गुण, कर्म और स्वभाव से विरुद्ध हो वह मिथ्या और अनुकूल हो वह सत्य कहाता है। जैसे कोई कहे कि विना मा, बाप के लड़का, कान से देखना आंख से बोलना आदि होता वा हुआ है ऐसी २ बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या और माता पिता से सन्तान कान से सुनना और आंख से देखना आदि सृष्टिक्रम के अनुकूल होने से सत्य ही हैं। तीसरा प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से परीक्षा करना उस को कहते हैं कि जो २ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक २ ठहरे वह सत्य और जो २ विरुद्ध ठहरे वह मिथ्या समझना चाहिये जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह क्या है दूसरे ने कहा कि पृथिवी यह प्रत्यक्ष इस को देखकर इसके कारण का निश्चय करना। यह अनुमान, जैसे विना बनाने हारे के घर नहीं बन सकता वैसा ही सृष्टि का बनाने हारा ईश्वर भी बड़ा कारीगर है

यह दृष्टान्त उपमान और सत्योपदेष्टाओं का उपदेश वह शब्द । भूतकालस्थ पुरुषों की चेष्टा सृष्टि आदि पदार्थों की कथा आदि को ऐतिह्य । एक बात को सुन कर विना सुने कहे प्रसंग से दूसरी बात को जान लेना यह अर्थापत्ति, कारण से कार्य्य होना आदि को सम्भव और आठवां अभाव अर्थात् किसी ने किसी से कहा कि जल ले आ उस ने वहां जल के अभाव को जान कर तर्क से जाना कि जहां जल है वहां से ले आ के देना चाहिये यह अभाव प्रमाण कहाता है इन आठ प्रमाणों से जो विपरीत न हो वह २ सत्य और जो २ उलटा हो वह २ मिथ्या है। आप्तों के आचार और सिद्धान्त से परीक्षा करना उस को कहते हैं कि जो २ सत्यवादी सत्यकारी सत्यमानी पक्षपात रहित सब के हितैषी विद्वान् सब के सुख के लिये प्रयत्न करें वे धार्मिक लोग आप्त कहाते हैं। उन के उपदेश, आचार ग्रन्थ और सिद्धान्त से जो युक्त हो वह सत्य और जो विपरीत हो वह मिथ्या है। आत्मा से परीक्षा उस को कहते हैं कि जो २ अपना आत्मा अपने लिये चाहे सो सब के लिये चाहना और जो २ न चाहें सो २ किसी के लिये न चाहना जैसा आत्मा में वैसा मन में जैसा मन में वैसा क्रिया में होने को जानने जानने की इच्छा शुद्ध भाव और विद्या के नेत्र से देख के सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिये। इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से पढ़ाने पढ़ने हारे तथा सब मनुष्य सत्याऽसत्य का निर्णय करके धर्म का ग्रहण और अधर्म का परित्याग करें और करावें ॥

(प्र०) धर्म और अधर्म किस को कहते हैं

(उ०) जो पक्षपात रहित न्याय सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग पांचो परीक्षाओं के अनुकूल आचरण ईश्वराज्ञा का पालन परोपकार करना रूप धर्म और जो इस से विपरीत वह अधर्म कहाता है क्योंकि जो सब के अविरुद्ध वह धर्म और जो परस्पर विरुद्धाचरण है सो

अधर्म क्यों कर न कहावे गा देखो किसी ने किसी से पूछा कि सत्य क्या है उस से उस ने उत्तर दिया जो मैं मानता हूं और जो वह मानता है, वा जो मैं मानता हूं वह क्या है। उस ने कहा कि अधर्म है यही पक्षपात से मिथ्या और विरुद्धाचार अधर्म और जब तीसरे ने दोनों से पूछा कि सत्य बोलना धर्म अथवा असत्य तब दोनों ने उत्तर दिया कि सत्य बोलना धर्म और असत्य बोलना अधर्म है इसी का नाम धर्म जानो। परन्तु यहां पांच परीक्षा की युक्ति से सत्य और असत्य का निश्चय करना योग्य है ॥

(प्र०) जब २ सभा आदि व्यवहारों में जावें तब २ कैसे २ वर्त्तें ॥

(उ०) जब सभा में जावें तब दृढ़ निश्चय कर लेवें कि मैं सत्य को जीतूं और असत्य को हराऊं गा। अभिमान न रक्खे अपने को बड़ा न माने। अपनी बात का कोई खण्डन करे उस पर क्रुद्ध वा अप्रसन्न न हों जो कोई कहे उस के वचन को ध्यान दे कर सुन के जो उस में कुछ असत्य भान हो तो उस अंश का खण्डन अवश्य करे और जो सत्य होतो प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करे बड़ाई छोटाई न गिने व्यर्थ बकवाद न करे कभी मिथ्या का पक्ष न करे और सत्य को कदापि न छोड़े ऐसी रीति से बैठे वा उठे कि जिस से किसी को बुरा विदित न हो सर्वहित पर दृष्टि रक्खे जिस से सत्य की बढ़ती और असत्य का नाश हो उस को करे। सज्जनों का संग करे और दुष्टों से अलग रहे। जो २ प्रतिज्ञा करे वह २ सत्य से बिरुद्ध न हो और उस को सर्वदा यथावत् पूरी करे इत्यादि कर्म्म सब सभा आदि व्यवहारों में करें ॥

(प्र०) जड़बुद्धि और तीव्रबुद्धि किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो आप तो समझ हो न सके परन्तु दूसरे के समझाने से भी न समझे वह जड़बुद्धि और जो समझाने से झटपट समझे और

थोड़े ही समझाने से बहुत समझ जावे वह तीव्रबुद्धि कहाता है यहां महाजड़ और विद्वान् का दृष्टान्त सुनो कहीं एक रामदास वैरागी का चेला भूपालदास पाठ करता २ कुएपर पानी भरने को गया वहां एक पण्डित बैठा था उस ने अशुद्ध पाठ सुन कर कहा कि तूं । श्री गनेसा-यनमः । ऐसा घोखता है सो शुद्ध नहीं है किन्तु । श्री गणेशायनमः । ऐसा शुद्ध पाठ कर तब वह बोला कि मेरे महन्त जी बड़े पण्डित हैं उन ने जैसा मुझ को सुनाया है वैसा ही घोखूं गा वह पानी भर कर अपने गुरु के पास जा के कहा कि महाराज जी एक बम्मन् मेरे पाठ को असुद्ध बतलाता है तब खाकी जी ने चेलों से कहा कि उस बम्मन् को यहां बुला लाओ वह गुरु का फटकारा मेरे चेले को क्यों बहकाता और शुद्ध का अशुद्ध क्यों बतलाता है । चेला गया पण्डित जी को बुला लाया पण्डित से महन्त बोले कि तू इस के कितने प्रकार के पाठ जानता है पण्डित ने कहा कि एक प्रकार का । महन्त जी ने कहा कि तू कुछ भी नहीं जानता है देख मैं तीन प्रकार का पाठ जानता हूं । एक—स्री गनेसाजनम । दूसरा -स्री गनेसापनम । तीसरा--स्रीगनेसायनम । (पण्डित) महन्त जी तुम्हारे पाठ में पांच दोष हैं प्रथम श, का, स,। ण, का,न,। शा, का। सा। । य। का ज, प, बोलना और विसर्जनीय का न बोलना पांच अशुद्ध हैं महन्त जी बोले चलबे गुरु के बड़े घर में सब शुद्ध है। पण्डित चुप कर चले आये क्योंकि ॥ सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रकथितं मूर्खस्य ना-स्त्यौषधम् ॥ सब का औषध शास्त्र में कहा है परन्तु शठ मनुष्यों का औषध नहीं कहा। ऐसे हठी मनुष्यों से अलग रहे जो वे सुधरा चाहें तो विद्वान् उपदेश करके उन को अवश्य सुधारें ॥

(प्र०) जो माता पिता आचार्य्य और अतिथि अधर्म करें और कराने का उपदेश करें तो मानना चाहिये वा नहीं ॥

(उ०) कदापि नहीं ॥ कुमाता कुपिता सन्तानों को बुरे उपदेश करते हैं कि बेटा बिटिया तेरा विवाह शीघ्र करदें गे किसी की चीज पावे उठा लाना कोई एक गाली दे तो उस को तू पचास गाली दे लड़ाई झगड़ा खेल चोरी जारी मिथ्याभाषण, भांग, मद्य, गांजा, चरस, अफीम, खाना, पीना आदि कर्म्म करने में कुछ दोष नहीं क्योंकि अपनी कुल परंपरा है । सुनो प्रमाण ॥ कुलधर्म्मः सनातनः ॥ जो कुल में धर्म पहिले से चला आता है उस के करने में कुछ भी दोष नहीं ॥ सुसन्तान वाले जो तुमने शीघ्र विवाह करना किसी की चीज उठा लाना आदि कर्म्म कहे वे दुष्ट मनुष्यों के काम हैं श्रेष्ठों के नहीं किन्तु श्रेष्ठ तो ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ कर स्वयंवर अर्थात् पूर्ण युवा अवस्था में दोनों की प्रसन्नता पूर्वक विवाह करना । किसी की क्रोड़ों की चीज जंगल में भी पड़ी देख कर कभी ग्रहण करने की मन में भी इच्छा न करना आदि कर्म किया करते हैं । जो २ तुम्हारे उत्तम कर्म्म और उपदेश हैं उन २ को तो हम ग्रहण करते हैं अन्य को नहीं परन्तु तुम कैसे ही हो हम को तन, मन, धन से तुम्हारी सेवा करना परम धर्म्म है क्योंकि जैसी तुम ने बाल्यावस्था में हमारी सेवा की है वैसी तुम्हारी सेवा हम क्यों न करें । कुसन्तान आह । श्रेष्ठ माता पिता आचार्य्य अतिथियों से अभागिये सन्तान कहते हैं कि हम को खूब खिलाओ पिलाओ खेलने दो हमारे लिये कमाया करो जब तुम मरजाओ गे तब हम ही को सब काम करना पड़ेगा । शीघ्र विवाह कर दो नहीं तो हम इधर उधर लीला करें हीं गे बाग में जा के नाच तमाशे करें गे वा वैरागी हो जायंगे पढ़ने में बड़ा कष्ट होता है हम को पढ़ के क्या करना है क्योंकि हमारी सेवा करने वाले तुम तो बने ही हो हम को सैल सपट्टा सवारी सिकारी नाच खाने पीने ओढ़ने पहरने के लिये खूब दिया करो नहीं तो हम जब जवान होंगे तब तुम

को समझ लेंगे। दंडादण्डि नखानखि, केशाकेशि, मुष्टामुष्टि युद्धमेव भविष्यत्यन्यत्किम्। ऐसे २ सन्तान दुष्ट कहाते हैं। उत्तम माता आदि उन से कहते हैं कि सुनो लड़को अभी तुम्हारो पढ़ने गुनने सत्सङ्ग करने अच्छी २ बात सीखने वीर्य्यनिग्रह और आचार्य्य आदि की सेवा करने विद्वान् होने शरीर और आत्मा की पूर्ण युवावस्था आदि उत्तम कर्म्म करने की अवस्था है जो चूको गे तो फिर पछतावो गे पुनः ऐसा समय तुम को मिलना अतिकठिन है क्योंकि जब तक हम घर का और तुम्हारे खाने पीने आदि का प्रबन्ध करने वाले हैं तबतक तुम सुशिक्षा ग्रहण पूर्वक सर्वोत्कृष्ट विद्यारूपी धन को संचित करो यही अक्षय धन है कि जिस को चोर आदि न ले सकते न भार होता और जितना दान करो उतना ही अधिक २ बढ़ता जाता है। इस के होने से जहां रहो गे वहां सुखी और प्रतिष्ठा पाओ गे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के सम्बन्धि कर्म्मों को जान कर सिद्ध कर सको गे। हम जब तुम को विद्यारूप श्रेष्ठगुणों से अलंकृत देखें गे तभी हम को परम संतोष होगा और जो तुम कोई दुष्ट काम करो गे तो हम अपना भी अभाग्य समझें गे क्योंकि हमारे कौन से पापों के फल से हम को दुष्ट सन्तान मिले क्या तुम नहीं देखते कि जिन मनुष्यों को राज्य धन प्राप्त भी है परन्तु विद्या और उत्तम शिक्षा से विना नष्ट भ्रष्ट हो जाते और श्रेष्ठ विद्या सुशिक्षा से युक्त दरिद्र भी राज्य और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं तुम को चाहिये कि—

यान्यस्माक२ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥ तैत्तिरीय आरण्यके प्रपाठके ७। अनुवाक। ११।

जो २ हमारे उत्तम चरित्र हैं सो २ करो और कभी हम भी बुरे काम करें उन को कभी मत करो इत्यादि उत्तम उपदेश और कर्म करने और कराने हारे माता पिता और आचार्य्य आदि श्रेष्ठ कहाते हैं॥

(प्र०) राजा प्रजा और इष्ट मित्र आदि के साथ कैसा २ व्यवहार करें ॥

(उ०) राजपुरुष प्रजा के लिये सुमाता और सुपिता के समान और प्रजा पुरुष राजसम्बन्ध में सुसंतान के सदृश वर्त्त कर परस्पर आनन्द बढ़ावें। मित्र मित्र के साथ सत्य व्यवहारों के लिये आत्मा के समान प्रीति से वर्त्तें परन्तु अधर्म्म के लिये नहीं पड़ोसी के साथ ऐसा वर्त्तमान करें कि जैसा अपने शरीर के लिये करते हैं वैसे ही मित्रादि के लिये भी कर्म क्रिया करें स्वामी सेवक के साथ ऐसे वर्त्तें कि जैसा अपने हस्त-पादादि अंगों की रक्षा के लिये वर्तते हैं सेवक स्वामियों के लिये ऐसे वर्त्तें कि जैसे अन्न जल वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिये होते हैं ॥

(प्र०) ब्रह्मचर्य का क्या २ नियम है ? ॥

(उ०) कम से कम पच्चीस २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष और सोलह वर्ष पर्यन्त कन्या को ब्रह्मचर्य सेवन अवश्य करना चाहिये। और अड़तालीसवें वर्ष से अधिक पुरुष और चौबीस से अधिक कन्या ब्रह्मचर्य का सेवन न करें किन्तु इस के उपरान्त गृहाश्रम का समय है ॥

(प्र०) प्रमादी ब्रूते। पागल मनुष्य कहता है कि सुनो जी कन्याओं का पढ़ना शास्त्रोक्त नहीं क्योंकि जब वे पढ़ जावें गी तो मूर्ख पति का अपमान करके इधर उधर पत्र भेज कर अन्य पुरुषों से प्रीति जमा के व्यभिचार किया करें गी ॥

(उ०) सज्जनः समाधत्ते। श्रेष्ठ मनुष्य उस को उत्तर देता है सुनो जी तुम्हारे कहने से यह आया कि किसी पुरुष को भी न पढ़ना चाहिये क्योंकि वह भी पढ़ कर मूर्ख स्त्री का अपमान और डाक गाड़ी चला कर इधर उधर अन्य स्त्रियों के साथ सैल सपाटा किया करे गा ॥

(प्र०) प्रमादी। हां पुरुष भी न पढ़े तो अच्छी बात है क्योंकि पढ़े भये मनुष्य चतुराई से दूसरों को धोखा दे कर अपमान करके अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं ॥

(उ०) सज्जन । सुनो जी यह विद्या पढ़ने का दोष नहीं किन्तु आप जैसे मनुष्यों के सङ्ग का दोष है और जो पढ़ना पढ़ाना धर्म्म और ईश्वर की विद्या से विरुद्ध है सो तो प्रायः बुरे काम का कारण देखने में आता और जो पढ़ना पढ़ाना उक्त विद्या से सहित है वह तो सब के सुख और उपकार ही के लिये होता है ॥

(प्र०) कन्याओं के पढ़ने में वैदिक प्रमाण कहां है ॥

(उ०) सुनो प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ अ० वे० कां० ११ । अ० ३ । मं० १८ ॥

अर्थ—जैसे लड़के लोग ब्रह्मचर्य करते हैं वैसे कन्या लोग ब्रह्मचर्य करके वर्णोच्चारण से लेकर वेदपर्यन्त शास्त्रों को पढ़ कर प्रसन्न करके स्वेच्छा से पूर्ण युवा अवस्था वाले विद्वान् पति को वेदोक्त रीति से ग्रहण करे ॥ क्या अधर्म्मी से भिन्न कोई ऐसा भी मनुष्य होगा कि किसी पुरुष वा स्त्री को विद्या के पढ़ने से रोक कर मूर्ख रक्खा चाहे और वेदोक्त प्रमाण का अपमान करके अपना कल्याण किया चाहे ॥

(प्र०) विद्या को किस २ क्रम से प्राप्त हो सकता है ॥

(उ०) वर्णोच्चारण, व्यवहार की शुद्धि पुरुषार्थ धार्मिक विद्वानों का संग विषयकथाप्रसङ्ग का त्याग सुविचार से व्याकरण आदि शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जान कर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय जिस २ विद्या के लिये जो २ साधनरूप सत्य ग्रन्थ हैं उन को पढ़ कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं ॥

(प्र०) विना पढ़े हुए मनुष्यों की क्या गति होगी ॥

(उ०) दो, एक अच्छी और दूसरी बुरी । अच्छी उस को कहते

हैं कि जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रक्खे और वह धर्म्माचरण किया चाहे तो विद्वानों के सङ्ग और अपने आत्मा की पवित्रता से अविरुद्धता से धर्म्मात्मा अवश्य हो सकता है। क्योंकि सब मनुष्यों को विद्वान् होने का तो सम्भव ही नहीं परन्तु धार्मिक होने का सम्भव सब के लिये है कि जैसे अपने लिये सुख की प्राप्ति और दुःख के त्याग मान्य होने अपमान के न होने आदि की अभिलाषा करते हैं तो दूसरों के लिये क्यों न करनी चाहिये जब किसी की कोई चोरी वा किसी से झूंठा ज्ञाल लगाता है तो क्या उस को अच्छा लगता और क्या जिस २ कर्म के करने में अपने आत्मा को शंका लज्जा और भय नहीं होता वह २ धर्म किसी को विदित नहीं होता। क्या जो कोई विरोध अर्थात् आत्मा में कुछ और वाणी में कुछ भिन्न और क्रिया में विलक्षणता करता है वह अधर्मी और जिस के जैसा आत्मा में वैसा वाणी और जैसा वाणी में वैसा ही क्रिया में आचरण है वह धर्मात्मा नहीं है। प्रमाण—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ॥
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ १ ॥
य० । अ० ४० । मं० ३ ॥

अर्थ—(ये) जो (आत्महनः) आत्महत्यारे अर्थात् आत्मस्थ ज्ञान से विरुद्ध कहने मानने और करने हारे हैं (ते) वे ही (लोकाः) लोग (असुर्य्या नाम) असुर अर्थात् दैत्य राक्षस नाम वाले मनुष्य हैं और वे ही (अन्धेन तमसा वृताः) बड़े अधर्मरूप अन्धकार से युक्त हो के जीते हुए और मरण को प्राप्त हो कर (तान्) दुःखदायक देहादि पदार्थों को (अभिगच्छन्ति) सर्वथा प्राप्त होते हैं और जो आत्मरक्षक अर्थात् आत्मा के अनुकूल ही कहते, मानते और आचरण करते हैं वे मनुष्य

विद्यारूप शुद्धप्रकाश से युक्त हो कर देव अर्थात् विद्वान् नाम से प्रख्यात हैं वे ही सर्वदा सुख को प्राप्त हो कर मरने के पीछे भी आनन्दयुक्त देहादि पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥

(प्र०) विद्या और अविद्या किस को कहते हैं ॥

(उ०) जिस से पदार्थ यथावत् जान कर न्याययुक्त कर्म किये जावें वह विद्या और जिस से किसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान न हो कर अन्यायरूप कर्म किये जांय वह अविद्या कहाती है ॥

(प्र०) न्याय और अन्याय किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो पक्षपात रहित सत्याचरण करना है वह न्याय और जो पक्षपात से मिथ्याचरण करना है वह अन्याय कहाता है ॥

(प्र०) धर्म्म किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो न्यायाचरण सब के हित का करना आदि कर्म हैं उन को धर्म और जो अन्यायाचरण सब के अहित के काम करना हैं उन को अधर्म जानो ॥

महामूर्ख का लक्षण ।

एक प्रियादास का चेला भगवान्दास अपने गुरु से बारह वर्ष पर्यन्त पढ़ा एक दिन उन से पूछा कि महाराज मुझ को संस्कृत बोलना नहीं आया, गुरु बोले सुनबे पढ़ने पढ़ाने से विद्या नहीं आती किन्तु गुरु की कृपा से आ जाती है जब गुरु सेवा से प्रसन्न होता है तब जैसे कुंजियों से ताला खोल कर मकान के सब पदार्थ झट देखने में आते हैं वे ऐसी युक्ति बतला देते हैं कि हृदय के कपाट खुल जा कर सब पदार्थविद्या तत्क्षण आ जाती हैं। सुन संस्कृत बोलने की तो सहज युक्ति है। (भगवान् दास) महाराज जी वह क्या है। (गुरु) संसार में जितने शब्द संस्कृत वा देश भाषा में हों उन पर एक २ बिन्दु धरने से सब शुद्ध

संस्कृत हो जाते हैं अच्छा तो महाराज जी लोटा, जल, रोटी, दाल, शाक आदि शब्दों पर विन्दु धर के कैसे संस्कृत हो जाते हैं। देखो। लोटां। जलं। रोटीं। दालं। शाकं। चेला बोला वाह २ गुरु के विना क्षणमात्र में पूरी विद्या कौन बतला सकता है। भगवानदास ने अपने आसन पर जा कर विचार के यह श्लोक बनाया—

बापं आंजां नमं हकुंत्यं परं पाजं तथैं वं चं
मयां भगवांन्दासेनं गीतां टीकां करोम्यहंम् ॥१॥

जब उस ने प्रातःकाल उठ कर हर्षित हो के गुरु के पास जा कर श्लोक सुनाया तब तो प्रियादास जी भी बहुत प्रसन्न हुए कि जो चेले हों तो तेरे ही समान गुरु के वचन पर विश्वासी और जो गुरु हो तो मेरे सदृश हो। ऐसे मनुष्यों का क्या औषध है विना अलग रहने के ॥

(प्र०) विद्या पढ़ते समय वा पढ़ के किसी दूसरे को पढ़ावें वा नहीं ॥

(उ०) बराबर पढ़ाता जाय। क्योंकि पढ़ने से पढ़ाने में विद्या की वृद्धि अधिक होती है। पढ़ के आप अकेला विद्वान् रहता और पढ़ाने से दूसरा भी हो जाता है। उत्तरोत्तर काल में विद्या की वृद्धि होती ही है जो विद्या को प्राप्त होता है वह मनुष्य परोपकारी धार्मिक अवश्य होता है। क्योंकि जैसे अंधा कुए में गिर पड़ता है वैसे देखने हारा कभी नहीं गिरता और अविद्या की हानि होने आदि प्रयोजन पढ़ाने से ही सिद्ध होते हैं ॥

(प्र०) क्षुद्रबुद्धिरुवाच। सभी विद्वान् हो जावें गे तो हम को कौन पूछें गे और आप ही आप सब पुस्तकों को बांच कर अर्थ समझ लेंगे पूजापाठ में भी न बुलावें गे विशेष विघ्न धनाढ्य और राजाओं के पढ़ाने में है क्योंकि उन से हम लोगों की बड़ी जीविका होती है जब किसी शूद्र ने उन के पास पढ़ने की इच्छा से जा के कहा कि मुझ को आप

कुछ पढ़ाइये । (अल्पबुद्धि) तूं कौन है क्या काम करता और तेरे घर में क्या व्यवहार होता है ॥

(उ०) मैं तो महाराज आप का दास शूद्र हूं कुछ जिमीदारी खेती बाड़ी भी होती और घर में कुछ लेन देन का भी व्यवहार है । (नष्टमति) छी छी छी तुझ को सुनने और हम को सुनाने का भी अधिकार नहीं है जो तूं अपना धर्म्म छोड़ कर हमारा धर्म्म करे गा तो क्या नरक में न पड़ेगा ? । हां तुझ को वेदों से भिन्न ग्रन्थों को कथा सुनाने का तो अधिकार है जब तेरी सुनने की इच्छा हो तब हम को बुला लेना सुना देंगे परन्तु आप से आप मत बांच लेना नहीं तो अधर्मी हो जावे गा जो कुछ भेट पूजा लाया हो सो धर के चला जा । और सुन हमारे वचन को मान ले नहीं तो तेरी मुक्ति कभी नहीं होगी खूब कमा और हमारी सेवा किया कर इसी में तेरा कल्याण और तुझ पर ईश्वर प्रसन्न होगा । (दास) महाराज मुझ को तो पढ़ने की बहुत इच्छा है, क्या विद्या का पढना बुरी चीज है कि दोष लग जाय । (बकवृत्ति) बस २ तुझ को किसी ने बहका दिया है जो हमारे सामने उत्तर प्रत्युत्तर करता है । हाय! क्या करें कलियुग आ गया विद्या को पढ़कर हमारा उपदेश नहीं मानते बिगड़ गये । (दास) क्या महाराज हमारे ही ऊपर कलियुग ने चढ़ाई कर दी कि जो हम ही को पढ़ने और मुक्ति से रोकता है । (स्वार्थी) हां २ जो सतयुग होता तो तूं हमारे सामने ऐसा बर २ कर सकता ? । (दास) अच्छा तो महाराज जो आप नहीं पढाते तो हम को जो कोई पढ़ावे गा उस के चेले हो जावें गे । (अंधकारी) सुन२ कलियुग में और क्या होना है । (दास) आप की हम सेवा करें उसके बदले आप हम को क्या देंगे । (मार्जारलिंगी) आशीर्वाद (दास) उस आशीर्वाद से क्या होगा (धूर्त्त) तुम्हारा कल्याण । (दास) जब आप

हमारा कल्याण चाहते हैं तो क्या विद्या के पढ़ने से अकल्याण होता है (पोपउवाच) अब क्या तूं हम से शास्त्रार्थ करता है ? ॥

(प्र०) पोप का क्या अर्थ है ॥

(उ०) यह शब्द अन्यदेश की भाषा का है वहां तो इस का अर्थ पिता और बड़े का है परन्तु यहां जो केवल धूर्त्तता करके अपना मतलब सिद्ध करने हारा हो उसी का नाम है ॥

(प्र०) जो विद्या पढ़ा हो और उस में धार्मिकता न हो तो उस को विद्या का फल होगा वा नहीं ? ॥

(उ०) कभी नहीं क्योंकि विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्म्मिक होना अवश्यं है जिस ने विद्या के प्रकाश से अच्छा जान कर न किया और बुरा जान कर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरी जानता हुआ करता और साहूकारी को अच्छी जान के भी नहीं करता वैसा ही जो पढ़ के भी अधर्म्म को नहीं छोड़ता और धर्म को नहीं करने हारा मनुष्य है ॥

(प्र०) जब कोई मनुष्य मन से बुरा जानता है परन्तु किसी विशेष भय आदि निमित्तों से नहीं छोड़ सकता और अच्छे काम को नहीं कर सकता तब भी क्या उस को दोष वा गुण होता है अथवा नहीं ॥

(उ०) दोष ही होता क्योंकि जो उस ने अधर्म्म कर लिया उस का फल अवश्य होगा और जान कर भी धर्म्म को न किया उस को सुखरूप फल कुछ भी नहीं होगा जैसे कोई मनुष्य कुए में गिरना बुरा जान के भी गिरे क्या उस को दुःख न और अच्छे मार्ग में चलना उत्तम जान कर भी न चले उस को सुख कभी होगा ?! इस लिये ॥

यथा मतिस्तथोक्तिर्यथोक्तिस्तथामतिः ।
सत्पुरुषस्य लक्षणमतो विपरीतमसत्पुरुषस्येति ॥

यही सत्पुरुष का लक्षण है कि जैसा आत्मा का ज्ञान वैसा वचन और जैसा वचन वैसा ही कर्म्म करना और जिस का आत्मा से मन उस से वचन और वचन से विरुद्ध कर्म करना है वही असत्पुरुष का लक्षण है। इस लिये मनुष्यों को उचित है कि सब प्रकार का पुरुषार्थ करके अवश्य धार्मिक हों ॥

(प्र०) पुरुषार्थ किस को कहते और उस के कितने भेद हैं ॥

(उ०) उद्योग का नाम पुरुषार्थ और उस के चार भेद हैं। एक—अप्राप्त की इच्छा। दूसरा—प्राप्त की यथावत् रक्षा। तीसरा—रक्षित की वृद्धि और चौथा—बढ़ाये हुए पदार्थों का धर्म में खर्च करना पुरुषार्थ के भेद हैं ॥ जो २ न्याय धर्म्म से युक्त क्रिया से अप्राप्त पदार्थों की अभिलाषा करके उद्योग करना। उसी प्रकार उस की सब ओर से रक्षा करनी कि वह पदार्थ किसी प्रकार से नष्ट भ्रष्ट न हो जाय। उस को धर्म्मयुक्त व्यवहार से बढ़ाते जाना और बढ़े हुए पदार्थ को उत्तम व्यवहारों में खर्च करना ये चार भेद हैं ॥

(प्र०) किस २ प्रकार से किस २ व्यवहार में तन मन धन लगाना चाहिये ॥

(उ०) निम्नलिखित चारों में—विद्या की वृद्धि, परोपकार, अनाथों का पालन और अपने सम्बन्धियों की रक्षा। विद्या के लिये शरीर का आरोग्य और उस से यथायोग्य क्रिया करनी मन से अत्यन्त विचार करना कराना और धन से अपने सन्तान और अन्य मनुष्यों को विद्यादान करना कराना चाहिये। परोपकार के लिये शरीर और मन से अत्यन्त उद्योग और धन से नाना प्रकार के व्यवहार तथा कारखाने खड़े करने कि जिन में अनेक मनुष्य कर्म्म करके अपना २ जीवन सुख से किया करें। अनाथ उन को कहते हैं कि जिन का सामर्थ्य अपने पालन करने

का भी न हो जैसे कि बालक, वृद्ध, रोगी, अङ्ग भङ्ग आदि हैं उन को भी तन, मन, धन लगा कर सुखी रखें कि जिस २ से जो २ काम बन सके उस २ से वह २ कार्य्य सिद्ध करानां चाहिये कि जिस से कोई आलसी हो के नष्टबुद्धि न हो और अपने सन्तान आदि मनुष्यों के खान पान अथवा विद्या की प्राप्ति के लिये जितना तन, मन, धन लगाया जाय उतना थोड़ा है। परन्तु किसी को निकम्मा कभी न रहना और न रखना चाहिये ॥

(प्र०) विवाह करके स्त्री पुरुष आपस में कैसे २ वर्तें ॥

(उ०) कभी कोई किसी का अप्रियाचरण अर्थात् जिस २ व्यवहार से एक दूसरे को कष्ट होवे सो काम न करें जैसे कि व्यभिचार आदि, एक दूसरे को देख कर प्रसन्न हों एक दूसरे की सेवा करें। पुरुष भोजन वस्त्र आभूषण और प्रियवचन आदि व्यवहारों से स्त्री को सदा प्रसन्न रक्खें और घर के सब कृत्य उस के आधीन करें। स्त्री भी अपने पति से प्रसन्नवदन खान पान प्रेमभाव आदि से उस को सदा हर्षित रक्खें कि जिस से उत्तम सन्तान हों और सदा दोनों में आनन्द बढ़ता जाय ॥

(प्र०) ऐसा न करें तो क्या बिगाड़ है ॥

(उ०) सर्वस्वनाश। क्योंकि परस्पर प्रीति के विना न गृहाश्रम का किञ्चित् सुख न उत्तम सन्तान और न प्रतिष्ठा वा लक्ष्मी आदि श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कभी होती है। सुनो मनुजी क्या कहते हैं ॥

सन्तुष्टो भार्य्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ॥
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥ अ० ४ ॥

जिस कुलमें स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री आनन्दित रहती है उसी में निश्चित कल्याण स्थित रहता है परन्तु यह बात कब होगी कि जब ब्रह्मचर्य्य से विद्या शिक्षा ग्रहण करके युवावस्था में परस्पर परीक्षा करके

प्रसन्नता पूर्वक स्वयंवर हो विवाह करें क्योंकि—जितनी सुख की हानि विद्या उत्तम प्रजा और बाल्यावस्था में विवाह से होती है उतना ही सुख लाभ ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा की पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीति से विवाह करने से होता है जो मनुष्य परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उन के सन्तान भी ऐसे योग्य होते हैं कि लाखों में एक ही होते हैं कि जिन में बुद्धि बल पराक्रम धर्म्म और सुशीलतादि शुभ गुण पूर्ण हो के महाभाग्यशाली कहा कर अपने कुल को अतिप्रशंसित कर देते हैं ॥

(प्र०) मनुष्यपन किस को कहते हैं ॥

(उ०) इस मनुष्य जाति में एक ऐसा गुण है कि वैसा किसी दूसरी जाति में नहीं पाया जाता ॥

(प्र०) वह कौनसा है ॥

(उ०) जितने मनुष्य से भिन्न जातिस्थ प्राणी हैं उन में दो प्रकार का स्वभाव है । बलवान् से डरना निर्बल को डराना और पीड़ा दे कर अर्थात् दूसरे का प्राण तक निकाल के अपना मतलब साध लेना देखने में आता है जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उस को भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है परन्तु जो निर्बलों पर दया उन का उपकार और निर्बलों को पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से किञ्चित् मात्र भी भय शंका न करके इन को पर पीड़ा से हटा के निर्बलों की रक्षा तन, मन और धन से सदा करना है वही मनुष्य जाति का निज गुण है क्योंकि जो बुरे कामों के करने में भय और सत्य कामों के करने में किञ्चित् भी भय शंका नहीं करते वे ही मनुष्य धन्यवाद के पात्र कहाते हैं ॥

(प्र०) क्यों जी सर्वथा सत्य से तो कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता देखो व्यापार में सत्य बात कह दें तो किसी पदार्थ का विक्रय

न हो, हार जीत के व्यवहारों में मिथ्या साक्षी न खड़े करें तो हार हो जाय इत्यादि हेतुओं से सब ठिकानों में सत्यभाषणादि कैसे कर सकते हैं ? । (उ०) यह बात महामूर्खता की है जैसे किसी ग्राम में लाल बुजक्कड़ रहता था कि जिस को पांच सौ ग्राम वाले महापण्डित और एक गुरु मानते थे । एक रात में किसी राजा का हाथी उसी ग्राम के समीप हो कर कहीं स्थानान्तर को चला गया था उस के पग के चिन्ह जहां तहां मार्ग में बन रहे थे उन को देख के खेती करने हारे ग्रामीण लोगों ने परस्पर पूछा कि भाई यह किस का खोज है सब ने कहा कि हम नहीं जानते फिर सब की सम्मति से लाल बुजक्कड़ को बुला के पूछा कि तुम्हारे विना कोई भी मनुष्य इस का समाधान नहीं कर सकता कहो यह किस के पग का चिन्ह है जब वह रोया और रो कर हंसा तब सब ने पूछा कि तुम क्यों रोये और हंसे तब वह बोला कि जब मैं मर जाऊं गा तब ऐसी २ बातों का उत्तर बिना मेरे कौन दे सके गा और हंसा इस लिये कि इस का उत्तर तो सहज है सुनो । लाल बुजक्कड़ बूझिया और न बूझा कोई । पग में चक्की बांध के हिरना कूदा होई ॥ जो जंगल में हिरन होता है वह किसी जंगली मनुष्य की चक्की के पाटों को अपने पगों में बांध के कूदता चला गया है तब सुन कर सब लोगों ने वाह २ बोल कर उस को धन्यवाद दिया कि तुम्हारे सदृश पृथिवी में कोई भी पण्डित नहीं है कि ऐसी २ बातों का उत्तर दे सके । जब वह लाल बुजक्कड़ ग्राम की ओर आता ही था इतने में एक ग्रामीण की स्त्री जंगल से बेर ला के जो अपना लड़का छप्पर के खम्भे को पकड़ के खड़ा था उस को कहा कि बेटा बेर ले तब उस ने हाथों की अंजुली बांध के बेरों को ले लिया परन्तु जब छप्पर की थूनी हाथों के बीच में रहने से उस का मुख बेरतक न पहुंचा तब

लड़का रोने लगा उस को रोते देख कर उस की मा और बाप भी रोने लगे कि हाय मेरे लड़के को खम्भे ने पकड़ लिया रे ३। तब उस को सुन के अड़ोसी पड़ोसी भी रोने लगे कि हाय रे दैया इस के लड़के को खम्भे ने कैसा पकड़ लिया है कि छोड़ता ही नहीं। तब किसी ने कहा कि लाल बुजक्कड़ को बुलाओ उस के बिना कोई भी लड़के को नहीं छुड़ा सके गा। तब एक मनुष्य उस को शीघ्र बुला लाया फिर उस को पूछा कि यह लड़का कैसे छूट सकता है। तब वह बोला कि सुनो लोगो दो प्रकार से यह लड़का छूट सकता है एक तो यह है कि कुहाड़ ला के लड़के का एक हाथ काट डालो अभी छूट जाय और दूसरा उपाय यह है कि प्रथम छप्पर को उठा के नीचे धरो फिर लड़के को थूनी के ऊपर से उतार ले आओ तब लड़के का बाप बोला कि हम दरिद्र मनुष्य हैं हमारा छप्पर टूट जाय गा तो फिर छाना कठिन है तब लाल बुझक्कड़ बोला कि लाओ कुहाड़ा फिर क्या देख रहे हो कुहाड़ा ला के जब तक हाथ काटने को तैयार हुए तब तक दूसरे ग्राम से एक कुछ बुद्धिमती स्त्री भी हल्ला सुन कर वहां पहुंच कर देख के बोली कि इस का हाथ मत काटो मैं इस लड़के को छुड़ा देती हूं। जब वह खम्भे के पास जाके लड़के की अंजली के नीचे अपनी अंजलि करके बोली कि बेटा मेरे हाथ में बेर छोड़ दे तब वह बेर छोड़ के अलग हो गया फिर उस को बेर दे दिये खाने लगा। तब तो बहुत क्रुद्ध हो कर लालबुजक्कड़ बोला कि यह लड़का छः महीने के बीच मर जाय गा क्योंकि जैसा मैंने कहा था वैसा ही करते तो न मरता तब तो उस के मा बाप घबरा के बोले कि अब क्या करना चाहिये तब उस स्त्री ने समझाया कि यह बात झूठ है और जो हाथ के काटने से तो अभी यह मरजाता तो तुम क्या करते। मरण से बचने का कोई औषध

नहीं। तब उन का घबराहट छूट गया। वैसे जो मनुष्य महामूर्ख हैं वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से ही व्यवहार की सिद्धि होती है परन्तु जब किसी को कोई एक व्यवहार में झूठ समझ ले तो उस की प्रतिष्ठा और विश्वास सब नष्ट हो कर उस के सब व्यवहार नष्ट होते जाते और जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़ कर सत्य ही कहते हैं उन को लाभ ही लाभ होते हैं हानि कभी नहीं। क्योंकि सत्य व्यवहार करने का नाम धर्म और विपरीत का अधर्म है। क्या धर्म का सुखलाभरूपी और अधर्म का दुःखरूपी फल नहीं होता। प्रमाण—

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥यजुः॥ अ० १ मं० ५। सत्यमेव जयति नाऽनृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ तै० अ० कां० प्र० अ०। न सत्यात्परमो धर्मो नाऽनृतात्पातकं परम् ३। इत्यादि।

अर्थ—मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वथा झूठ व्यवहारों को छोड़ कर सत्य व्यवहारों का ग्रहण सदा करें ॥ १ ॥ क्योंकि सर्वदा सत्य ही का विजय और झूठ का पराजय होता है इस लिये जिस सत्य से चल के धार्मिक ऋषि लोग जहां सत्य की निधि परमात्मा है उस को प्राप्त होकर आनन्दित हुए थे और अब भी होते हैं उस का सेवन मनुष्य लोग क्यों न करें। यह निश्चित है कि न सत्य से परे कोई धर्म और न असत्य से परे कोई अधर्म है। इस से धन्य मनुष्य वे हैं जो सब व्यवहारों को सत्यही से करते और झूठ से युक्त कर्म किञ्चित्मात्र भी नहीं करते हैं। दृष्टान्त—एक किसी अधर्मी मनुष्य ने किसी अधर्मी बजाज की दुकान पर जा कर कहा कि यह वस्त्र कितने आने गज देगा वह बोला कि सोलह आने तुम भी कुछ कहो बजाज और ग्राहक दोनों जानते ही थे कि यह दश आने गज का कपड़ा है परन्तु अधर्मी झूठ

बोलने में कभी नहीं डरते। (ग्राहक) छः आने गज दो और सच २ लेने देने की बात करो। (बजाज)—अच्छा तो तुम को दो आने छोड़ देते हैं चौदह आने दो। (ग्राहक) है तो टोटा परन्तु सात आने लेलो। (बजाज)—अच्छा तो सच २ कहूं। ग्राहक—हां। बजाज—चलो एक आना टोटा भी सही तेरह आने दो तुम को लेना हो तो लो। ग्राहक—मैं सत्य २ कहताहूं कि इस का आठ आने से अधिक कोई भी तुम को न देगा। (बजाज)—तुम को लेना हो तो लो न लेना हो मत लो परमेश्वर की सौगन्द बारह आने गज तो मुझ को पड़ा है तुम को भला मनुष्य जान कर मैं दे देता हूं। ग्राहक—धर्म की सौगन्द मैं सच कहता हूं तुझ को देना हो तो दे पीछे पछतावे गा मैं तो दूसरे की दुकान से लेलूंगा क्या तुम्हारी एक ही दुकान है। नव आने गज दे दो नहीं तो मैं जाता हूं। (बजाज)—तुमने ऐसा कभी खरीदा भी है नव आने गज लाओ मैं सौ रुपये का लेता हूं। ग्राहक—धीरे २ चला कि मुझ को यह बुलाता है वा नहीं। (बजाज)—तिरछी नजर से देखता रहा कि देखें यह लौटता है वा नहीं जब न लौटा तब बोला सुनो इधर आओ। (ग्राहक)—क्या कहते हो नव आने पर दोगे। (बजाज)—ए लो धर्म से कहता हूं कि ग्यारह आने भी दोगे। ग्राहक—साढ़े नव आने लो कह कर कुछ आगे चला बजाज ने समझा कि गया हाथ से, अजी इधर आओ २। ग्राहक—क्यों तुम देर लगाते हो व्यर्थ काल जाता है। बजाज—मेरे बेटे की सौगन्द तुम इस को न लोगे तो पछताओ गे अब मैं सत्य ही कहता हूं साढ़े दश आने देदो नहीं तो तुम्हारी राजी। (ग्राहक)—मेरी सौगन्द तुमने दो आने अधिक लिये हैं अच्छा दश आने देता हूं इत ने का तो नहीं। (बजाज)—अच्छा सवादश आने भी दो गे। ग्राहक नहीं २। (बजाज)-अजी कुछ अधिक लो। (ग्राहक)—अच्छा नमूना ले जाते हैं। अब तुम्हारी दुकान देख ली फिर कभी आवें गे तो बहुत लेंगे।

बजाज ने नापने में कुछ सरकाया । (ग्राहक)—अजी देखें तो तुमने कैसा नापा । (बजाज)—क्या विश्वास नहीं करते हो हम साहूकार हैं वा ठट्ठा हैं हम कभी झूठ कहते और करते हैं—(ग्राहक) । हां जी तुम बड़े सच्चे हो । एक रुपैया कह कर दश आने तक आये छः आना घट गये अनेक सौगन्दें खाईं । (बाजाज)—वाह जी वाह तुम भी बड़े सच्चे हो छः आने कह कर दश आने तक देने को तैयार हो अनेक सोगन्दें खा२ कर आये सौदा झूठ के विना कभी नहीं हो सकता । (ग्राहक)—तू तो बड़ा झूठा है । (बजाज)—क्या तू नहीं है क्योंकि एक गज कपड़े के लिये कोई भी भला मनुष्य इतना झगड़ा करता है । (ग्राहक)—तू झूठा तेरा बाप, हमारी सात पीढ़ी में कोई झूठा भी हुआ है । (बाजाज)—तू झूठा तेरी सात पीढ़ी भी झूठी । ग्राहक ने ले जूता एक मार दिया बजाज ने गज चट मारा आड़ोसी पाड़ोसी दुकानदारों ने जैसे तैसे छुड़ाया । (बजाज)—चल २ जा तेरे जैसे लाखों देखे हैं । (ग्राहक)—चलबे तेरे जैसे जुवाचोर टट पुंजिये दुकानदार मैंने करोड़ों देखे हैं । आड़ोसी पाड़ोसी—अजी झूठ के विना कभी सौदा भी होता है जाओ जी तुम अपनी दुकान पर बैठो और जाओ तुम अपने घर को । (बजाज)—यह बड़ा दुष्ट मनुष्य है । ग्राहक—अबे मुखसम्हाल के बोल । बजाज—तू क्या कर लेगा । ग्राहक—जो मैं ने किया सो तैं ने देख लिया और कुछ देखना हो तो दिखला दूं । (बजाज)—क्या तूं गज से न पीटा जाय गा फिर दोनों लड़ने को दौड़े जैसे तैसे लोगों ने अलग २ कर दिये । ऐसे ही सर्वत्र झूठे लोगों की दुर्दशा होती है ॥ धार्मिकों का दृष्टान्त—(ग्राहक)—इस दुसाले का क्या मूल्य है । बजाज—पांच सौ रुपैये । (ग्राहक)—अच्छा लीजिये । (बजाज) लो दूसाला ॥ सच्चे दुकान वाले के पास कोई झूठा ग्राहक गया, इस दुसाले का क्या लो गे । (बजाज)—

अढ़ाई सौ रुपये (ग्राहक)—दो सौ लो । (सेठ)—जाओ यहां तुम्हारे लिये सौदा नहीं है । (ग्राहक)—अजी कुछ तो कम लो, (साहूकार)—यहां झूठ का व्यवहार नहीं है बहुत मत बोलो लेना हो तो लो नहीं चले जाओ । (ग्राहक)—दूसरी बहुत दुकानों में माल देख मूल्य करके फिर वहीं आ के अढ़ाई सौ रुपैये दे कर दुसाला ले गया ॥ सच्चा ग्राहक झूठे दुकानदार के पास जा कर बोला कि इस पीताम्बर का क्या लोगे । (बजाज)—पचीस रुपैये । (ग्राहक)—बारह रुपैये का है देना हो तो दो, कह कर चलने को लगा (बजाज)—अजी अठारह दो (ग्राहक)—नहीं । (बजाज)—चौदह दो । (ग्राहक)—नहीं । (बजाज)--तेरह दो । (ग्राहक)--नहीं (बजाज)--अच्छा तो साढ़े बारह ही दो । (ग्राहक)--नहीं । (बजाज)--सवाबारह दो । (ग्राहक)--नहीं (बजाज)-- अच्छा बारह का ही ले जाओ । (ग्राहक)--लाओ लो रुपैये । ऐसे धार्म्मिकों के सदा लाभ ही लाभ होता है और झूठों की दुर्दशा हो कर दिवाले ही निकल जाते हैं । इस लिये सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि सर्वथा झूठ को छोड़ कर सत्य ही से सब व्यवहार करें । जिस से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त हो कर सदा आनन्द में रहें ॥

(प्र०) मनुष्य का आत्मा सदा धर्म्म और अधर्म युक्त किस २ कर्म्म से होता है ॥

(उ०) जब तक मनुष्य सर्वान्तर्य्यामी सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्व कर्मों के साक्षी परमात्मा से नहीं डरते अर्थात् कोई कर्म्म ऐसा नहीं है जिस को वह न जानता हो । सत्य विद्या सुशिक्षा सत्पुरुषों का संग, उद्योग जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य्य आदि शुभ गुणों के होने और लाभ के अनुसार व्यय करने से धर्म्मात्मा होता है और जो इस से विपरीत है वह धर्म्मात्मा कभी नहीं हो सकता । क्योंकि जो राजा आदि अल्पज्ञ मनुष्यों से डरता

और परमेश्वर से भय नहीं करता वह क्यों कर धर्म्मात्मा हो सकता है क्योंकि राजा आदि के सामने बाहर की अधर्म्मयुक्त चेष्टा करने में तो भय होता है परन्तु आत्मा और मन में बुरी चेष्टा करने में कुछ भी भय नहीं होता क्योंकि ये भीतर का कर्म नहीं जान सकते। इस से आत्मा और मन का नियम करने हारा राजा एक आत्मा और दूसरा परमेश्वर ही है मनुष्य नहीं और वे जहां एकान्त में राजादि मनुष्यों को नहीं देखते वहां तो बाहर से भी चोरी आदि दुष्ट कर्म करने में कुछ भी शंका नहीं करते। दृष्टान्त—जैसे एक धार्म्मिक विद्वान् के पास पढ़ने के लिये दो नवीन विद्यार्थियों ने आ के कहा कि आप हम को पढ़ाइये विद्वान् अच्छा हम तुम को पढ़ावें गे परन्तु हम कहें सो एक काम तुम दोने जने कर लाओ। इस एक २ लड़के को एकान्त में ले जा के जहां कोई भी न देखता हो वहां इस का कान पकड़ कर दो, चार, बार शीघ्र २ उठा बैठा के धीरे से एक चपेटिका मार देना। दोनों को ले के चले एक ने तो चारों ओर देखा कि यहां कोई नहीं देखता उक्त काम करके झट चला आया, दूसरा पंडित के वचन के अभिप्राय को विचारने लगा कि मुझ को लड़का और मैं लड़के को भी देखता ही हूं फिर वहकाम कैसे कर सकता हूं पंडित के पास आया तब जो आया था उस से पंडित ने पूछा कि जो हम ने कहा था सो तू कर आया उस ने कहा हां दूसरे को पूछा कि तू भी कर आया वा नहीं उसने कहा नहीं क्योंकि आपने मुझको ऐसा कहा था कि जहां कोई न देखाता हो वहां यह काम करना सो ऐसा स्थान मुझ को कहीं भी नहीं मिल सकता प्रथम तो मैं इस लड़के को और लड़का मुझ को देखता ही था, पंडित ने कहा कि तू बुद्धिमान् और धार्मिक है मुझ से पढ़। दूसरे से कहा कि तूं पढ़ने के योग्य नहीं है यहां से चला जा वैसेही क्या कोई भी स्थान वा कर्म

है कि जिस को आत्मा और परमात्मा न देखता हो जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की साक्षी से अनुकूल कर्म करते हैं वेही धर्मात्मा कहाते हैं ॥

(प्र०) सब मनुष्यों को विद्वान् वा धर्मात्मा होने का संभव है वा नहीं॥

(उ०) विद्वान् होने का तो सम्भव नहीं परन्तु जो धर्मात्मा हुआ चाहें तो सभी हो सकते हैं अविद्वान् लोग दूसरों के धर्म में निश्चय नहीं करा सकते और विद्वान् लोग धार्मिक हो कर अनेक मनुष्यों को भी धार्मिक कर सकते हैं और कोई धूर्त मनुष्य अविद्वान् को बहका के अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है परन्तु विद्वान् को अधर्म में कभी नहीं चला सकता क्योंकि जैसे देखता हुआ मनुष्य कुए में कभी नहीं गिरता परन्तु अंधे को तो गिरने का सम्भव है। वैसे विद्वान् सत्यासत्य को जान के उस में निश्चित रह सकते और अविद्वान् ठीक २ स्थिर नहीं रह सकते हैं॥ दृष्टान्त। जैसे एक कोई अविद्वान् राजा था उस के राज्य में किसी ग्राम में कोई मूर्ख भिक्षुक ब्राह्मण था उस की स्त्री ने कहा कि आज काल भोजन भी नहीं मिलता बहुत कष्ट है तुम पहिले दानाध्यक्ष के पास जाना वह राजा के पास ले जाके कुछ जप अनुष्ठान लगवा देगा उस ने वैसा ही किया जब उस ने दानाध्यक्ष के पास जा के अपना हाल कहा कि आप मेरी कुछ जीविका करा दीजिये। (दानाध्यक्ष) मुझ को क्या देगा। (अर्थी) जो तुम कहो। (दानाध्यक्ष) अर्द्धमर्द्धं स्वाहा। महाराज मैं नहीं समझा तुम ने क्या कहा। (दानाध्यक्ष)—जो तूं आधा हम को दे और आधा तूं ले तो तेरी जीविका लगा दें। (स्वार्थी)—जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। अच्छा चल राजा के पास—(स्वार्थी)—चलो खुशामदियों से सभा भरी थी वहां दोनों पहुंचे दानाध्यक्ष ने कहा कि यह गोब्राह्मण है इस की कुछ जीविका कर दीजिये यह आप का जप, अनुष्ठान किया करे गा। (राजा)

अच्छा जो आप कहें (दानाध्यक्ष)—दश रुपये मासिक होने चाहिये । (राजा) बहुत अच्छा । (दानाध्यक्ष) छः महीने का प्रथम मिलना चाहिये (राजा)--अच्छा कोशाध्यक्ष इस को छः महीने का जोड़ कर दे दो (कोशाध्यक्ष) जो आज्ञा । जब स्वार्थी रुपये लेने को गया तब कोशाध्यक्ष बोले मुझ को क्या देगा । (स्वार्थी) आप भी एक दो ले लीजिये । कोशाध्यक्ष जी २ दश से कम हम नहीं लेंगे नहीं तो आज रुपये न मिलें गे फिर आना जब तक दानाध्यक्ष ने एक नौकर भेज दिया कि उस को हमारे पास ले आओ तब तककोशाध्यक्ष जी ने भी दश रुपये उड़ा लिये पचास रुपये ले के चला मार्ग में। (नौकर) कुछ मुझ को भी दे । (स्वार्थी)—अच्छा भाई तू भी एक रुपैया ले ले । (नौकर) । लाओ । जब दरवाजे पर आया तब सिपाहियों ने रोका कौन तुम क्या ले जाते हो । (नौकर)--मैं दानाध्यक्ष का नौकर हूं (सिपाही) यह कौन है। (नौकर) जपानुष्ठानी । (सिपाही)—कुछ मिला । (नौकर)—यही जाने। कहो भाई क्या मिला (स्वार्थी) । जितना तुम लोगों से बच कर घर पहुंचे सो ही मिला । (सिपाही) हम को भी कुछ देता जा । (स्वार्थी) लो आठ ॥) आने (सिपाही) । लाओ। जब तक दानाध्यक्ष घबराया कि वह भाग तो नहीं गया । दूसरे नौकर से बोले कि देखो वह कहां गया तब तक वे स्वार्थी आदि आ पहुंचे। (दानाध्यक्ष)। लाओ। रुपैये कहां हैं । (स्वार्थी) । ये हैं अड़तालीस । (दानाध्यक्ष) वाह वाह बारह रुपैये कहां गये। (स्वार्थी) । जैसा हुआ था वैसा कह दिया । (दानाध्यक्ष) अच्छा तो चार मेरे गये और आठ तेरे। (स्वार्थी) अच्छा जैसी आप की इच्छा हो । तब छब्बीस लिये दानाध्यक्ष ने । और बाईस (स्वार्थी) ने ले के कहा कि मैं घर हो आऊं कल आ जाऊं गा । वह दूसरे दिन आया उस से दानाध्यक्ष ने कहा कि तूं गंगा जी पर जा कर राजा का जप कर और ले यह धोती, अंगोछा

पंचपात्र, माला, और गोमुखी वह ले के गङ्गा पर गया, वहां स्नान कर माला ले के जप करने बैठा बिचारा कि जो दानाध्यक्ष ने कहा था वही मंत्र है ऐसा वह मूर्ख समझ गया। "सरप माला खटक मणका मैं राजा का जपकरूं मैं राजा का जपकरूं मैं राजा का जपकरूं" जपने लगा तब किसी दूसरे मूर्खने बिचारा कि जब उस का लग गया तो मेरा भी लग जायगा चलो वह गया वैसा ही हुआ चलते समय दानाध्यक्ष बोले कि तूं जा जैसा वह करता है वैसा करना वह गया वैसे ही आसन पर बैठ कर पढ़ने वाले का मन्त्र सुन कर जपने लगा कि "तूं करे सो मैं करूं तूं करे सो मैं करूं" वैसे ही तीसरा कोई धूर्त्त जा के सब कुछ कर करा लिया। चलते समय दानाध्यक्ष ने कहा कि जबतक निर्वाह होता दीखे तब तक करना। वह भी इसी अभिप्राय को मन्त्र समझ के वहां जा कर जप करने को बैठ के जपने लगा कि "ऐसा निभेगा कब तक ऐसा निभेगा कब तक २" वैसे ही चौथा कोई मूर्ख सब प्रबन्ध कर करा के गङ्गा पर जाने लगा तब दानाध्यक्ष ने कहा कि जब तक निभे तब तक निर्वाह करना वह भी इस को मंत्र ही समझ के गङ्गा पर जाके जप करने को बैठ के उन तीनों का मन्त्र सुना तो एक कहताहै—मैं राजा का जप करूं मैं राजा का जप करूं मैं राजा का जप करूं। दूसरा तूं करे सो मैं करूं तूं करे सो मैं करूं। तीसरा। ऐसा निभेगा कब तक ऐसा निभेगा कब तक ऐसा निभेगा कब तक और चौथा जपने लगा कि जब तक निभे तब तक। जब तक निभे तब तक। जब तक निभे तब तक। ध्यान में रक्खो कि सब अधर्म्मी और स्वार्थी लोगों की लीला ऐसी ही हुआ करती है कि अपने मतलब के लिये अनेक अन्यायरूप कर्म करके अन्य मनुष्यों को ठग लेते हैं अभाग्य है ऐसे मनुष्यों का कि जिन के आत्मा अविद्या और अधर्म्मान्धकार में गिरके कदापि सुख को प्राप्त नहीं होते। यहां किसी एक धार्मिक राजा का दृष्टान्त सुनो—कोई एक विद्वान्

धर्मात्मा राजा था उस के और उस के दानाध्यक्ष के पास किसी धूर्त ने जा कर कहा कि मेरी जीविका करा दो (दानाध्यक्ष) तुमने कौन २ शास्त्र पढ़ा और क्या २ काम करते हो (अर्थी) मैं कुछ भी न पढ़ा और बीस बर्ष तक खेलता कूदता गाय भेंस चराता खेतों में डोलता और माता पिता के सामने आनन्द करता था अब सब घर का बोझ पड़ गया है । आप के पास आया हूं कुछ करा दीजिये (दानाध्यक्ष) नौकरी चाकरी करो तो करा देंगे (अर्थी) मैं ब्राह्मण साधु जहां तहां बाजारों में उपदेश करने वाला हूं मुझ से ऐसा परिश्रम कहां बन सकता है (दानाध्यक्ष) तूं विद्या के बिना ब्राह्मण परोपकार के बिना साधु और विज्ञान के विना उपदेशक का काम कैसे कर सकता होगा इस लिये नौकरी चाकरी करना हो तो कर नहीं तो चला जा वह मूर्ख वहां सेनिरास हो चला कि यहां मेरी दाल न गले गी चलो राजा से कहें । जब राजा के पास जा के वैसे ही कहा तब राजा ने वैसा ही जबाब दिया कि जैसा दानाध्यक्ष जी ने कहा है वैसा करना हो तो कर नहीं तो चला जा । वह वहां से चला गया । इस के पश्चात् एक योग्य विद्वान् ने आके दानाध्यक्ष से मिल के बात चीत की तो दानाध्यक्ष ने समझ लिया कि यह बहुत अच्छा सुपात्र विद्वान् है जा के राजा से मिल के कहा कि पण्डित जी से आप भी कुछ बात चीत कीजिये वैसा ही किया तब राजा ने परीक्षा करके जाना कि यह अतिश्रेष्ठ विद्वान् है ऐसा जान कर उन से कहा कि आप को हजार रुपैये मासिक मिलेगा आप सदा हमारी पाठशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाया और धर्म्मोपदेश कीजिये वैसा ही हुआ । धन्य ऐसे राजा और दानाध्यक्षादि हैं कि जिन के हृदय में विद्या, परमात्मा और धर्मरूप सूर्य प्रकाशित होता है ॥

(प्र०) दानाभक्ष और दानाध्यक्ष किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो दाता के दान का भक्षण कर के अपना स्वार्थ सिद्ध करता जाय वह दानाभक्ष और जो दाता के दान को सुपात्र विद्वानों को दे कर उन से विद्या और धर्म की उन्नति कराता वह दानाध्यक्ष कहाता है

(प्र०) राजा किस को कहते हैं ॥

(उ०) जो विद्या, न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, धैर्य, आदि गुणों से युक्त हो कर अपने पुत्र के समान प्रजा के पालन में श्रेष्ठों की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड दे कर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति से युक्त हो कर अपनी प्रजा को करा के आनन्दित रहता और सब को सुख से युक्त करता है वह राजा कहाता है ॥

(प्र०) प्रजा किस को कहते हैं ॥

(उ०) जैसे पुत्रादि तन मन धन से अपने माता पितादि की सेवा करके उन को सर्वदा प्रसन्न रखते हैं वैसे प्रजा अनेक प्रकार के धर्म युक्त व्यवहारों से पदार्थों को सिद्ध करके राजसभा को कर दे कर उन को प्रसन्न रक्खे वह प्रजा कहाती है और जो अपना हित और प्रजा का अहित करना चाहे वह न राजा और जो अपना हित और राजा का अहित चाहे वह प्रजा भी नहीं है किन्तु उन को एक दूसरे का शत्रु डाकू चोर समझना चाहिये क्योंकि दोनों धार्मिक हो के एक दूसरे का हित करने में नित्य प्रवर्तमान हों तभी उन की राजा और प्रजा संज्ञा होती है विपरीत की नहीं । जैसे—

अन्धेर नगरी गवर्गंड राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।

एक बड़ा धार्मिक विद्वान् सभाध्यक्ष राजा यथावत् राजनीति से युक्त हो कर प्रजापालनादि उचित समय में ठीक २ करता था उस की नगरी का नाम प्रकाशवती राजा का नाम धर्मपाल और व्यवस्था का नाम यथायोग्य करने हारी था वह तो मर गया पश्चात् उस का

लड़का जो महा अधर्मी मूर्ख था उसने गद्दी पर बैठ के सभा से कहा कि जो मेरी आज्ञा माने वह मेरे पास रहे और जो न माने वह यहां से निकल जाय। तब बड़े २ धार्मिक सभासद् बोले कि जैसे आप के पिता सभा की सम्मति के अनुकूल वर्तते थे वैसे आप को भी वर्तना चाहिये। (राजा) उन का काम उन के साथ गया अब मेरी जैसी इच्छा होगी वैसा करूंगा। (सभा)—जो आप सभा का कहना न करें गे तो राज्य का नाश अथवा आप का ही नाश हो जावे गा। (राजा)—मेरा तो जब होगा तब होगा परन्तु तुम यहां से जाओ। नहीं तो तुम्हारा नाश तो मैं अभी कर दूंगा। सभासदों ने कहा "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः"। जिस का शीघ्र नाश होता है उस की बुद्धि पहिले ही से विपरीत हो जाती है। चलिये यहां अपना निर्बाह न होगा। वे चले गये और महामूर्ख धूर्त खुशामदी लोगों की मण्डली उस के साथ हो गई। राजा ने कहा कि आज से मेरा नाम गबगंड, नगरी का नाम अन्धेर। और जो मेरा पिता और सभा करती थी उस से सब काम मैं उलटा ही करूंगा जैसे मेरा पिता और सभासद् रात में सोते और दिन में राज्यकार्य करते थे वैसे ही उस से विपरीत हम लोग दिन में सोवें और राति में राज्यकार्य करें गे। उन के सामने उन के राज्य में सब चीज़ अपने २ भाव पर बिकती थी हमारे राज्य में केशर कस्तूरी से ले के मट्टी पर्य्यन्त सब चीज़ एक टके सेर बिके गी जब ऐसी प्रसिद्धि देश-देशान्तरों में हुई तब किसी स्थान में दो गुरु शिष्य वैरागी अखाड़ों में मल्ल विद्या करते पांच २ सेर खाते और बड़े मोटे थे चेले ने गुरु से कहा कि चलिये अन्धेर नगरी में वहां दश १० टकों से दश १० सेर मलाई आदि माल चाब के खूब तैयार हों गे गुरु ने कहा कि वहां गबर्गंड के राज्य में कभी न जाना चाहिये क्योंकि किसी दिन खाया पिया सब निकल जावेगा किन्तु प्राण भी बचना कठिन होगा फिर जब चेले

ने हठ किया तब गुरु भी मोह से साथ चला गया वहां जाके अंधेर नगरी के समीप बगीचे में निवास किया और खूब माल चाबते और कुस्ती किया करते थे। इतने में कभी एक आधीरात में किसी साहूकार का नौकर एक हजार रुपयों की थैली लेके किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्कों ने आकर रुपयों की थैली छीन कर भागे उस ने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने आकर पूंछा कि क्या है उस ने कहा कि अभी उचक्के मुझ से रुपयों को छीन कर ले जाते हैं सिपाही धीरे २ चल के किसी भले आदमी को पकड़ लाये कि तूंही चोर है उस ने उन से कहा कि मैं फलाने साहूकार का नौकर हूं चलो पूंछ लो। सिपाही। हम नहीं पूंछते चल राजा के पास पकड़ कर राजा के पास ले जा के कहा कि इसने हजार रुपयों की थैली चोर ली है। गवर्गण्ड और आस पास वालों में से किसी ने कुछ भी न पूछा न गछा वह बिचारा पुकारता ही रहा कि मैं उस साहूकार का नौकर हूं परन्तु किसी ने न सुना झट हुकम चढ़ा दिया कि इस को शूली पर चढ़ा दो शूली लोहे की वरछी और सरें के वृक्ष के समान अणीदार होती है उसपर मनुष्य को चढ़ा उलटा कर नाभी में उस की अणी लगा देने से पार निकल जाने पर वह कुछ विलंब में मर जाता है। गवर्गण्ड के नौकर भी उसके सदृश क्यों न हों क्योंकि "समानव्यसनेषु मैत्री" जिनका स्वभाव एकसा होता है उन्हीं की परस्पर मित्रता भी होती है जैसे धर्मात्माओं की धर्मात्माओं, पण्डितों की पण्डितों, दुष्टों और व्यभिचारियों की व्यभिचारियों के साथ मित्रता होती ही है न कभी धर्म्मात्मादिका अधर्म्मात्मादि और न अधर्म्मात्माओं का धर्म्मात्माओं के साथ मेल हो सकता है गवर्गण्ड के सिपाहियों ने बिचारा कि शूली तो मोटी और मनुष्य है दुबला अब

क्या करना चाहिये ॥ तब राजा के पास जाके सब बात कही उस पर गवर्गण्ड ने हुकम दिया कि अच्छा तो इस को छोड़ दो और जो कोई शूली के सदृश मोटा हो उस को पकड़ के इस के बदले चढ़ा दो। तब गवर्गण्ड के सिपाहियों ने बिचारा कि शूली के सदृश खोजो तब किसी ने कहा कि इस शूली के सदृश तो बगीची वाले गुरु चेला दोनों बैरागी ही हैं सब बोले कि ठीक २ तो उसका चेलाही है। जब बहुत से सिपाहियों ने बगीचे में जाके उस के चेले से कहा कि तुझको महाराज का हुकम है शूली पर चढ़ने के लिये चल। तब तो वह घबड़ा के बोला कि हमनें तो कोई अपराध नहीं किया। सिपाही—अपराध तो नहीं किया परन्तु तूंही शूली के समतुल्य है हम क्या करें। साधु—क्या दूसरा कोई नहीं हैं। सिपाही—नहीं बहुत बर २ मत कर चल महाराज का हुकम है तब चेला गुरु से बोला कि—महाराज अब क्या करना चाहिये। गुरु—हमने तुझसे प्रथम ही कहा था कि अन्धेर नगरी गवर्गण्ड के राज्य में मुफत के माल चाबने को मत चलो तूंने नहीं माना। अब हम क्या करें जैसा हो वैसा भोग देख अब सब खाया पिया निकल जावेगा। चेला—अब किसी प्रकार बचाओ तो यहां से दूसरे राज्य में चले जावें। गुरु—एक युक्ति है बचने की सो करो तो बचने का संभव है कि शूली पर चढ़ते समय तूं मुझको हटा मैं तुझको हटाऊं इस प्रकार परस्पर लड़ने से कुछ बचने का उपाय निकल आवेगा। चेला—अच्छा तो चलिये सब बातें दूसरे देश की भाषा में की इस से सिपाही कुछ भी न समझे। सिपाहियों ने कहा कि चलो देर मत लगाओ नहीं तो बांध के ले जायंगे साधुओं ने कहा कि हम प्रसन्नता पूर्वक चलते हैं तुम क्यों बांधो। सिपाही—अच्छा तो चलो जब शूली के पास पहुंचे तब दोनों लंगोट बांध के मट्टी लगा के खूब लड़ने लगे। गुरु ने कहा कि—शूली

पर मैंहीं चढूं गा। चेला—चेला का धर्म्म नहीं कि मेरे होते गुरु शूली पर चढ़े। गुरु—मेरा भी धर्म्म नहीं कि मेरे सामने चेला शूली पर चढ़ जाय हां मुझ को मार कर पीछे भलेही शूली पर चढ़ जाना क्यों बकता है चुप रह। समय चला जाता है ऐसा कह कर शूली पर चढ़ने लगा तब चेलेने गुरु को पकड़ कर धक्का देकर अलग किया आप चढ़ने लगा फिर गुरु ने भी वैसाही किया तब तो गवर्गण्ड के सिपाही कामदार सब तमाशा देखते थे उन्हों ने कहा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों लड़ते हो तब दोनों साधु बोले कि हमसे इस बात को मत पूंछो चढ़ने दो क्योंकि हमको ऐसा समय मिलना दुर्लभ है यह बात तो यहां ऐसेही होती रही और गवर्गण्ड के पास खुशामदियों की सभा भरी हुई थी आप वहां से उठ और भोजन कर के सिंहासन पर बैठ कर सब से बोला कि बैंगन का शाक अत्युत्तम होता है सुन कर खुशामदी लोग बोले कि धन्य है महाराज की बुद्धि को बैंगन के शाक को चाखते ही शीघ्र उस की परीक्षा कर ली सुनिये महाराज जब बैंगन अच्छा है तभी तो परमेश्वर ने उस के ऊपर मुकुट, चारो ओर कलंगी। ऊपर का वर्ण घनश्याम भीतर का वर्ण मक्खन के समान बनाया है ऐसा सुन कर गवर्गण्ड और सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो कर हंसे तब गवर्गण्ड अपने महलों में सोने को गया डौढ़ी बन्ध हुई तब खुशामदी लोगों ने चोकी पहरे वालों से कहा कि जब तक प्रातःकाल हम न आवें तब तक किसी का मिलाप महाराज के साथ मत होने देना उन ने कहा कि अच्छा आज के दिन कुछ गहरी प्राप्ति नहीं हुई। खुशामदी—आज न हुई कल हो जावेगी हमारा और तुम्हारा तो साझा ही है जो कुछ खजाने और प्रजा से निकाल कर अपने घर में पहुंचे वही अपना है जब राजा को नशा और रंडीबाजी आदि खेल में सब लोग मिल कर लगा देंगे तभी अपना गहरा

होगा खजाना अपना ही है और सब आपस में मिले रहो फूटना न चाहिये, सब ने कहा हां जी हां यूंही ठीक है। वे तो चले गये। जब गवर्गण्ड सोने को गया तब गर्म मसाले पड़े हुए बैंगन के शाक ने गर्मी की और जङ्गल की हाज़त हुई ले लोटा जाजुरूर में गया रात भर खूब जुलाब लगा रात्री में कोई तीस ३० दस्त हुए रात्रि भर नींद न आई बड़ा व्याकुल रहा उसी समय बैद्यों को बुलाया वे भी गबर्गण्ड के सदृश ही थे ऊटपटांग औषधियां दीं उनने और भी बिगाड़ किया क्योंकि गबर्गंडके पास बुद्धिमान् क्यों कर ठहर सकते हैं। जब प्रातः काल हुआ तब खुशामदियों की मण्डली ने सभा का स्थान घेर के दासियों से पूछा कि महाराज क्या करते हैं। (दासी) आज रात भर जुलाब लगा और व्याकुल रहे। (खुशामदी) क्या कोई रात्रि में महाराज के पास आया भी था। (दासी) दश बारह जने आये थे। (खुशामदी)। कौन २ आये थे उन के नाम भी जानती हो। (दासी) हां तीन के नाम जानती हूं अन्य के नहीं तब तो खुशामदी लोग बिचारने लगे कि किसी ने अपनी निन्दा तो न कर दी हो इस लिये आज से हम में से एक दो पुरुषों को रात में भी डोढ़ी में अवश्य रहना चाहिये सब ने कहा बहुत ठीक है इतने में जब आठ बजे समय मुखमलीन गबर्गंड आ कर गद्दी पर बैठा तब खुशामदियों ने भी उस से सौगुना मुख बिगाड़ कर शोकाकृत मुख हो कर ऊपर से झूठ मूठ अपनी चेष्टा जनाई। (गवर्गंड) बैंगन का शाक खाने में तो स्वादु होता है परन्तु बादी करता है उस से हम को बहुत दस्त लगने से रात्रि भर दुःख हुआ। (खुशामदी) वाह वाह जी वाह महाराज आप के सदृश न कोई राजा हुआ न होगा और न कोई इस समय है क्योंकि महाराज ने खाते समय तो उस के गुणों की परीक्षा और रात्रि भर में दोष भी जान लिये देखिये महाराज जब बैंगन दुष्ट है तभी तो परमेश्वर ने उसके ऊपर खूंटी चारों ओर कांटे

लगा दिये ऊपर का वर्ण कोयलों के समान और भीतर का रङ्ग कोढ़ी की चमड़ी के सदृश किया है । (गबगंड) क्यों जी कल रात को तो तुम ने इस की प्रशंसा में मुकुट आदि का अलङ्कार और इस समय उन्हीं की निन्दा में खूंटी आदि की उपमा देते हो अब हम किस को सच्ची मानें । (खुशामदी) घबरा के बोले कि--धन्य धन्य धन्य है आप की विशाल बुद्धि को क्योंकि कल सन्ध्या की बात अब तक भी नहीं भूले । सुनिये महाराज हम को साले बैंगन से क्या लेना देना था हम को तो आप की प्रसन्नता में प्रसन्नता और अप्रसन्नता में अप्रसन्नता है जो आप रात को दिन और दिन को रात सत्य को झूठ वा झूठ को सत्य कहें सो सभी ठीक है । (गबगंड) हां २ नौकरों का यही धर्म है कि कभी स्वामी की किसी बात में प्रत्युत्तर न दें किन्तु हां जी २ ही करते जांय । (खुशामदी) ठीक है राजाओं का यही धर्म है कि किसी बात की चिन्ता कभी न करें रात दिन अपने सुख में मगन रहें नौकर चाकरों पर सदा विश्वास करके सब काम उन के आधीन रक्खें बनिये बकाल के समान हिसाब किताब कभी न देखें जो कुछ सुपेद का काला और काले का सुपेद करें सो ही ठीक रक्खें । जिस दरख्त को लगावें उस को कभी न काटें जिस को ग्रहण किया उस को कभी न छोड़े चाहे कितना ही अपराध करें क्योंकि जब राजा हो के भी किसी काम पर ध्यान दे कर आप अपने आत्मा मन और शरीर से परिश्रम किया तो जानो उन का कर्म फूट गया और जब हिसाब आदि में दृष्टि की तो वह महादरिद्र है राजा नहीं । (गबगंड) क्यों जी कोई मेरे तुल्य राजा और तुम्हारे सदृश सभासद् कभी हुए होंगे और आगे कोई होंगे वा नहीं । (खुशामदी) नहीं नहीं कदापि नहीं न हुआ न होगा और न है । (गबगंड) सत्य है क्या ईश्वर भी हम से अधिक उत्तम होगा । (खुशामदी) कभी नहीं हो

सकता क्योंकि उसको किसने देखा है आप तो साक्षात् परमेश्वर हैं क्योंकि आप की कृपा से दरिद्र का धनाढ्य अयोग्य का योग्य और अकृपा से धनाढ्य का दरिद्र योग्य से अयोग्य तत्काल ही हो सकता है। इतने में नियत किये प्रातःकाल को सायङ्काल मान कर सोने को सब गये। जब सायङ्काल हुआ तब फिर सभा लगी। इतने में सिपाहियों ने आ-कर साधुओं के झगड़े की बात कही। सुन कर गबर्गण्ड ने सभा सहित वहां जा के साधुओं से पूछा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों सुख मानते हो। (साधु) तुम हम से मत पूछो चढ़ने दो समय चला जाता है ऐसा समय हम को बड़े भाग्य से मिलता है (गबगंड) इस समय में शूली पर चढ़ने से क्या फल होगा। (साधु) हम नहीं कहते जो चढ़े गा वह फल देख लेगा हम को चढ़ने दो। (गबगंड) नहीं २ जो फल होता हो सो कहो सिपाहियो इन को इधर पकड़लाओ। पकड़ लाये (साधु) हम को क्यों नहीं चढ़ने देते झगड़ा क्यों करते हो। (गबगंड) जब तक तुम इस का फल न कहो गे तब तक हम कभी न चढ़ने देंगे (साधु) दूसरे को कहने की तो बात नहीं है परन्तु तुम हठ करते हो तो सुनो। जो कोई मनुष्य इस समय में शूली पर चढ़ कर प्राण छोड़ देगा वह चतुर्भुज हो कर विमान में बैठ के आनन्दरूप स्वर्ग को प्राप्त होगा। (गबगंड) अहो ऐसी बात है तो मैं ही चढ़ता हूं तुम को न चढ़ने दूंगा ऐसा कह कर झट आप ही शूली पर चढ़ कर प्राण छोड़ दिये (साधु) अपने आसन पर आए चेले ने कहा कि महाराज चलिये यहां अब रहना न चाहिये। गुरु ने कहा कि अब कुछ चिन्ता नहीं जो पाप की जड़ गबगंड था वह मर गया अब धर्मराज्य होगा क्या चिन्ता है यहीं रहो उसी समय उसका छोटा भाई बड़ा विद्वान् पिता के सदृश धार्मिक और जो उस के पिता के समान धार्मिक सभासद् और

प्रजा में से सत्पुरुष जो कि उस के पिता के मरने के पश्चात् गबर्गंड ने निकाल दिये थे वे सब आ के सुनीत नामक छोटे भाई को राज्याधिकारी करके उस के मुरदे को शूली पर से उतार के जला दिया और खुशामदियों की मंडली को अत्युग्र दंड दे के कुछ कैद कर दिये और बहुतों को नौका में बैठा कर किसी समुद्र के बीच निर्जन द्वीपान्तर में बन्दीखाने में डाल कर अत्युत्तम विद्वान् धार्मिकों की सम्मति से श्रेष्ठों का पालन, दुष्टों का ताड़न, विद्या, विज्ञान, और सत्य धर्म की वृद्धि आदि उत्तम कर्म करके पुरुषार्थ से यथायोग्य राज्य की व्यवस्था चलाने लगे और पुनः प्रकाशवती नगरी नाम की व्यवस्था चलाने लगे और पुनः नगरी का प्रकाशवती नाम प्रकाश हुआ और उचित समय पर सब उत्तम काम होने लगे। जब जिस देशस्थ प्राणियों का अभाग्य उदय होता है। तब गबर्गंड के सदृश स्वार्थी अधर्मी प्रजा का विनाश करने हारे राजा धनाढ्य और खुशामदियों की सभा और उन के समतुल्य अधर्मी उपद्रवी राजविद्रोही प्रजा भी होती है और जब जिस देशस्थ प्राणियों का सौभाग्य उदय होने वाला होता है तब सुनीत के समान धार्मिक विद्वान् पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाली राजसहित सभा और धार्मिक पुरुषार्थी पिता के समान राजप्रबन्ध में प्रीति युक्त मंगलकारिणी प्रजा होती है। जहां अभाग्योदय वहां विपरीत बुद्धि मनुष्य परस्पर द्रोहादि स्वरूप धर्म से विपरीत दुःख के ही काम करते जाते हैं और जहां सौभाग्योदय वहां परस्पर उपकार प्रीति विद्या सत्य धर्म आदि उत्तम कार्य अधर्म से अलग हो कर करते रहते हैं। वे सदा आनन्द को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य विद्या कम भी जानता हो परन्तु पूर्वोक्त दुष्ट व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक हो के खाने पीने बोलने सुनने बैठने उठने लेने देने आदि व्यवहार सत्य से युक्त यथायोग्य करता है वह

कहीं कभी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो संपूर्ण विद्या पढ़ के पूर्वोक्त उत्तम व्यवहारों को छोड़ के दुष्ट कर्मों को करता है वह कहीं कभी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि आप अपने लड़के लड़की इष्ट मित्र आड़ोसी पाड़ोसी और स्वामी भृत्य आदि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनिर्मितो व्यवहारभानुः समाप्तः॥



वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

१) मूल्य टीक भेज कर मंगावें (२) टीक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा। ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५		४५)
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण		२८)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	२)	≡)
» जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	-)॥
सन्धिविषय	।≡)॥	-)॥
नामिक	।≡)॥	-)॥
कारकीय	।/)॥	-)॥
सामासिक	।≡)॥	-)॥
स्त्रैणताद्धित	१≡)	/)
अव्ययार्थ	≡)॥	)॥
सौवर	-)॥	-)॥
आख्यातिक	१॥)	-)॥
पारिभाषिक	≡)॥	-)॥
धातुपाठ	।≡)	-)॥
गणपाठ	।/)	-)॥
उणादिकोष	॥≡)	/)
निघण्टु	।≡)	-)॥
अष्टाध्यायी मूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≡)	-)॥
व्यवहारभानु	≡)	-)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥।	-)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥।	-)॥
मेलाचांदापुर	/)	-)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	-)॥
गोकरुणानिधि	/)	-)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	-)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	-)	-)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	-)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≡)	-)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	-)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
» जिल्द की	।≡)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	-)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≡)॥	-)॥
» जिल्द की	।/)॥	/)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	-)।	-)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि »		

मैनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

